# विप्लव

Speak what thou knowest without fear and hatred.

—Proudhon

-राधामोहन गोकुलजी

## विप्लव

राधामोहन गोकुलजी के

चुने हुये लेखां का संप्रह

\_ <u>[91</u>

प्रकाशक

बा॰ नारायणप्रसाद श्ररोड़ा बो॰ ए॰ पटकापुर, कानपुर

## विषय सूची

१—परिचय			
२ लेखक का सिद्दार जीवन	बृतान्त		
पहली तरंग			
३—ईश्वर का वहिक्कार	•••	•••	१
४धरमें श्रोर ईश्वर	•••	•••	81
५-सत्यं धर्मा सनातनः	•••	•••	99
६ प्रन्घ विश्वास	•••	•••	१०६
७—िकधर	•••	•••	<b>ફેક</b> મે
दूसरी तरंग			
<b>म</b> —स्त्री मानस	•••	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	१५६
<b>८</b> —मातृ शक्ति	•••	•••	१७३
<b>१०</b> —स्त्रियाँ श्रौर काम वासना	•••	•••	१८६
११—कानून श्रौर सरकार	•••	•••	8
तीसरी तरंग			
१२ न्याय नीति समता श्रौर स	वतंत्र्य	•••	२३२
१३-इतिहास को कसौटी (१)	•••	•••	388
ोट—यह सब छेख स्वतन्त्र विचार-			
ते उथ्य में रख कर लिखे गये हैं। कि	सी जाति,	धर्म या देश	विशेष से
ल्ल कोई सम्बद्धा नहीं है <b>। —</b> प्रकाश	ac.		



्राव शीवजहारतास्त्रीतर ज देव सर्वान्त्रदेव

#### अत्रभवात्

#### राव श्रीयजङ्गबहादुरसिंह जू देव

भद्री-श्रधिपति

के

कृतहस्त हाथों

मं

ससम्मानः समर्पित

'राघे'

#### परिचय े

#### श्रीमान राव कृष्णपालसिंह जूदेव लफटीनंट श्रवागढ़ लिखित

में पिएडत राधामोहन गोकुलजी को पिछले छ वर्षा' से जानता हूँ। मुक्ते हिन्दू सभा और दूसरो समाज-सुधार सम्वन्धिनी सभाओं में इनकी वक्तृता सुनने और इनके कई लेखों के पढ़ने का अवसर हुआ है। हाल में विसवनाम की जो पुस्तक छुप रही है इसके पृहले आठ फार्म की फाइल कापी मैंने और कई मित्रों के साथ वैठकर पढ़वाई है। पिएडतजी के विचार वहुत कँचे और स्वतन्त्र हैं। इनके प्रत्येक लेख और हर लेख के प्रत्येक वाक्य में एक वह मर्मस्पर्शी वेदना पाई जाती है जो प्रत्येक सच्चे समाज सुधारक हृदय में होनी अनिवार्य्य है।

इनकी हार्दिक इच्छा यह है कि हिन्दू एक जाति हो, धर्म का वन्धन मनुष्य के क्रपर से हर जाय, स्त्रियां पुरुषों की भाँति स्वतन्त्र हों, छत श्रद्धत का भेद मिटे श्रीर देश में कोई श्रन्न वस्त्र के श्रमाव से कप्ट न पावे। श्राप ईश्वंर श्रीर धर्मों के श्रस्तित्व को मिटाने की चेष्टा करते रहते हैं। उपर्युक्त वातों को इन्होंने श्रपने जीवन का लक्ष्य वना जिया है। निश्चय ही इनके तर्क पुष्ट हूं, भावनाएं शुद्ध हैं। रहन सहन इतना सादा श्रीर पवित्र है कि इनके सदुभावों में हम कोई लाञ्छन नहीं लगा सकते।

श्राप इस सत्तर वर्ष की श्रवस्था में जिस लगन के साथ हिन्दू
समाज के सुधार का काम सब प्रकार का कप्ट उठा कर करते हैं

वह इन्हें इस बात का श्रधिकारी करता है कि हम इनके विचारों
को सुने श्रीर पहें।

में पिएडतजी के विचारों से किसी किसी श्रंश में संहमत नहीं हूँ फिर भी मेरा दृढ़ धारना है कि इनके लेख पढ़ने श्रीर सुनने योग्य हैं। इनके पढ़ने श्रीर सुनने से बहुत प्रकार की जानकारी पैदा होती है। में पिएडतजी को इस काम के लिए शुद्ध श्रन्तःकरण से वधाई देता हूँ।

श्रापका निर्धन रहना श्रधिक पसन्द है। इनके शब्दों में पेट भर श्रन्न श्रीर तन ढकने को कपड़ा मिलता रहे श्रीर श्रमीरी की वेहदिगियों से पाला न पड़े तो मनुष्य दीर्घ जीवी, नीरोग श्रीर बहुत सुखी रह सकता है। 'दौलत की तुमे चाट जो पड़ जायगी वावा, रुसवा बहुत दुनिया में वह करवायेगी वावा' नजीर का यह वाक्य बहुधा इनको पढ़ते सुना जाता है। धन-वानों के पास दो दिन से श्रधिक इनको जी नहीं लगता। श्रामों में जहाँ काम करने जाते हैं इनकी खास माँग 'यव चने की रोटी श्रीर छाछ' होती है' श्रीर इसीसे यह सुस्थ, चैतन्य श्रीर मुस्तद बने रहते हैं।

--कृष्णपालसिंह



Mittatilien ifigrafi

### लेखक का संचिप्त परिचय

राज्य जयपूर में एक छोटा सा ठिकाना खेतड़ी है । श्राज ढाई सौ वर्ष से कुछ श्रधिक समय होता है कि जब इस राज्य से, सम्मवतः निर्धनता के कारण; क्रुञ्ज लोग जो श्रगरवाल सिंहानिया के नाम से प्रसिद्ध थे अन्तर्वेद में चले आये। कृपा रामजी की छठवीं पीढ़ों में लाला गोकुलचन्द के प्रथम पुत्र राधा मोहन को जनम पौप कृष्ण १३ सम्वत १६२२ विक्रमो को भदरी राज्य के ग्रन्तर्गत लाल गोपाल गञ्जनाम के स्थान में हुन्ना । इनके चचेरे पितामह लाला परमेश्वरी दास राव साहव भद्रो के यहाँ।पोद्दार थे, सम्मवतः इसी कारण यह सम्मिलित घराना भदरी की ही भूमि में वसा। उन दिनों, जव भद्रो को गद्दो पर वह महाराज थे जिन्हें लोग उदारता श्रीर भोलेपन के कारण 'वौरहे' महाराज कहा करते थे, गोपाल गञ्ज में नवाबी थी ग्रौर उसके पास ही ४ मील पर 'विहार' में श्रंत्रे जी थी। विदार में भी ला० परमेश्वरी दास ने घर बनवाया था। विहार में तहसील थी जो श्रव उठकर कुएडा चली गई है। विहार वौद्ध भित्तश्रों का किसी समय छोटा सा श्रावास था। इन्हें विहार में छुठे वर्ष के आरम्भ में गुक्की के यहाँ बैठाया गया। २-३ महीने में हिन्दी श्रवर श्रीर पहाड़े जानने; पर इन्हें ग्राम्य स्कूल में हिन्दी पढ़ने विठाया गया ।- तीन ही मास के वाद इनको उर्दू विमाग में इसलिए दे दिया गया कि
मौलवी फिदाहुसैन ने इनके पिता से आग्रह किया । आग्रह
का कारण यह था कि एक दिन मौलवी सांहव उर्दू की उच्च
कत्ना को इमला लिखा रहे थे दूसरे कमरे में वैठे हुए राधामोहन ने उनकी एक शेर सुनकर याद करली और जब शाम;
को अपने पिता के पास चवूतरे पर वालक यह शेर गागाकर
कूद रहा था मौलवी साहव ने आकर सुन लिया । शेर था,
'एक दिन आखिर को मरना होयगा। वागे दुनिया से गुजरना,
होयगा।'

इसी वीच में विहार से उठकर तहसील कुएडा चली गई।
गाँव उजड़ने लगा, चोरी बहुत होने लगी। विल्कुज लुट जाने
पर इनके पिता शाहजाद पूर (ज़िला इलाहाबाद ;) श्रा गये।
यहाँ के स्कूल में श्रीर कुछ श्रसें तक एक मकतव में इन्होंने
फारसी श्रीर हिसाव वगैरह पढ़ा। इसके पश्चात इन्हें इनके
ताल के पास कानपूर भेजा गया। लाला फकीरचन्द बड़े
संकीर्ण विचार के पुराने पौराणिक धर्मा के विश्वासी थे।
श्रंत्रोजी पढ़ाना पाप सगमते थे, हिन्दी बहीखाता श्रीर फारसी
पढ़ाते रहे। कुल १३ वर्ष की श्रवस्था में ही इस बालक का
विवाह कर दिया गया। वास्तव में विवाहने हो इनके उन्नित
के मार्ग को सदा के लिए श्रवरुद्ध कर दिया। इनके पिता
बहुत सीधे थे यदि इनकी माता रात दिन प्यान न देती
रहतीं तो यह निरस्तर ही रह जाते।

विवाद के पश्चात् यह अपने चाचा के पांस श्रागरे गये।
श्रागरे के संटजांस कालिज़ियेट स्कूल में इन्होंने श्रपनी ही इच्छा से श्रंथ जो पढ़ी। सन् १८८४ में व्योपारिक दुर्घटना के कारण श्रागरा छोड़कर इलाहाबाद में नौकरी की खोज में श्राना पड़ा। हिसाब के मुद्दममें में २०) की पर्येटिसी मिली। लेकिन इस जगह पर ६ महीने काम करने पर एक श्रंथ जी कर्मचारों से भगड़ा हो गया, इन्होंने उसे दो कल जमाकर घर का रास्ता लिया। घर पर पहुँच कर सार्टीफिकेट जला डाले श्रीर यावज्जी-वन सरकारी नौकरी न करने की प्रतिज्ञा की। यह घटना जुलाई सन् १८८६ की है।

सन् १==५ में स्वदेशी का वड़ा चर्चा था। इलाहावाद में एक स्वदेशी तिजारत कम्पनी वनी इसमें २५) २५) रुपयों के हिस्से थे। इस गरीव वालक ने भा एक हिस्सा स्वदेशों के प्रेम से लें:लिया और सदा के लए देशी ही वस्त्र व्यवहार करना निश्चय किया।

कांगरेस का जन्म भी इसी समय हुन्ना। पहली बैठक जो वस्वई से न्नाय हुए प्रस्तावों पर विचार करने के लिये जानसन गञ्ज की शिवराखन पाठशाला में हुई उसमें परिडत सुन्दरलाल वकील न्नायता थे। कुल १४-१५ न्नादमी पकत्र हुए। श्रीमान् परिडत मदन मोहन मालवीय प्रधान वक्ता थे, यह भी इनकी वत्कृता सुनने के लिए उस सभा में मौजूद थें। इन पर खासा प्रभाव पड़ा।

वेकारी ने इन्हें प्रयाग में भी टिकने न दिया श्रीर यह रीवाँ रियासत में १:१॥ वर्ष रहे। यहाँ इन्हें कुछ हिन्दी उर्दू कविता का प्रेम ज़रूर हुर्य्या श्रीर कोई: लाभ नहीं पहुँचा । मेलेरिया प्रधान जगह होने के कारण यहाँ से भी वीमार होकर कानपूर वापस जाना पड़ा। कानपूर में पिएडत प्रताप नारायण से घनि-ष्टता हो गई। कुछ समय तक यह 'ब्राह्मण्' के मैनेजर भी रहे, उसमें कुछ लेख भी देते थे। सार यह कि हिन्दी के साथ इनका श्रनन्य प्रेम मिश्रजी के ही सत्संग से हुश्रा। इन्ही दिनों में एक पुस्तक लिखी जिसकी इस्त लिपि चौधरा हुक्मचन्द के साथ जाकर इन्होंने परिडत पृथ्वीनाथ को सुनाई। परिडतजी ने उसं फाड़कर फ्रेंक देने का श्रादेश देकर कहा इसका समय ५० वर्ष वाद श्रावेगा। इन पर कुटुम्ब का खर्च बहुत था और जीविका कम थी। इनके पिता ने इन्हें ऋपने पास 'इसनपूर' (जिला गुड़गाँव) में बुला लिया । कानपूर से जाते समय श्रागरे में इनकी लड़की मर गई, हसनपूर से यह बड़ी कोसी मथुरा ) स्रा गये यहाँ इनकी स्त्रो का देहान्त हो गया ।

इनके पिता माता ने इनका दूसरा विवाह करने का प्रवन्ध किया। इन्होंने प्रतिज्ञा का थी कि जब तक हिन्दुश्रों में विध-वाश्रों का विवाह न होने लगे में श्रपना दूसरा विवाह न ककँगा श्रगर ककँगा तो विधवा के साथ:। इसलिए इन्हें धर से भाग कर वस्वई, वहाँ से, बीकानेर श्रादि स्थानों में जाना पड़ा। लौटकर इन्होंने कई वर्ष तक वैश्य महासमा में स्व० राय वहादुर लाला वैजनाथ जी की श्राज्ञानुसार समाज सुधार का प्रचार किया। इसी वीच में सन् १६०१ में इनके एक मात्र पुत्र का १६ वर्ष की श्रायु में देहान्त हो गया। तव यह माता पिता सबको लेकर श्रागरे जा रहे श्रीर श्रव तक इनके सब भाई वहीं रहते हैं, परन्तु कई वर्षों से यह सबसे पृथक् श्रपना जीवन श्रपने विचारों के श्रनुसार व्यतीत करते हैं। क्योंकि इनके विचार में मनुष्य मात्र एक जाति है, इनका परस्पर खान पान विवाह सम्बन्ध होना चाहिए, धर्म श्रीर ईश्वर भूठा ढकोलला है। इस प्रकार के विचार वाले का जाति वन्धन श्रहन कुदुम्व में निर्वाह न हो सकना साधारण वात है।

रहा कि स्थानरा श्रार्य समाज में एक मुसलमान की शृद्धि हुई, उसके हाथ की मिठाई इन्होंने भी खाई। इनको माता ने कहा कि तू मिठाई खाने से इनकार कर दे पर इन्होंने यह बात न मानी। कुछ दिन वाद यह चर्चा स्वतः दव गई। इन्हें समाज सुधारक होने के कारण श्रार्य समाज से वड़ा प्रेम था, इन्होंने यथा साध्य श्रा० सामाज को सेवा करने में कभो कसर नहीं की। वहुत से लोग इन्हें श्रवतक कट्टर श्रार्थ्य समाजी ही सम-भते हैं। इनके ईश्वर का वहिष्कार नामक लेख छपने के पश्चात कुछ लोगों को मालूम हुश्रा कि यह ईश्वर सम्बन्धी धर्म में कुछ धार्मिक प्रेम नहीं रखते। किन्तु हिन्दू संस्कृति श्रोर हिन्दू जाति की रक्षा के लिए श्राजभी यह प्राण विसर्जन करना श्रपना कर्तव्य समसते हैं।

१६०४ में जब वंग भंग के कारण देश में हल चल मच रही थो, यह, कुछ मित्रों की प्रेरणा से जो इनके पास आया जाया करते थे, कलकत्ते चले गये। यहाँ के इन के राजनीतिक कामों का उल्लेख हम दूसरों पर छोड़ते हैं। हाँ इतना जकर कह देना चाहिये कि यहाँ पर रहकर इन्हों ने समाज और साहित्य की भी खासी सेवा की।

कलकत्ता रहकर इन्हों ने समाज सुधार के नाते आर्थ समाजका पक्ष लेकर सत्य सनातन धर्मी नाम का पत्र निकाला। यह पत्र ३ वर्ष तक निकाला गया और नृशंस पुरोहित मण्डल पर विजयो होने के पश्चात् वन्द हो गया।

कलकते में रहते हुए इन्हों ने वहुत से लेखों श्रीर किन ताश्रों के श्रतरिक्त जो वरावर सम्बाद पत्रों में छुपतो रहो हैं श्रनेक पुस्तकें लिखीं कुछ के नाम यह हैं:—.

देश का घन नीति-दर्शन २ खंगड
छुन्द-संग्रह नपोलियन देश भक्त लाजपति
मटजीनी गेरी वाल्डी गुरुगोविन्दिसहजी साहव
जर्मनी का श्रमिमान इत्यादि श्रन्तिम पुस्तक ज़ब्त हो गई।

सन १६०१ के श्रारम्भ में यह महात्मा गाँधी के सत्याग्रह श्रान्दोतन में सम्मिलित हाकर नागपूर के सत्याग्रह श्राश्रम के सम्पादक होकर काम करने लगे। किन्तु मुशक्तिल से प्र महोने काम किया होगा कि इन पर राज विद्रोह का मुकद्मा चला श्रीर एक वर्ष का सपरिश्रम कारागार वास मिला। नागपूर में इनके सम्पादकत्व में सेठ सतो दास ने प्रण्वोर नामक पत्र निकाला था जिसमें जेल से निकलने के बाद भी बगाबर यह लिखते रहे।

इसं प्रथम राजनीतिक श्रिभयोग' में जो लम्बा वकतन्य इन्होंने न्यायालय के सामने लिख कर-दिया था उसका प्रथम बाक्य इनके मनोभाव की जानने के लिये पर्याप्त है।

यंग इग्डिया में इस श्रिभियोग का उल्लेख महात्मा जी ने जोरदार शब्दों में किया है।

जोत से ११ महीने बांद निकर्त कर इन्होंने सी० पी० के कई स्थानों में श्रीर बंगाल में भ्रमण करके कलकते से श्रागरे गये । यहाँ इनपर फिर्र राज-विद्रोह का मुकदमा चलाया गया । इन्होंने इस बार भी मुकदमें में भाग नहीं लिया केवल एक वक्ततव्य कोर्ट के सामने दिया।

इन्हें कांग्रेस की नीति प्रारम्भ से आज तक पसन्द नहीं है फिर भी यह कांग्रेस विरोधी न कभी हुये न हैं। अवाञ्छनीय स्वराजिप्टों के अधिकार काल में यह हिन्दू सभा में कई साल काम करते रहे। साथ ही हिन्दुओं के संगठन का भी प्रयत्न करते रहे।

हाल में श्रापने एक छोटी सी पुस्तक 'कम्यूनिज़म क्या है' लिखी श्रीर कुछ लिख रहे थे कि फिर १६३० में इन्हें कानपूर से दो साल का कारावास हुश्रा। इस बार जेल में यह बहुत बीमार हो गये तब से बीमार ही चले श्राते हैं। फिर भी यह श्रपने ठंग पर वश पडते कुछ न कुछ काम करते रहते हैं। इनका खास काम लेखनी का है। इनके लेखों का बहुत सान्माग प्रणक्तीर नागपूर वाद में प्रणवीर वस्वई में, मतवाला-कलकत्ता में मिलेगा, लेकिन नीचे लिखे मासिक पत्रिकाओं में भी इनके लेख मिलेंगे । ... मनोरमा, महारथी, नव्युग, सत्युग, माधुरी, सरस्वती, इत्यदि।

मैन इनके चुने हुये लेखों का संग्रह प्रकाशित करने का कई बार विचार किया परन्तु अनेक कारणा से न कर सका, अनेक प्रशंसनीय गद्य और पद्य लेख भी इनके अवतक नहीं मिल सके। अब इस काम को श्रीयुत बा॰ नारायणप्रसाद अरोड़ा ने हाथ में लिया है, इस लिये में यह सूदम जीविनी ही जो मेरे पास है उनको सौंप कर आशा करता हूँ कि यह लेख माला।शोध जनता के समस आजायगी।

महादेवप्रसादः अग्रवाल, आगरा





#### पहली तरंग

( घार्मिक)

#### ईश्वर का बहिष्कार

( 8 )



कृति-वादी श्रीर केवल काल्पनिक भाव वादियों में वड़ा श्रन्तर है। एक तो गुलाब के फूल को प्रत्यक्त देखता है—उसकी बनावर का ज्ञान श्रीर रूप-रंग श्रादि श्रनेक गुणों की जानकारी रखता है; यदि उससे गुलाब के सम्बन्ध में कोई प्रश्न करे, तो वह उसके श्रस्तित्व के प्रमाण में सीधी श्रीर

वास्तविक दलीलों से काम लेगा श्रीर गुलाब के फूल का यथार्थ

ज्ञान भी करा देगा। लेकिन दूसरा गुलावी रंग के वर्णन करने को तय्यार होता है और उस दशा में, जब कि उसने स्वयम् गुलिक को स्त्री जिस्ते होता, तो सीधा कोई प्रमाण नहीं दे सकत्य प्रतिक और ग्रव्यावहारिक प्रमाणों से जो वह काम लेगी तो निस्तन्देह कुद्रम-कुद्म पर ठोकर खायेगा। यह तो उस देश में होता है, जिकि गुलाव कोई वस्तु है और गुलावी रंगत बाहे गुलाव से मिन्न द्रव्य हीन ग्रवस्था में उसका देखना श्रास्तिय हो की प्रती चीज़ है जिसे हम ग्रांखों से देखन सकते हैं।

ईश्वर एक ऐसा किएत पदार्थ है जिसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्येत नहीं किया इसिलए कि उसका सर्वथा अभाव है। ईश्वर कोई हिन्हीं किया इसिलए कि उसका सर्वथा अभाव है। ईश्वर कोई हिन्हीं किया अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता। संसार में जितिना विस्तुएँ हैं, वे चाहे कितनी भी सहम क्यों न हों, सब का आदुर्भाव प्रकृति से होता है; और प्रकृति के को नहीं, सब का आदुर्भाव प्रकृति से होता है; और प्रकृति के को एक स्वरूप दार्थ किसी जनकिसी दशा में इन्द्रिय आहा होते हैं। किस हर्म को लिक हिन्हीं किस जिल को लीजिए। यह भाप की सहन में अहाँ कि को जिल्हा होते हैं। यदि यह और विश्लिष्ट होका स्ट्रिमतम् विस्तुल हैं, विलेक मिल्हा है हिन्हों। हिन्हों हारा जानने का विश्लेष बहेता। फिराहों कि कि विजेती बहुत ही स्थम कप की प्रकृत हो कुत्र हैं। फिराहों कि विजेती बहुत ही स्थम कप की प्रकृत हो का कि हो हो सार का स्था की प्रकृत हो हुन्हीं हैं। कि हा हो कि हिन्हों की किए की स्था के हिन्हों की किए हो कि हो की स्थम कप की प्रकृत हो हुन्हीं की किए हो कि हो हो जान सकते।

सेकिन विजली की उत्पत्ति प्राकृत पदार्थों से होती है, ब्रोर जब हम उसका व्यवहार किसी रूप में करते हैं तो द्रव्यों में उसे स्पष्ट देखते हैं कि काम कर रही है।

यह वात 'ईश्वर' नाम के पदार्थ में नहीं है, क्योंकि उसकी प्रकृति का निर्माता, संचालक श्रीर नाशकर्ता माना जाता है। प्रकट है कि जो बस्तु नहीं है-केवलमात्र एक काल्पनिक भाव है-उससे वास्तविक पदार्थ का वनना, बनाना या प्रकट हो जाना प्रत्यत्त ही एक निर्मृत, श्रशुद्ध एवं मानव विज्ञान-विरुद्ध एक कल्पना मात्र है। यदि इस इसे वल, शक्ति किम्वा गति माने' तो भी हम द्रव्य के सिवा श्रन्यत्र इसे कहीं भी नहीं देखते। इसी तरह गुलावी रंग भी कभी किसीने वस्तु से भिन्न, स्वतंत्र कहीं न देखा होगा, जैला ऊपर कहा गया है। सारांश यह कि प्रकृति से अलग कभी कोई शक्ति या कोई और भाववाचक पदार्थ नहीं देखा गया। मन, ज्ञान, वुद्धि श्रादि सभी एक प्रकार के गुण या भाववाचक संज्ञाएँ हैं। इनका भी वोध इमें प्रकृति के ही द्वारा होता है। किसी ख़ास दूशाः का निरीक्षण करके इम उसको एक जामाहे वेते। हैं किएन्त वस्तुतः, यह िप्टेमी ऋतेई । लीकः नहीं दे क्रिके दम् मुक्रुति से पानी पर तथा कर, उसका मरियम के साथ संहर्षित्तास किसी ा हिम्बद्ध के मानने क्ले उसे सर्व शक्तिमान, न्यायकारो, द्राम्ब मिन्नियापी इत्यादि समीत एपीं से निभूमित करते हैं। यह लोस सङ् नहीं सोजते कि। स्किमानः ऋते स्पेत्र प्रकृष्टण श्रीकरं

का दूसरी चीज़ में आरोप करते हैं, तो दूसरी चोज़ कोई वस्तु होनी चाहिए और ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। यही तर्क न्याय, दया श्रादि की वावत भी किया जा सकता है। जीव को एक प्रकार से इस शारीर में देखते हैं, लेकिन विना शरीर के कोई जीव ऐसा पदार्थ देखा नहीं जाता। सम्भव है कि रसायन-शास्त्र के श्रनुसार जीव भी दो या श्रधिक चीज़ों के मेल से उत्पन्न कोई स्थिति विशेष हो। मनोविज्ञान-सिद्ध कई कुतूहल-जनक घटनाओं के देखने पर जान पड़ता है कि शंकर स्वामी को यह ख़याल हुआ था कि ईश्वर तो कोई चोज़ नहीं है। मगर जीव में कई विलवण शक्तियाँ हैं। इसलिए जीव श्रीर ईश्वर दोनों एक ही पदार्थ हैं। इस तरह पर शंकर खामी ने संसार को काल्पनिक ईश्वर के मानने से बहुत .दूर तक हटाया—"श्रहं ब्रह्मास्मि" "तत्त्वमित" "सर्वे खिलवदं ब्रह्म" का पाठ पढ़ाया। वेदांत भी, जहाँ तक ईश्वर की मिथ्या करुपना का सम्बन्ध है, एक ख़ासा नास्तिकवाद है, जो संसार को बहुत ठीक मालूम होता जा रहा है। इनके विचार के लोगों की वृद्धि होती जाती है।

ईसाइयों ने ख़ुदा की पवित्रातमा को चिड़िया के रूप में पानी पर तरा कर, उसका मरियम के साथ सहवास कराकर श्रंथवा तूर-पहाड़ पर जलती श्राग की शकल में मुसा को दिखला कर यही सिद्ध किया है कि विना चंन्तु के किसी शांक को स्थिर रहनां श्रसम्भव है। इस्तन ने ख़ुदा को एक बड़े मकान में विठाकर तख़तो पर लिखने श्रीर फरिश्तों द्वारा सारा काम इंजाम देने का ख़्याल इसीलिए पैदा कियां कि विना किसी व्यक्त पदार्थ के यह सारे गुण उसमें नहीं हो सकते, जिन्हें मुसलमान लोग ख़ुदा में मानते हैं। 'कुन' का कहना विना जिह्वा के श्रसम्भव है, श्रीर जिह्वा होने से ख़ुदा भी श्रकृतिजन्य एक पदार्थ वन जाता है।

सातवें श्रासमान पर मुहम्मद साहव का बुराक पर चढ़कर जाना, रिजवां का इन्हें विहश्त दिखलाना, महात्मा मसीह का श्रासमान पर उठाया जाना तथा गरुड़ पुराण श्रादि की कही हुई स्वर्गों श्रीर नरकों की कल्पनाएँ, सभी इस वात की साली हैं कि धम्म केवल कल्पनामात्र हैं। इनसे सिवा लोगों को मिथ्या भगड़ों में फँसा कर वेकार वनाने के, कोई भी लाभ-दायक काम नहीं हो सकता। इसीलिए मनुष्य जितनी जल्दी ईश्वर, खुदा या गोड़ श्रीर धम्म, मजहब या रिलीजन को त्याग दें उतना ही श्रच्छा। मनुष्यजाति के कल्याण के लिए ही मैंने इन विचारों को प्रकट करने का साहस किया है। श्राशा है, विचारशील प्रथ इससे लाम उठावेंगे।

लोग जो समय रोज़े, नमाज़, सन्ध्या-पूजा, श्रीर प्रार्थना में नए करते हैं, उसे यदि समाज के किसी उपयोगी काम में लगावें, तो श्रपने भाइया का श्रीर श्रपना वहुत कल्याण कर सकते हैं। यदि संसार से ईश्वर श्रीर धर्म्म के न्यर्थ गपोड़े मिट जायँ, तो लोगों में फैले हुए मगड़ों का श्रन्त हो जाय। जब क्रोई मूर्ज से घूर्ज पिता भी त्रपना त्रश चलते श्रपने पुत्रों को नहां लड़ने देता, तो यदि वास्तव में क्रोई खुदा होता—श्रोर सर्वशिक्तमान खुदा होता—तो वह श्रपनी सन्तान को कदा-चित् श्रपने नाम पर कुत्तों की तरह न लड़ाता। यदि ख़ुदा शिक श्रोर बुद्धि वाला होता तो भी वह एक ही धर्म सारे संसार के लिए बनाता—सारे संसार की एकही बोली श्रोर एकही संस्कृति होती—जिससे इन अगड़ों का बीज ही न पड़ता। जो ख़ुदा अगड़ों का बीज बोता हो, जो धर्म मनुष्यों के लिए वास्तविक हितकर न हो, वह यदि वास्तव में कुछ हो भी तो विषवत् त्याज्य ही है।

फ्रांस का विद्वान 'वालटेयर' कहता है (If god did not exist, it would be necessary to invent him, for the people must have a religion.)

श्रथात्—यदि ईश्वर न भी हो तो भी हमें पक ईश्वर का श्रांविष्कार करना ज़रूरी है, क्योंकि जनता को धर्म की जरू-रत है। हमें इस पिएडत की बात पर हँसी श्रांती है। पहले तो उपर्युक्त वाक्य के पढ़ने से प्रकट होता है, कि वालटेयर को स्वयम् ईश्वर नामक किसी पदार्थ की सत्ता का पूर्ण विश्वास न था, इसीलिए वह मूर्ख जनता को धोके में डालने की नियत से पक ईश्वर की कल्पना करने के फेर में पड़ा। दूसरे उसने ईश्वर के लिए 'Him' कर्मवाचक; एकवचन, पुँ लिलक्ष, प्रथम पुरुष का प्रयोग करके उसे मई करार दिया। इससे प्रकट है कि वह इस श्रजीव जानवर को महर्ष्य ग्रंशंतराध्ये श्रीर मनुष्य मानने से उसकी सर्व शक्तिमत्ताः अर्थाविष्णीप्रकाल श्रीद की सारी वार्ते धूल में मिल जाती हैं। श्रीं पद्मीं ज्यात हिन्दू मुसलमानों के खुदा की भी है। तीमारे । ध्यीता इस्ते एक धर्म दरकार है इसलिए एक खुदा की जी श्रीं हिष्कार करना भी ज़करों है, यह भी वड़ी मज़ेदार वात हैं। श्रीं कर्ति महें कभी खुदा नहीं माँगा; 'वालटेयर' श्रीर उसिं कि ग्रंशं सोचनेवाले भद्र पुरुषों ने खाह मखाह एक खुंदा गढ़ प्रकार जनता को श्रमणित वेहदिगियों का शिकार वना डालाड़ी प्र

्खुदा ही की कल्पना ने इंजील, कुरान, पुरांग्राक्षी सक्त-रिव्चत इतिहास का भागडागार वनाया श्रीर घृणिकाक्तथास्में श्रीर भावों से मनुष्य जाति का सर्वनाश किया है अभैंडिं महात्मा 'मिकाइल वेकुनिन' को सराहता हूँ, जो खुलेंग्राह्में मनुष्य जाति के हित के लिए 'वालटेयर' को तुर्की वनुकीं जवाव देते हुए कहता है:—If god really existed would be necessary to abolish him. कि इंद्र

श्रर्थात्—यदि खुरा सचमुच होता, तो भी उसे क्षाकृति देकर निकाल देना ज़रूरो होता। सच है धर्म श्रीर ईंड्रेड्ड ऐसी हो चुरी कल्पना है। इनसे संसार का जब तक पीला हुंडेगा, तब तक उसका कल्पाण न होगा।

जव तक योरोप में ख़ुदा श्रीर धम्में सदृश रही काल्प्तिक वार्तों का ज़ोर रहा, रोमन कैथालिक श्रीर प्रोटिस्टेंट निर्द्रुहड़ सर फोड़ते रहे। कैथालिकों ने शक्ति प्राप्त होने पर प्राटिस्टेंटों को अनि के हवाले किया। और प्राटिस्टेंटों ने अधिकार पाने पर रोमन कैथालिकों के प्राणों की आहुति देकर अपना कलेजा रुगड़ा किया। सारत में शैव-शाक्त आदि ने धम्मे के नाम पर ज़्व कुत्ते विल्लियों की सी लड़ाई की। पर जिस दिन योरोप ने धम्में और ख़ुदा के ढकोसले को छोड़ा, उसी दिन से उसमें देश-प्रेम और ज्ञान-पिपासा जायत हुई। आज योरोप प्रकृति की पूजा करके सर्वत्र अपने की पुजवा रहा है।

पशिया की वरवादी के कारण धर्म और खुदा ही हैं। श्राज वीसवीं सदी में भी इस मूर्खता के कारण पशिया की दशा श्रत्यन्त शोचनीय हो रही है। जिस जाति में जितनी धर्मान्धता है, वह उतनी ही श्रॅंधेरे गर्त में पड़ी हुई है। मुसलमानों में श्रिधक धर्म्मान्धता है, इसीसे उनका संसार में पतन होता जा रहा है। भारत में भी मुसलमान विद्या, बुद्धि श्रोर धन श्रादि सभी वातों में श्रत्यन्त नीचे हैं। टर्की ने इस भेद को सममा, इसी लिए उसने धर्म के हानिकर वन्धन को ढीला कर दिया। श्रव वह समय रहते इस रही लयाल को श्रद्धं चन्द्र देकर सुखी होने का प्रयक्त करेगा, यह हमारा पूर्ण विश्वास है।

यदि ईश्वर श्रीर धर्म्म का ब्रह्मपाश कर जाय, यदि इस 'गौर्डियन नाट' के टुकड़े हो जायँ, तो संसार के धर्म ब्रन्थों के सारे निस्सार गपोड़ों का भी श्रन्त हो जाय। प्रत्यक् श्रीर विद्यान-सिद्ध बातों के विरुद्ध विश्वास, श्रीचार श्रीर व्यवहार का पाप मनुष्यों में से जाता रहे—स्वर्ग के भूठे मन मोहने जाले दास्तानों श्रीर बच्चों की सी वे-सर-पैर की बातों से संसार का पीछा छूट जाय। गालिव ने पक जगह विहश्त का ख़ासा मजाक उड़ाया है। वह कहता है:—

'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत।गालिव। दिल के ख़ुश रखने को गालिव यह खयाल श्रव्जा है।' किसीने सच कहा है:—Doctrine kills the life, and the living spontaneity of action. सिद्धान्तवाद जीवन को नष्ट कर डालता है श्रोर कार्य के स्वाभाविक श्रस्तिस्व को मिट्टियामेट कर छोड़ता है। सार यह कि व्यक्ति हो या जाति कलपनामात्र की तरंगों से ताड़ित होकर समुद्र में डांट लगी हुई खाली वोतल के समान इधर उधर ठोकर खाती फिरती हैं, फल कुछ नहीं होता। हां, संसार के कितने ही ममुख्य विज्ञान की श्रोर ध्यान न देकर इंजील, कुरान, वेद, पुराण के पढ़ने में न जाने कितना समय खराव कर देते हैं। श्रव्छा हो जो इन की गों में सुबुद्धि का संचार हो।

#### . (, 2 )

Ideal is but a flower, whose root lies in the material condition of existence.—Prowdhon.

सच है श्रादर्श कल्पना एक पुष्प है, जिसकी जड़ जीवन की प्राक्तत स्थिति में रहती है। यह नहीं कि विना सर पैर की प्रक श्रवहोंनी करएना हो। भला प्रत्यक्त जगत् सत्य है, या. केवलसात्र करूपना में रहने वाला निराधार ईश्वर ? कोई भी व्यक्ति, जिलका मस्तिष्क विकृत न हो प्रकृति को ही सत्य कहेगा। प्रकृति को श्रसत्य श्रीर काल्पनिक ईश्वर को सत्य कहनेवाला निस्तन्देह पागल है। श्राखों का श्रविश्वास करके कानों का विश्वास करना बुद्धिमानों का काम नहीं है। मनुष्य जाति का सारा इतिहास—चाहे किसी भी विषय का क्यों न हो—द्रव्य से ही सम्बन्ध रखनेवाला मिलता है; सब का प्रकृति से ही सम्बन्ध है। गपोड़ कथा श्रों की वात दूसरी है। प्राखों के उद्देगम श्रीर विकास का श्राधार तथा जीवत्व के सर्वश्रेष्ठ प्रकट प्रकाश का मूल प्रकृति है।

वस्तु के विकास में, प्राणियों की उन्नति में, हम देखते हैं कि पिछला रूप मिट जाता है श्रीर श्रभिनव विकसित उन्नत रूप उसका स्थानापन्न हो जाता है। मनुष्यता में (सज्ञान पश्चपन में) केवल पश्चता के वल का दिन-दिन द्वास होता जाता है श्रीर ज्ञान का विकास, यह किया नैसर्गिक है। इसी ज्ञान-वृद्धि के कारण प्रकृति के गुप्त रहस्य मनुष्य को मालूम होते जाते हैं। इस विकास-काल में, विज्ञान के प्रचएड मार्तण्ड के प्रकाश में सिवा विक्तिशों के श्रीर कौन ऐसा हो सकता है, जो श्रन्धकार के समय के कल्पित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा ! किसी फ़ारसी किव ने क्या ही ख़्व कहा है:—

ख़याले हरदी श्रालमरा ज़ लोहे दिल खुनां शुस्तम । कि शुद वर तक्तये हस्ती ज़ इक गुकता दोज़त पैदा ॥ जन्म के पूर्व श्रोर मृत्यु के वाद के संसार को दिल से पेसा हटाया कि वर्तमान काल में प्राकृत जीवन के श्राधार पर एक प्रत्यन्न विचार के कारण एक विन्दु से दो रेखाएं उत्पन्न हो गईं। श्रादम-होश्रा के जंगलीपन का जमाना गया; खुदा की शरारत श्रोर शैतान की मेहरवानी की श्रव ज़रूरत नहीं। यह वीसवीं सदी का विज्ञान-काल है।

त्रव इममें सत्यासत्य के विवेक की बुद्धि वढ़ गई है, श्रीर मिथ्या वार्तों को मार भगाने की इच्छा तथा शक्ति उत्पन्न हो गई है। श्राजकल का पिएडत कहता है। 'गुस्ताज़िये फिरश्ता नहीं मुत्राफ हमारे जनाव में।' श्राज हमें श्रवतारों, ख़ुदा श्रीर रस्तों की ज़रूरत नहीं रही श्रीर न हम शून्य से संसार की उत्पत्ति मानने की मूर्खता करने को तथ्यार हैं। स्वार्थ वश मजुन्यों को गुलामी के गर्त में रखने वाले श्रसुरों की सारी कैफियत हमें मालूम हो चुकी है। हम सुरों के राजा ईश्वर की उस्तादियों श्रीर करामातों को ख़ूब जान चुके हैं। हम समक्ष चुके कि हमारा कल्याण श्रगर हो सकता है तो श्रसुरों के हारा।

सुर वनने वाले धर्मायाजकों, राजविंगयों श्रोर धनवानों का विचार मेरे दिल में श्रा गया, इसलिए श्रावेश में श्राकर मैंने विषय से कुछ श्रसंगत वातें कह डालीं। लेकिन यह ज़क्रर है कि यदि सुर श्राजकल के उच, सर्वश्रेष्ठ वननेवाले हिन्दुओं की तरह होते हैं, श्रीर श्रसुर गरीव, मेहनत की कमाई लाने वाले, छोटे कहलाने वाले किसान, मेहतर, धोवी, चमार, लोहार, वर्ड़ हैं, तो में श्रसुरों को श्रवश्य ही सुरों की श्रपेता वड़प्पन टूंगा। ईश्वर यदि ऐसाही है जैसा वाइविल श्रीर कुरान का ईश्वर, तो इन्हीं पुस्तकों के शैतान की उपास्ता को में लाख वार श्रव्ही समभूंगा।

हम देखते हैं, संसार का विकास क्रमशः नीचे से ऊपर को हुन्ना है। मानव जगत दिन पर दिन झान की वृद्धि करता जा रहा है। जो विज्ञान—जो कला-कौशल—१५ वीं शतादि तक न थे, श्राज क्रमशः उन्नत होकर वीसवीं शतादि में हमारी श्रांखों के सामने हाज़िर हैं। लेकिन इंश्वरवादी श्रपनो श्रांखें वन्द करके उलटा मार्ग लेते हैं। यह सर्वगुण-झान-गरिमा सम्पन्न पक ईश्वर को तो पहले ही मान लेते हैं श्रीर फिर उससे श्रज्ञान-तिमिराच्छादित जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। यह कैसी विचित्र वात है। ईश्वर भी कोई व्यक्ति होगा या होगी, तो उसका उन गुणों से विभृषित होना जिनसे उन्हें विशिष्ट किया जाता है, सर्वथा श्रसम्भव है। इस प्रत्यक्त वात की जानने के लिए किसी चालवाज़ी की ज़करत नहीं। इसके लिए व्यक्त परमात्मा के माननेवालों को कुछ कहने की ज़करत नहीं।

कुछ लोग कहते।हैं, ईश्वर एक सर्वन्यापक आतमा है, को आकाशव त्या सूर्य के प्रकाशवत् सर्वत्र व्याप्त है, वही

संसार का निर्माता, सञ्चालक, श्रीर प्रवन्धक है। किन्तु यह वात भी नहीं वनती: क्योंकि जिस ईश्वर को ज्ञान का भागदार शील का खजाना, पारिइत्य का सागर, दयानुता श्रीर न्याय की खत्ती श्रीर सारे गुणों का श्रार्टिजन वैल (पताल तोड़ कूप) माना जाता है, उसकी कार्य्यवाही में तो यह सब वातें दम नहीं देंखते। जिसे लोक-दिक्-काल के परे खोजने जाकर वड़े बड़े दार्शनिकों ने ज़मीन श्रीर श्रासमान के कुलावे मिलाये हैं, उसकी सत्ता को गौतम, कणाद, कपिल, वाचस्पति मिश्र, शंकर श्रादि भारतीय श्रीर प्रोटो. डिकाटे, स्पायनोजा, काएट श्रीर हीगल श्रादि योरोपीय दर्शनकार भी न तो सिद्ध कर पाये, श्रीर न उसकी सन्तोप जनक व्याख्याही कर सके। श्रन्त में वड़े वड़े ऋषियों, श्रवतारों, नवियों श्रीर विलयों ने भी विश्वस्त खोज न की। जिस पहेली के बूभने में श्रपनी वलहीनता, बुद्धि-विहीनता को ही स्वीकार करके वेद शास्त्र केवल 'नेति-नेति' कह कर रह गए, उसे कोई कैसे मान सकता है। सच तो यह है कि असत् को सत् सिद्ध करना सम्भव नहीं। श्राखें वन्द कर के वेहृदा वातों पर विश्वास कर लेना दुसरी वात है। परन्तु प्राकृत 'नियमों के विरुद्ध कोई इस्ती नहीं हो सकती, न इसके विरुद्ध कोई शक्ति । इससे. भिन्न कोई वैज्ञानिक केवल कल्पना ही कर सकता है। वनस्पति से प्राणी, प्राणी से मनुष्य, इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक प्राकृतिक नियम के श्रतुसार संसार का विकास हुश्रा ु। तब यह श्रनहोना ईश्वर कहाँ से कूद पड़ेगा, जो प्रकृति से भिन्न हो और श्रारम्भं में ही सब गुणों की खान भी। श्राखें वन्द करके किसी वात की कल्पना कर लेना दूसरी बात है। विश्वास में यही तो एक दोज है कि इसके श्राखें नहीं होतीं। यह चिड़िया के दूध की कल्पना करता है और उसका श्राह्ततत्व मान कर बैठ जाता है। इसी श्रन्थ-विश्वास से उत्पन्न हुआ ईश्वर समस्त संसार के धर्म श्रन्थों, दर्शनों श्रीर चालवाजों की पुस्तकों का प्रधान चिरत्र नायक है, जिससे संसार की सारी दुराइयाँ, बदमाशियाँ, श्रत्याचार तथा कमज़ोरियाँ पैदा हुई श्रीर मनुख्य जाति नीच श्रीर निकरमी हो गई।

 श्रिर्धिसिद्ध का साधन वना सकता है। पीढ़ियाँ से इन येचारों का यही हाल है। सिखानेवाले धनिक, पुरोहित श्रीर राजकम्मे-चारियों में से कोई भी ईश्वर को नहीं मानता, पर हरेक ईश्वर के मानने का ढाँग रचता है। मैं पूजता हूँ कौन पण्डित, मोलवी, पाइरी, राजा-रईस श्रीर सेठ साहकार ऐसा है जो भूठ नहीं वोलता, फ़रेव नहीं करता श्रीर तमाम दुनियां की वदमाशियों से पाक है, इस हालत में कोई चतुर मजुष्य यह कैसे मान सकता है कि लोग ईश्वर की हस्ती के कायल हैं, परमात्मा की सत्ता को सीकार करते हैं। इसिलए ईश्वर कोई चीज़ नहीं है, सिवा इसके कि गरीवों को ठगने के लिए ठगी का एक जाल हैं। यह जाल जितनो जलदी तोड़ दिया जाय उतना श श्रुच्छा। जूसेप मटजीनी श्रीर टामस ऐन के सहश मनुष्य-भक्तों ने भी इस सल्पना में पड़ कर ठोकरें लाई, तो इसरों की क्या गिनतो।

लेकिन दुल तो इस यात का है कि इन देश और मनुन्य भक्तों ने भी कोई ऐसा तर्क और युक्ति-युक्त ऐसा प्रमाण न दिया कि ईश्वर का श्रस्तित्व निर्विवाद-रूप से सिद्ध हो जाता। प्रोफेसर किलिंट ने श्रपनी 'एंटी थिइस्टिक थियरीज' नाम की पुस्तक में नए पुराने सभी श्रनीश्वर वादियों के तकों का उत्तर देने का वहाना किया है, लेकिन ईश्वर का श्रस्तित्त्व सिद्ध नहीं कर सके। मुझे दुख है कि न तो इस छोटे से लेख में 'पेन' श्रीर 'फिलंट' के लेखों को उद्धृत करके उत्तर देने को स्थान श्रीर समय है श्रीर न इस समय मेरे पास पुस्तकें अस्तुत ईंग्न जिन महानुभावों को देखना हो 'पेन' हत 'एज श्राव रोज़न' श्रीर फिलंटहत 'थिइजम' श्रीर 'ए'टी थिइस्टिकथियरोज़' को पढ़ कर देखलें। इनमें श्रगर ईश्वर के श्रस्तित्त्व का कोई प्रमाण मिले तो हपया मुभे स्चना दें। इतना ख़याल रखें कि जिन वातों का मैं श्रपने श्रनेक लेखों में खएडन कर चुका हूँ उन्हीं का पिष्ट-पेषण न हो। मैं हर दशा में श्रपने विपित्तियों के तकों का उत्तर देने को तय्यार हूँ, श्रलवत्ता गालियों के उत्तर देने में मैं श्रसमर्थ हूँ। जो ईश्वर की सत्ता लिख करने के वदले मेरे छिद्रान्वेषण करने में श्रपनी जीत सममते हैं, उनसे मैं पहले ही श्रपनी हार खीकार करता हूँ।

टामस पेन ने ज्योतिप शास्त्र का वड़ी निपुणता के साथ वर्णन करने के पश्चात् यह कह दिया कि यह सव ईश्वरीय चातुर्ण्य का ही फल, है, कोई तर्क नहीं है। जो मद्र पुरुष ईश्वरीय पुस्तकों का अपौरुषेय अन्थ होना अस्तीकार करता हो श्रीर उनके खरड़न में तर्क और इतिहास से काम लेता हो वही एक कल्पनामात्र के आधार पर अपनी प्रतिशा की सिद्धि मान लें, यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है। इसी तरह महातमा मटजीनी ने भी, अपने समय के एक अद्वितीय दार्शनिक होते हुए, ईश्वर को सिद्ध करने में जो तर्क सामने रक्खा है, वह वहुत हास्यास्पद है। आप कहते हैं:—सार्वभीम और आदिम विचार, जिनका अहरण करना सदा शाश्वत समभा जाता है, सारे संसार के भाव और विश्वास मिथ्या एवं अममूलक

नहीं हो सकते। यह तर्क श्रानेक प्राच्य श्रीर पाश्चात्य विद्वानों ने मेरे सामने पेश किया, लेकिन जो इसीका नाम तर्क श्रीर साजिक है, तो में कहूँगा कि संसार में तर्क शास्त्र का होना ही ज्यर्थ है।

'चेकुनिन' ( स्ती विद्वान प्राउढन का समकालीन ) ने ठीक ही कहा है कि जो तर्क की यही दशा है कि जो वात भूत श्रीर वर्तमान के सब लोगों ने ठीक मान ली है श्रीर मानते हैं, उसे तुम भी मान लो श्रीर कह दो कि खुदा है, श्रीर जो तुम नहीं मानते—'किम्, कस्मात् कारणात्' से काम लेते हो— हंश्वर के श्रस्तित्व में सन्देह करते हो—तो तुम्हारा तर्क गया भाड़ में, तुम प्रत्यन्त रान्तस हो। तय तो हमें भी मुखें। की तरह बुद्धि को विदाई देकर ठकुर खुहाती कहनी पड़ेगी। लेकिन कोइ जवाँ मर्द श्रपनी बुद्धि के विरुद्ध किसीके भय से मही वात को ठीक नहीं मान सकता। हाँ, हम यह ज़रूर मान लेंगे कि जो वातें श्रनन्त काल से सबने मान रखी हैं उनमें श्रनेक तर्क श्रीर विद्यान-विरुद्ध कल्पनाएँ हैं। ऐसी कल्पनाश्रों की जाँच-पड़ताल करना प्रत्येक नव्युवक का धर्म है। श्रन्धों के श्रनुगतों का कल्याण इस संसार में श्रसम्भव है।

वहुत काल तक संसार पृथ्वी को चपटी मानता रहा, तो क्या हम उसे आज भी चपटी ही मान लेंगे? इसी तरह की हज़ारों वार्ते है, जिन्हें संसार श्रनादि काल से एक तरह पर मानता चला आता था, विज्ञान ने उन्हें भूठा सिद्ध कर दिया छीर सच्चाई सामने रख दी तब हमें सत्य को मानना ही पड़ा।

लोग पहले पानी को एक तस्व सममते थे पर स्राज यह मानते को तय्यार नहीं, क्योंकि हम जान गए हैं कि स्राक्सी जन श्रीर हाइडरोजन नाम के दो वायन्य पदार्थों के योग से जल बना है। यदि हम स्राज समम गए कि खुदा नाम का कोई एदार्थ न तो है स्रीर न हो सकता है, तो हमारा काम है कि हम इस शब्द को अपने कोषों में से निकाल डालें, श्रीर धर्म की वेहदगी से स्रपना पह्णा पाक करें। संसार में वेहदगी; स्रान्याय, स्रत्याचार से ज्यादः पुरानी चीज़ें श्रीर कोई भी नहीं। पहले लोग स्त्रियों को उनके पिता से स्त्रीन कर ले जाते थे। इस रीति का प्रमाण स्त्राज भी न्याहों में पाया जाता है, लेकिन क्या श्राज भी कोई इस वात को पसन्द करेगा है किर ईश्वर को फुजुल पकड़ कर वैठना कहाँ की वुद्धिमत्ता है।

"वहुतेरे लोग कहते हैं प्रकृति श्रीर पुरुष भिन्न नहीं, एक ही हैं। जैसे द्रव्य में शिक्त, मेंहदी के पत्ते में सुर्ज़ी। इस-लिए ईश्वर है श्रीर सर्वव्यापो है।" हजरात, विना गुलाव के गुलावी रँगत कहाँ। जो यह कहें कि गुलाव भी है श्रीर गुलावीपन भी, इसी तरह ईश्वर भी है श्रीर प्रकृति भी; प्रकृति में जो शिक्त है वहीं ईश्वर है तो मैं कहूँगा कि ईश्वर द्रव्य-गत शिक्त का नाम है, वह कोई पृथक पूज्य पदार्थ नहीं, न वह न्यायशील श्रीर ज्ञान का इतना न्यारा गहरा गढ़ा है, जिसे हम नाप न सकें। ईश्वर यदि केवल गित, शिक्त, फोर्स का एक पर्य्याय मात्र है, तो रहने दो। इसके लिए लम्बी-लम्बी नमाज़ों श्रीर वड़ी-वड़ी उपासनाश्रों की क्या ज़रूरत है। वड़े-वड़े पोधों के पाठ, मन्त्रों के जप, तिलक-माला श्रीर गद्य-कथाश्रों से क्या लाभ है विद्यान पढ़ो, द्रव्यगत ईश्वर की उपासना से नए-नए श्राविष्कारों में लग जाश्रो। वड़े-वड़े श्राविष्कर्ताश्रों को ही श्रवतार, नवी श्रीर वली समभो, उन्हीं की खोज की पुस्तकों को धरमें पुस्तक मानो, संसार को श्रकारण धोका देने से क्या लाभ है

## ( 3, )

श्रव हम ज़रा श्रल्लाह मियां की पैदाइश की तरफ़ ध्यान देना चाहते हैं। क्यों कि श्रजन्मा, निर्विकार, श्रादि नामों से लोग उसे पुकारा करते हैं। जब मेरा मृल मंतव्य यही है कि ईश्वर को हमेशा के लिये जनता के हृद्य-पटल से उड़ा दिया जाय, तो जैसे कुश की जड़ खोदकर मट्टा डाला जाता है, उसी तरह ईश्वर की भी जड़ खोदकर उसमें करोसिन तेल डालना पड़ेगा। इसलिये ईश्वर की जड़ तलाश करके उसका नाश करना मेरे लिये श्रत्यन्त श्रावश्यक काम हो गया। यदि हमने तर्क से लोगों के कवरी साधारण विचारों को पलट भी दिया, तो क्या फिर लोग दूसरे नाम श्रीर रूप से एक नई कल्पना खड़ी न कर लेंगे। जैसे मृत्ति-पूजन छोड़ने पर भी मुसलमान संग श्रसवद को वोसा देने लगे, मुहम्मद साहब की कृत्र की ज़ियारत श्रीर कावे की ससजिद को सिजदा करने पर उतर पड़े, कुछ लोग ताजिये बनाने लगे, कितने हर किसी क्रव पर फूल-चहर चढ़ाना श्रौर फ़ातेहा पढ़ना सीख गये, यही हाल हिन्दुश्रों, ईसाइयों भ्रोर तैनों का भी है। इसिलये जड़ से ही ख़ुदा परस्ती का कला कमा हो, तभी कुछ काम हो सकता है। श्रस्तु, हम ईश्वर की पैदाइश की खोज करके श्रपने ज्ञानवान, विचारशील, धीर-वीर पाठकों को वतलाते हैं। हमारे परिश्रम से ईश्वर का नाम निशान ऐसा मिटे कि उसका कोई नाम लेने और पानी देनेवाला वाक़ी न रहे, तो समिमये कि महनत सफल हुई। अगर ज़रा भी चिन्ह वाकी रहा, वट-वृत्त की तरह फिर ईश्वर नये श्रंकुर फोड़ने लगा, तो संसार के सामने पक नई ज़हमत खड़ी दिखलाई देगी। आत्रो भाई, अति-कांति से प्रेम करो-ग्रपने बुद्धिदाता शैतान को सिंहासनासीन करने के लिये अपने शतु ,खुदा को गद्दी से उतारो । इसी में हमारा-तुम्हारा, सवका कल्याण है। जब से श्रेट ब्रिटेन ने खुदा को इटाकर शैतान को सिंहासनारुढ़ किया, तभी से उसका सारे संसार में वोल-वाला है। श्रव वाकी यूरूप में खुदा इधर-उधर छिपकर दिन काट रहा है, मगर श्रभागे पशिया देश में उसकी डकैती वरावर जारी है। इसलिये पशिया के प्रधान ज्ञान-कोत्र भारत से ईश्वर को सबसे पहले देश निकाल देना हम भारतवासियों का प्रधान कर्तव्य है। ·श्रगर हम सब नौजवान कमर कसलें, तो म० गांधी सदूश दस-पाँच श्रादिमयों की मदद से वह कभी स्थिर नहीं रह सकता है। श्राश्रो, इसकी जड़ का पता लगावें।

धर्म के भ्रम श्रीर ईश्वर की मिथ्या कत्वा के कुछ जोग "वालटेश्रर" की तरह समर्थक हैं, यह प्रजा में भय उत्पन्न करने की ज़रूरत वतलाते हैं। यदि ज़रूरत के कारण ही ईश्वर श्रीर धर्म को माना जाय, तो वह चिड़ियों को डरानेवाले, खेत में खड़े काठ के पुतले के सिवा श्रीर कुछ नहीं रह जाता। जिस तरह प्राचीन पर्व सार्वभीम कत्वना के श्राधार पर ईश्वर या धर्म का मानना विज्ञान श्रीर तर्क-शास्त्र के प्रतिकृत है, वैसा ही मूर्खां को डराने के लिये भी यह कत्वना चुरी श्रीर श्रमान्य है। जिनकी श्रन्तरात्माएँ दृढ़ हैं, जो सत्य के श्रनन्य भक्त हैं, जो मनुष्य के ज्ञान श्रीर उसके तर्क को प्रतिष्ठा देते हैं, वे इस प्रकार की कत्वना करने में सर्वधा श्रसमर्थ रहे हैं, श्रीर रहेंगे।

मनुष्य जो धार्मिक विश्वास श्रोर ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किये बैठा है, उसका कारण वेसमभी श्रोर श्रविचार इतना नहीं है, जितना दुख श्रोर हार्दिक श्रसन्तोष। गरीव, फिर वे-पढ़े लोगों का जीवन इतना बुरा है, उनको खाने-पहिनने श्रादि की इतनी तकलीफ़ है कि जब वे कुड़कुड़ाते श्रोर जलते हैं, तो सारा दोप किसी ऐसी शक्ति के महये मढ़ देते हैं, जो उनसे भिन्न है। यदि वे ईश्वर के वदले श्रपने कर्षों का दायित्व ज़वरदस्त, सतानेवाले श्रीर श्रधिकार-प्राप्त लोगों; पर इडालें,

तथा सामाजिक श्रतिकांति के लिये तैयार हों, तो ज्यादां श्रांत्र हों ; इनका दुल दूर हो जाय। इंश्वर को मान लेने से दुवां से छुटकारा मिलता नहीं दीखता । यदि मिलता तो एत्थर को रोटी मान लेने से भी काम चल जाता। सारांश यह कि ईश्वर का जन्म सूर्वता से हुआ, श्रीर भय, छुल तथा सन्तोप ने इसकी यथा श्रवसर पुष्टि की।

खुष्टि की प्रारम्भिक अबस्था में मनुष्य का ज्ञान इतना सम्हिद्धराली नहीं था, जैला अब है। उनकी योग्यता कम थी; उनके मनोवेग और ज्ञान यथार्थ काम न दे सकते थे, जैसे बालक का हाल है। इसलिये उसने देवी, देव, नवी, रस्ल, अवतार—जो भी किसीको स्का, मान लिया। यह सब मनुष्य की ही फल्पना है, इसमें वास्तिवकता कुछ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि मनुष्य ने जो करणना की, अपने ही कप के अनुरूप की। राज दरवार, ज़वरदस्तों की तलवार, धनवानों का खुखमय आगार देखकर हमने भी ईश्वर के दूत, जेल के बदले नरक, भोग-विलास के स्थान में स्वर्ग आदि की करणना कर ली। पुराण, वाइविल, कुरान की गाथाओं को देखकर इस करणना की निस्सारता सहज ही समभ में आ जाती है।

जिस तरह वच्चे अपनी मातामही, पितामही से भूठी लम्बी-चौड़ी कथाएँ सुनकर कल्पना किया करते हैं, मनुष्यों ने भी अपने ल्वार्थी भाइयों से, जो कुछ अधिक चतुर थे, कथाएँ सुनीं, और धर्म के नाम से, भोलेपन के कारण, सत्य मान

येठे। इस गण्य को लोगं न मानते, तो पोप, खलीफ़ा, गोस्वामी पंडित-पंडे, पुजारो प्रभृति लोग जनता के धन से मोटे वनकर न येठ सकते। एक बार कल्पित ईश्वर को गद्दी पर विठाकर जैसे मंदिर में मूर्ति स्थापित करके लोग संसार को ठगने लगते हैं, उसी तरह विद्वानों श्रीर बात बनानेवाले लोगों ने यह कह कर ठगना श्रारम्भ किया कि 'वह बड़ा दयालु, न्याय कारी, सारे जगत् का नियन्ता, विनाशक, श्रीर बनानेवाला है', इत्यादि । इस तरह कल्पित ईश्वर की वेदी पर भोले-भाले लोगों का बलिदान प्रारंभ हो गया, श्रीर हो रहा है।

इंश्वर को स्वामी श्रीर मनुष्य को दास मानने से ही संसार में गुलाम श्रीर स्वामी की सृष्टि हुई। इस विश्वास को लोगों ने श्रवतार श्रीर नवी श्रादि वनकर फैलाया, श्रीर पुजे। जवतक ईश्वर सब का स्वामी है, मनुष्य दास है। जहाँ ईश्वर का स्वामित्व मिटा कि मनुष्य की दासता का भी श्रन्त हुश्रा समको। इसलिए ईश्वर को मिटाना, मनुष्य की दासता को हटाना तथा मनुष्यों में समता श्रीर न्याय का प्रचार करना है। ईश्वर को मानना बुद्धि श्रीर न्याय को एकदम जलांजिल देना है—मनुष्य की प्राक्षत स्वतंत्रता का निश्चय नष्ट करना है। इसलिए यदि हम मनुष्य जाति का कल्याण चाहते हैं, तो सबसे पहिले हमें धर्म श्रीर ईश्वर को गद्दी से उतारना चाहिए। श्राँखों से दिखलाई देनेवाले श्रीर बुद्ध-ग्राह्य जगत्

को मिष्टया सानकर एक निर्मुत पदार्थ को सर्व श्रेष्ठ मान वैठने से बड़ी और क्या नादानी हो सकती है ?

धर्म ने ननुष्य को कितना नीचे गिराया, कितना कुकर्मी बनाया, इसको हम स्वयं सोचकर देखें। ईश्वर का मानना सबसे पहिले बुद्धि को सलाम करना है। जैसे शरावी पहला प्याला पीने के समय बुद्धि की विदाई का सलाम करते हैं। वैसे ही खुदा के मानने वाले भी बुद्धि से विदा हो लेते हैं। ईश्वर की कत्पना मनुष्य को निर्वल, निकस्मा, परमुखापेची श्रीर गुलाम बना डालतो है। धर्म ही हत्या की जड़ है। कितने ही पशु धर्म के नाम पर रक के प्यासे ईश्वर के लिए संसार में काटे जाते हैं, इसका पता लगाकर पाठक खयं देखलें।

कितने भगड़े इंश्वर श्रीर धर्म के नाम पर होते हैं। श्राज हिन्दू मुसलमानों के बीच, भारत में जो परिस्थित है, इसकी ज़िम्मेदारी धर्म ही पर है। श्राज हुरान को हटा दिया जाय, तो श्राज ही भारत में सुख शांति श्रा सकती है। हिन्दुश्रों में भी वही दोप है, जो मुसलमानों में, किन्तु बहुत कम दर्जें में। दोनों में राई श्रीर पर्वत का श्रन्तर है। फिर भी दोनों ही ग़लती पर हैं। जितने पादगी, मौलबी, पंडित पुजारी श्रीर पंडे धर्म का दम भरते हैं, ऊपर से बड़े भद्र होते हैं, पर इनके दिल-बहुत काले होते हैं। इनकी श्राकांद्या रहती है कि ईश्वर श्रीर धर्म के नाम पर हम ठगें, लोग ठगे जायें, श्रीर हमारे पीचे पागल की तरह फिरें।

श्राज हमारे देश के वड़े वड़े विद्वान यदि घृटिश गवर्नमेंट को निकाल देने के पहले ईश्वर को निकाल देते. धर्म की फाँसी श्रपने गले से निकाल फेंकते. तो उनमें कभी का इतना बल श्रा जाता कि श्रपने देश का शासन श्राप करते। ज्यॉ-ज्यॉ दुनियाँ में बुद्धि का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों ईश्वर की थोथी कल्पना मिटती जाती है। समय श्रावेगा कि धर्म की बेहदगी से संसार झुटकारा पाकर सुखी होगा, श्रीर श्रापत की कलह मिट जायगी। खुदा है क्या वस्तु ? कोई वस्तु १ कोई व्यक्ति १ कोई मनोगतभाव १ कुछ नहीं—एक मात्र निर्मू ल कल्पना, एक कुविचार जनित शब्द । मतुष्य से अधिक सुन्दर, चतुर, शक्ति-शाली, ज्ञानवान, भद्र, परोपकारी, न्याय श्रीर दया की समभानेवाला. न तो कुछ है, न हो सकता है। लेकिन जब कुछ मनुष्य इसरों को सतानेवाले देखे जाते हैं, तो लोग एक सर्व श्रेष्ठ की कल्पना करते हैं। यह नहीं समभते कि मनुष्यों में ही भले, श्रीर बुरे दोनों की पराकाष्टा के नमने हैं। इसीको देखकर इंश्वर में कोध, बदला, माशकरी-शक्ति का श्रारोप किया गया है। मज़ब्य का ही मनन करो, प्रकृति का पाठ पढ़ो इसी में हमारा कल्याण है। एक श्रत्याचारी, एक मूर्ल शासक, खुद-मुख्तार श्रोर रही ईश्वर की कल्पना करना मानों खतन्त्रता न्याय श्रोर मानव धर्म को तिरस्कार करके दूर फेंक हेना है। यदि श्राप चाहें कि ईश्वर श्रापका भला करे, तो उसका नाम एक दम भुलादे। फिर संसार मंगलमय हो जायगा।

मनुष्य के सरल, साधारण नैसर्गिक ज्ञान के हथौड़े से ही रंश्वर की कल्पना को दुसड़े दुकड़े कर सकते हैं लेकिन देखा जाता है कि ग्राध्यातिमकता के नप-नप जाल मनुष्य जाति के गले की फाँसी को सुहड़ करने के लिए गढ़े जा रहे हैं। लाधारण जन लबूह का कल्याण श्रौर हमारी मानसिक भलाई इली में है कि इस ईश्वर की ऐतिहासिक उत्पत्ति को मनोयोग के साथ सममें: वे कौन से लगातार ऐसे कारण हुए, जिनसे मनुष्य ने अपने मन में ईश्वर की कल्पना की, इसका विचार करें। यदि हम लोग पढ़े-लिखे, विचारशील व्यक्ति श्रच्छी तरह ध्यान देंगे तो निरुसन्देह हम थोड़ा-बहुत उस सार्व भौम श्रन्तरात्मा की पुकार से जिसका शेद हमने श्रड्छो तरह प्रकट नहीं किया दव ही जायँगे। कड़े से कड़े दिल के आदमी में पक स्वाभाविक निर्वेतता देखी जाती है। वह यह कि सामा-जिक वन्धन के दवाव में मनुष्य आ ही जाता है और किसी न किसी प्रकार उसे धार्मिक वेहृद्गी के गढ़े में गिरना पड़ता है। टामस पेन सहश विहान ने भी ऐसी ही ठोकर खाई है। धर्म्म की पकड़ साधारण जन समृह या समुदाय में इतनी वलवती क्यों देखी जाती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सद पागल हैं। लेकिन इस श्रवृक्ष पहेली में फँसने का कारण उतकी मानसिक चिन्ता श्रीर हार्दिक श्रसन्तोप है। इस श्रसः न्तोप का निराकरण ईश्वर की कल्पना से नहीं हो सका तो श्रव सामाजिक श्रतिकान्ति ही इसका श्रन्त करेगी। इस लिए श्रतिकान्ति की बड़ी ही श्रावश्यकता है।

जर्मनी के. एक राजसत्तापीयक (Imperialist) ने एक बार कहा था—We do not only need the soldiers legs but also their brains and their hearts.

श्रर्थात्—हमं लिपाहियों के केवल हाथ-पैरों की ही ज़रूरत नहीं है, हमें उनके दिल और दिमाग को भी गुलाम बना लेने की ज़रूरत है। मतलव यह कि गरीवों के दिल श्रीर दिमाग्-उनकी मानसिक वृत्ति श्रीर दृद्य, ऐसे बनाए जायँ कि वह खुशी से पशुश्रों की तरह धनिकों, श्रधिकार प्राप्तों की गुलामी यावज्ञीवन करते रहें। यही तो मनु ने भी किया, जो उसने शूट्टों के कर्तव्य में यह लिखा कि "एक मेव तु शूट्टाणाँ प्रभु कर्म समादिशत्; पतेपाँ त्रय वर्णानां गुश्रूपामनुस्यया।" यह तो ग्रीवों के लूटने का एक साधन है कि उन्हें धर्म-याजकों द्वारा ईश्वर या धर्मा का भय दिलाया जाता रहे। क्या कोई परिडत, मौलवी, पादरी या दूसरा धर्म-याजक या राजा-रईस श्रीर धनिक ईश्वर को मानता है दिससे डरता है किसी नहीं। क्योंकि वह जानते हैं कि ईश्वर मात्र हमारे स्वार्थ सिद्धि का एक ख़ासा वहाना है। स्कूल, देवालय, राजसत्ता श्रीर छापेलाने सभी कुछ ग्रीवों को ग्रन्धकार में डालने के लिए धनवान श्रीर ज़वरदस्त लोगों ने मिलकर बनाये हैं। स्कूल भी गुद्ध बुद्धि से जनता के हित के लिए नहीं बनते। देवालय श्रीर ईश्वर तो प्रत्यस ठगी के जाल ही हैं। एक स्थान पर परिडत शिरोमणि बुहारिन ने स्पष्ट बतलाया है कि ग़रीबों के छलने के लिए धर्मा (church) के द्वारा क्या-क्या शरारतें की जाती हैं। हम यहाँ विषयान्तर होने के भय से इस परिडत की विवेचना को स्थान नहीं दे सकते, श्रन्य पुस्तक में हम शीव इस प्रकार के विषयों पर श्रलग विचार करने की इच्छा रखते हैं, यदि समय और शरीर साथ दें। ईश्वर का भ्रम मनुष्यों में कैसे उत्पन्न किया गया, इसी पर श्रव में थोड़ा सा विचार श्रीर करके इस लेख को समाप्त करना चाहता हूँ।

वेद, पुरान, कुरान, इझील आदि सभी धर्म पुस्तकों के देखने से प्रकट है कि सारी गाथाएँ वैसी ही कहानियाँ है, जैसी कुछ वृद्धी दादी, नानी अपने वच्चों को सुनाया करती हैं। गीदड़, चिड़िया और राज्ञस की जो कहानियाँ मैंने अपनी दादी से सुनी थीं मुमें आज तक याद हैं। धर्म-प्रन्थों की वातें कहीं-कहीं इससे वेहदगी में वहुत आगे वढ़ जाती हैं। इसका कारण मानव बुद्धि का अपूर्ण विकास, वालकाल का मुद्द विश्वास ही हो सकता है, न कि और कुछ। ईश्वर, देवता, नवी, वली वगैरह-वगैरह की बुद्धि-विरुद्ध कलपनाएं मुखें। के ही सर में पैदा हो सकती हैं, और उन्हीं के भाई-वन्द उनको सुनकर उन पर विश्वास कर सकते हैं। विना देखे-सुने, विना जाने-पहनाने अनहोने लापता ईश्वर या खुदा के नाम पर

श्रपने देश को जाति को, व्यक्तित्व को श्रीर धन-सम्पत्ति को नष्ट कर डालना एक ऐसी वड़ी मुर्खता है, जिसकी उपमा नहीं मिल सकती। हमारे देश में करोड़ों हरामख़ोर इसी वेहदा कल्पना की वदौलत मजे उड़ाते हैं, श्रीर रात-दिन श्रम करने बालों को एक दुकड़ा रोटो भी यथा समय नहीं मिलती।

वह युद्धि-विहीन मस्तक कैसा विचित्र होगा जिसमें 'कुछ नहीं' को सत्य, न्याय सौन्दर्य्य, वल, धन, जन से सम्पन्न श्रीर मनुष्य को नीच, हेय, पतित, निर्वत, निकम्मा, पापी माना तथा मनवाया होगा। श्राश्रो श्राज हम इस वेहृदगी का पर्दा फाड़कर संसार को खुली बनाने के लिए, उसके गले से गुलामी का तौक उतारने के लिए, घोपणा करें कि 'ईश्वर नाम का कोई पदार्थ नहीं है-मनुष्य-बुद्धि की विडम्बना मात्र है।' जनतक यह किएत स्वामी ईश्वर हमारे सर पर रहेगा, हमारी गुलामी का श्रन्त न होगा। ईश्वर गया श्रीर गुलामी भी गई। ईश्वर ही सब पापों की जड़ है; सब फसादों का ब्रादि कारण है; इस नाम के भूल जाने में ही हमारा कल्यागा है। प्रह्लाद के पिता के चातुर्य्यं ग्रीर प्रह्वाद की श्रदूरदर्शिता का पता, उन विचार शीलों को लगेगा, जो बात की तह में गहरे घुस कर देखेंगे। ख़ुदा यदि हमारे कल्याण का हेतु हो सकता है तो लिर्फ़ इसी तरह कि वह हमारे वीच से सदा के लिए श्रपना सा मुँह लेकर चला जाय। सच तो यह है कि संसार ख़ुदा से तंग श्रा चुका है।

हमं दुःख है कि श्राज भी हमारे देश के वड़े-वड़े विद्वान यथा महात्मा गाँधी, साधु टी० एल० वासवानी, डाक्टर संजीनी, दार्शनिक-श्रम्रगएय श्रीयुक्त भगवानदासजी इत्यादि इत्यादि उसी भूल को एद-एद एर दृढ़ करने में लगे हुए हैं, जिसे, हमें चाहिये था, संसार के सामने प्रकट करके सदा सर्वदा के लिए उठा देते, मिटा देते, श्रशुद्ध श्रज्ञर की भाँति हरताल से श्रिपा देते।

हमारे कुछ दोस्तों ने प्रकृति की आन्तरिक अविच्छित शिक को (Inherent force in matter) ही ईश्वर मानकर प्रार्थना की है कि ईश्वर को इस काम से अलग पड़ा रहने दीजिए लेकिन में कहता हूँ कि इस प्राकृत-शिक के लिए प्रकृति काफी है। अधिक विचार के लिए आप चाहें तो दूसरा नाम रख सकते हैं, लेकिन में अपने वश पड़ते 'राजा और ईश्वर' शब्दों से संसार के किसी भी कोष को कलंकित नहीं देखना चाहता। ईश्वर हो की कल्पना राजा की कल्पना, गुरुआं और महन्तों की कल्पना का प्रधान कारण है। इसीलिए संसार की खुराइयों पर कुठाराधात करने के निमित्त ईश्वर की जड़ को काटना सव से पहले ज़क्सी जान पड़ता है। आशा है हमारे नचयुवक इस बात पर गहरी, गंभीर और धीरता, वीरतापूर्ण दृष्टि डालकर शीघ ईश्वर की निकालने का प्रयत्न करंगे।

## . (8):

संसार में जितने धर्म प्रन्थ हैं, सब में श्रेष्ठ श्रीर सुपाठ्य प्रकृति है। इस प्रन्थ के किसी-किसी सूत्र के व्याख्याकार भी हुए हैं। उन्हें भी हम चाहूँ तो सहायता लेने के विचार से पढ़ें। कितने ही गणितछ, भूगोल-खगोल वेत्ता, नई-नई खोज श्रीर श्राविष्कारों के कर्ता परिडत हुए हैं। इन्हीं के निश्चित सार्वभीम निर्दोप प्राकृतिक नियमों के मानने से हमारी स्वाधी-नता, स्वतन्त्रता तथा मनुष्यता स्थिर रइ सकती है। इसके विरुद्ध जितने नियम हैं, वे सब तिरस्कार के साथ ठुकरा देने योग्य हैं। इन प्राकृत नियमों को जहाँ हमने एक वार समक्ष कर मान लिया, फिट इमारा मार्ग सीधा सरल श्रीर निष्कएटक ही जायगा। संसार में साधारण जनता से लेकर वड़े-वड़े पिएडत तक सभी इस के विरुद्ध मुँह खोलने में श्रसमर्थ हैं। कीनसा ऐसा धर्मा-याजक, जगदुगुरु, महात्मा, पैगम्बर, श्रवतार, वर्शनकार इस संसार में है, जो गणित-शास्त्र-लिख सिद्धान्ती का त्रिरोध करने का साहस करेगा। पागलखाने के बाहर में समभता हूँ, कोई वड़े सं वड़ा धम्मान्ध भी ऐसा न मिलेगा, जो एक एक दो होते हैं, इस वात से इनकार करे। आग जलाती है, पानी जलती हुई श्राग को बुक्ता देता है, इसे कौन न मानेगा, जब तक कि कोई प्राकृतिक नियम इसके श्रन्दर दूसरी क्रिया न करता हो। साधारण जनता भी श्रपनी प्राकृतिक सहज वुद्धि से काम लेती है। वह नित्य प्रति निसर्ग के नियमों को देखती है और एक सीमा तक जानती तथा मानती है। यदि उसे बहके हुए एथ से हटा कर नैसिंगिक नियमों पर ही द्रह रखने का थोडा सा प्रयत्न किया जायं, तो निस्सन्देह सत्य प्रकृति की उपासना श्रथवा श्रसत्य ईश्वर के त्यागं से वड़ा कल्याण हो। हमें उचित है कि हम विज्ञान की शरण तें श्रीर धर्मा प्रनथों को एक साथ नहीं में वहाकर सदा के लिए निश्चिन्त हो बैठें। महात्मा कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा कि "Religion is opium of the people" अर्थात् धर्मी मनुष्य जाति की अफीम है। एक वार जिसे अफीम का चल्का लग गया, वह फिर इस घातक विष के फन्दे से निकल नहीं सकता। यदि कोई हज़ार में पक श्राध निकल जाय तो वह वड़ा ही चतुर, दूरदर्शी, वहादुर या साधारण परिभाषा में श्रत्यन्त भाग्यशाली है। किसी-किसी धर्मस्पी श्रहिफेन का नशा तो इतना गहरा श्रीर वेहोश करनेवाला होता है कि लोग अपनी जन्म-भूमि, अपने वाप-दादों के रजवीर्थ्य श्रीर श्रपने श्रस्तित्त्व को भी भूल जाते हैं। उदाहरण के लिए इम मुसलमान धर्मा को ही लेते हैं। भारत के गुलाम, भूक-मरते, श्रर्ड जाति वाले मुसलमान श्रर्थात् नवमुसलिम अपनी पीनक में श्राकर कहने लगते हैं कि इस्लाम धरती की किसी सीमा से श्रावद नहीं है। 'मुस्लिम हैं, हम वतन हैं सारा जहाँ हमारा।'

हम इन मुसलमानों से पूछते हैं कि आप हिजरत कर गए थे, तब आपको मुसलिम दुनिया ने यथेष्ट प्यार क्यों न किया, रहने को स्थान क्यों न दिया ? श्रापका वतन सारा जहान या तो श्राप क्यों मुँद की खाकर लीट श्राप ? १६२० ईस्वी, में सारे हिन्दुस्तान के मुसंलमान क्यों न श्रपने धर्म शास्त्र के : श्रमुसार हिजरत कर गए ? वात यह है कि फकीर टुकड़े को तरसता है, जिसके रहने के लिए एक कोठरी भी नहीं; वही मुखं सारो पृथ्वों को श्रपनी जागीर वताता है—

"श्रावारा वतन कहते हैं सारा जहां हमारा।"
हमारे मुसलमान धम्मांवलम्बीय भाइयों से इस पीनक ने माता के रज श्रीर पिता के वीर्थ्य से भी इनकार करा दिया। काश्मीरी ब्राह्मण, खत्री श्रीर श्रन्यान्य हिन्दू श्रपने वाप दादों को भूल कर खुरासानी खच्चर की तरह श्रपने वाप दादों के बदले श्ररब के रज-वीर्थ्य का दावीदार बनने लगता है। वह इतना पागल हो जाता है, उसे यह भी तमीज नहीं रहती कि धम्में. दूसरी चीज़ है श्रीर नस्ल दूसरी; धम्में का ख़याली पुलाव श्रीर वात है श्रीर श्रपनी प्यारी मातृ-भूमि दूसरी। धम्में के नश्रे में चूर नश्रेवाज जिधर देखों यही पुका-रता फिरता है कि:—

वरस्य शश जेहत दरे श्राहनः वाज है। यां इन्तियाज नाकिसो कामिल नहीं रहा॥

इसी वदंबख़्त मज़हब के नशे के पागल श्रपनी उस धरती की महत्ता श्रीर पवित्रता को भूल जाते हैं, जिसमें उनकी श्रगणित पोढ़ियों की मिट्टो मिजी हुई है श्रीर चोरों, उठाई गीरों, डकेंतों की धरती को पवित्र मान बैठते हैं। इस तरह जिस धर्म के कारण मनुष्य मनुष्यता से गिर जाता है, उस धर्म, मजदव या रिलोजन से कब किसी मनुष्य का कल्याण सम्भव है ?

इस धर्म के नशे में डाल कर ही पूँजीपित शासन श्रमिकों को लुटता-खलोटता और पश्चतुल्य दास बनाये रखता है। समस्त देशों के धर्म-याजक धर्म रूपी अफोम के प्रचार के टेकेदार हैं। इन्हें इस नशे से ग्रीकों को उन्मत्त रखने के लिए धन मिलता है। घर्म की व्यवस्था हमेशा धन से ख़रीदी जाती रही है और अब भी ख़रीदी जाती है। डायर और श्रो-डायर की क्रूरताशों का पाद्रियों ने और मालावार के मोप-लाओं के राद्मसी क्रियों का मौलानाओं ने समर्थन किया। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो सब पापों की जड़ धर्म है। इसलिए धर्म, मज़हब श्रर्थात् ईश्वर या अल्लाह को जितनो जल्दी भूमण्डल से विदा किया जाय उतना हो श्रच्छा।

याद रहे संतार में सामाजिक समुक्रति कभी किसी.
अप्राकृत शक्ति या शक्तियों से नहीं हुई, न हो सकती है और
न कभी होगी। इसके सिवा विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया
है कि ईश्वर, धर्मा और अनैसर्गिक शक्तियों का भाव मानव
जाति में उसकी एक अनुक्रत दशा में पैदा होता है। यह इतिहासकिद्ध वात है, फिर विकास होने पर एक ऐसी उन्नत दशा आ

जाती-है कि यह भाव परिवर्तित होते-होते विनष्ट हो जाता है। जैसे लड़कियाँ जवान होने पर गुड़ियों का खेल छोड़ देती हैं श्रीर फिर पसन्द नहीं करतीं; छोटे-छोटे बच्चे जवान होने पर श्रपने बचपन के बहुतरे विचारों श्रीर बेहुदा खेलों को छोड़ देते हैं, वैसे ही मनुष्य जाति भी एक विशेष विकसित श्रवस्था के प्राप्त होने पर धर्म श्रीर ईश्वर के निर्मुल कगड़ों को त्याग देती है। मनुष्य श्रीर प्रहाति के संवर्ष में किसी भी तीसरी वाह्य महाश्राक्त का न श्रस्तित्व है, न 'कुछ नहीं' का कोई हस्तेलप हो सकता है। थोड़े से स्वार्थी लोग जनता को छूट कर श्रपना पेट श्रीर जेव भरने के लिये उसे धर्म के श्रेधेरे में डाल रखने का प्रयत्न किया करते हैं। इन श्रसहिचार वालों श्रीर लुटेरों से चचे रहना चतुर मनुष्यों का काम है।

हम कह जुके हैं कि केवल मूर्ख ही अनहोनी घटनाओं के घटने का विश्वास कर सकते हैं। जितने धर्म हैं सब गण्य कथाओं के आधार पर रचे गये हैं। यदि मिथ्यावादियों की होड़ा-होड़ी का आनन्द देखना हो, तो हमें चाहिए कि हम धर्मा पुस्तकों को एढ़ें और धर्म नामक जुल से बचें।

सांसारिक कार्य्य करने के समय हम देखते हैं कि सभी नास्तिक होते हैं। क्या कोई मनुष्य रातदिन जो काम करता है उसमें प्रतिक्षण धर्ममें का विचार रखता है १ रख ही नहीं सकता। यदि रखे तो संसार का कोई काम न चले। यही पट्टा प्राची प्रभाण धर्म्य की श्रव्यवहारिकता श्रीर व्यर्थता को शिद्ध करने के लिए काफ़ी है।

ला मेल जामज एक फ्रांसीसी विद्यान ने विश्वक्रम-ज्ञान ( System of the universe ) को प्रकट करने के लिए एक पुरतक लिग्बा। यह पुस्तक प्रथम 'नेपोलियन बोनापार्ट' ने पढ़ी श्रीर लेराक से कहा 'श्रापकी इस पुस्तक में कहीं भी ईश्वर का नात नहीं मिला'। परिष्ठत जा से स ने उत्तर दिया कि मुक्के देसी कल्पना की कहीं भी श्रावश्यकता नहीं मालूम हुई। उसने श्रपनी पुस्तक में न तो वहीं दर्शनों से काम लिया, न किली विश्व के रचयिता की कल्पना से, साथ ही उसने गणित का भी प्रयोग नहीं किया था। लेकिन वाद में गणितज्ञों ने इसके विचारों को गणित की कसौटी पर रखा तो सत्य ही सिद्ध हुआ। आज कल विज्ञान के जितने भी महत्वपूर्ण प्रंथ देखे जाते हैं, कहीं भी उनमें इंश्वर की ज़क्करत नहीं दिखाई देती। विना ईरवर के माने ही लारी की सारी समस्यास्री की तीमांला हो जाती है। मानवीय ज्ञान में कहीं भी ईश्वर की स्थान नहीं मिलता। हमने जो कुछ ऊपर लिखा है, उससे इबट है कि मनुज्यों का स्वातन्त्र्य, साम्य श्रीर वन्धुत्व विनष्ट करने में धनपात्रों, पूंजीपतियों, ज़वरदस्तों, राजकर्मवारियों श्रादि काव्यामा लोगों का जितना हाथ है, उतना ही धर्म का भी है। धर्म श्रत्याचारियों को सहायता देता है, गरीवों तथा दु जियों को श्रीर भी श्रिधिकतर ग्रीव श्रीर दुःखी वनांता है।

किसी समय योरोप में धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार हुए हैं कि उन्हें देखकर शैतान, जिसे धर्मा के माननेवालों ने इतना बुरा चित्रित किया है, यदि सचमुच होता तो लजा से सर भुका लेता। योरोप का धर्मा इतिहास ( History of the church ) इसका साची है । इनकोज़ीशन के कानून ने क्या कुछ अत्याचार नहीं किया ? यह कानून पुरोहित-राज पीप की तृष्णा-पूर्ति के लिये धर्म-विरोधी की खोज करके उसे प्रताडित करने के लिये बनाया गया था । वेचारे 'मूर' जैसे सजानों की हत्या का दायित्व धर्म या ईश्वर के ही सर पर है। क्लंको के इत्याकाएड में भी पापिष्ट ईश्वर श्रीर धर्म का ही हाथ था। धम्मान्धता के नाश के साथ ही साथ पारवात्य देशों के अभ्युदय का इतिहास आरम्भ होता है, और धर्म व ईश्वर के पतन से ही सोवियट सरकार के जन्म का सूत्रपात रूस में हुआ। इतनी ऐतिहासिक घटनाओं के होने पर भी जो धर्म के नशे के मतवाले हैं, उन्हें बुद्धिमान समर्भे या क्या ? यह हमारी सम्भा में नहीं त्राता।

भारत में भी शैवा, शाकां, वैष्णवां की पाग्स्परिक कटा छुनी का पता पुराणों से मिलता है। स्मातों, तांत्रिकों श्रीर श्रीत्रियों के वैर भाव का हाल हिन्दू मात्र श्रपने श्रन्यों को पढ़ कर जान सकते हैं। मुसलमानों की पारस्परिक धार्मिक दल विन्द्यों श्रीर भगड़ों का दाल जानना हो तो 'श्रसना श्रशारिया', नामक पुस्तक को पढ़कर देखिए। यह पुस्तक फारसी भाषा

में भारत में भी मिल सकती है। सम्मवतः इसका उर्दे लंकारण भी मिलता होगा। इसमें बहत्तर फिकों के भेदों हा वर्णन है। बौद्धों श्रीर वैदिक धम्मांवलम्बीय ईश्वरवादियों में जो भगड़े हुए वह भी हमसे छिए नहीं हैं। शंकर स्वामी के शिण्यों ने बौद्धों के साथ जो ज़वरदस्तियाँ की उन्हें हम चाह तो अच्छी तरह पुस्तकों को पढ़कर जान सकते हैं। जैनियों में श्वेताम्बरी, दिगम्बरी, तेरह पंथी, स्थानकवासी श्रीर श्रात्मारामी प्रभृति सम्प्रदायों की मोर्चेवन्दी, भगड़े-लड़ाई हमारी श्रांखों के सामने हैं। यदि धम्में की कल्पना न घोती तो इन सारे भगड़ों का भूमण्डल पर नामोनिशान न होता, न इतिहास के पृष्ट इन श्रमासुपिक कृत्यों से गन्दे होते। इन सबका दायित्व ईश्वर श्रीर धम्में के माननेवालों पर ही है।

संसार की सम्पत्ति को धनपात्र, राज्याधिकारी श्रीर पुरोहित मण्डल खूब वेददीं के साथ उड़ावेंगे क्योंकि ईश्वर ने उन्हें दिया है। विचवनिए दलाल, सटीरिए, छुँटे व्यापारी घर्चे हुए धन के भोगने के लिए वने हैं। राज-कर्मचारी श्रीर सैनिक मनमानी सम्पत्ति का विश्वंस करेंगे। लेकिन जन समूह को वही दुकड़ा श्रीर धक्का बदा है। इनके लिए इनके ईश्वर को श्रादेश ही यह है कि निर्धन तो संसार में वने ही रहेंगे, तुम संश्री-पिश्रो, मौजें मारो। क्या हम लोग ऐसे ईश्वर की परवां करते पड़े रहेंगे । श्रव संसार से मुक्कड़ों की श्रेणी, गरीबों का

नाम, गरीवो का द्वश्य मिटाना होगा, श्रीर इस काम के लिए ईश्वर को श्रद्धचन्द्र देकर निकालना श्रनिवार्य है। हमें श्रव पत्तपाती, निर्दय, कल्पित ईश्वर की ज़करत नहीं रही।

, श्रव वह समय नहीं रहा कि मुसलमानों के वालक कुरान रटने में श्रपने जीवन का पवित्र श्रीर उत्तम श्रंश वरवाद कर डालें, या ईसाई वालक इजील की आयतों, गीतों या भजनों में जीवन गँवावें। न अब दूसरे ही धर्मा वाले अपने धर्मा के नाम पर अञ्छे काम करने के स्थान पर आँख वन्द करके दकियानूसी रही कितावों के मन्त्र या श्रायत, श्राणीत वार बड़बड़ावेंगे। संसार द्वोश में आता जाता है और पुरोहिती तथा कलिपत बेहुद्गियों का अन्त होने वाला है। अब महात्मा मसीह की यह श्रयौक्तिक शिक्षा कि 'जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे उसे श्रपना दूसरा गाल भी फेर दो' संसार को धोके में नहीं डाल सकती। इम देखते हैं कि गाय, भेड़, वकरी आदि सीधे प्राणियों को उनकी शान्ति प्रियता के कारण कोई नहीं छोड़ता। रोज़ वड़े-बड़े मोलवी, पादरी श्रीर परिडत उन्हें मार-मारकर इड़प करते चले जाते हैं। शेर श्रीर चीतों का न कहीं बलिदान होता है, न कुरवानी, न इनको कोई मारकर खाता है। इसलिए ऐसी उत्तरी शिक्षा देनेवाले अव संसार में प्रतिष्ठा नहीं पा सकते।

म् मसीह कहते हैं—"Thou Shalt not Kill thy neighbour." a christian has no right to exploit his

brother. "Turn thy right cheek when Smitten

तृ श्रपने पड़ोसी को मत मार (यहाँ पड़ोसी का श्रर्थ है हरेक मनुष्य )। पर क्या जर्मनी, फ्रांस, इटली श्रीर ग्रेट ब्रिटेन के ईसाई चुपचाप वाएँ गाल पर थप्पड़ खा कर दाहना गाल दूसरे तमाचे की प्रतीक्षां में फेर देते हैं। श्रापस में थोड़े से शादमियों के लाभ के लिए लाखों के गले नहीं काटते-कटवाते ? क्यों श्रपने पड़ोस के लोगों को लूटने की ही विन्ता में ईसाइयों श्रीर मुसलमानों का समय वीतता है। फिर हम धर्म के भूठे ढकोतलों में फँसना फैसे पसन्द कर सकते हैं। लुटेरे लोग श्रीर डाह्य जातियाँ धरमै-उपदेश को खुन-खुनकर मन में मुसकराती हाँद कहती हैं "लो मौलवीजी, पादरी साहब, पिएडत महा-जरा हम आपको धन देते हैं, आप दुनिया को उपदेश करें जिसमें सब सोते हुए वे होश पड़े रहें और हम सब की खुब लूटें।" इस दशा में क्या ईश्वर की कल्पना निर्द्धनों, कमज़ोरों, श्रीर भोली-भानी सर्व साधारण जनता के लूटने का पंक ख़ासा साधन नहीं है ? है, इसलिए ईश्वर श्रोर धर्म को जितनी जल्दी संसार से नेस्त मानूद कर दिया जाय उतना ही अच्छा।

मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह नैसर्गिक नियमों के प्रमुसार चले क्योंकि उनको उसी ने प्रत्यक्त किया है। उसके सर पर किसी व्यक्ति या समिष्ट ने उन्हें ज़बरद्स्ती नहीं ादा। जो ऐसे नियमों को मानने हैं, जिन्हें किसी डाकू या

डाकुश्रों के गरोहंने चनाकर श्रपने या कल्पित ईश्वर के नाम से जारी किया है वह क्या वज्र मूर्ज नहीं है ? वह विना सींग श्रीर पूछ के पशु हैं श्रीर जो इस तरह नियम बनाकर धर्म या श्रिधिकार के नाम पर उन्हें लोगों से मनवाते हैं वह जंगल के हिंसक पशुर्यों के मौसेरे भाई हैं। अधिकार-प्राप्त पुरोहितों, शासकों श्रीर धनपात्रों का यह स्वामाविक स्नत्तण है कि वह जन समृदों के दिल और दिमाग को-मन और बुद्धि को-मुदी बनाकर छोड देते हैं। इनलिए श्रधिकार प्राप्त लोगों के द्धदय श्रीर मस्तिष्क दोनों कुत्सित होते हैं। यह कुत्सित द्धदय स्रोग विद्वानीं, वैद्वानिकीं, वड़े-वड़े लेखकी श्रीर वक्ताश्री की धन देकर श्रपना गुलाम वना लेते हैं। हम तो रोज वड़े-बड़े सिद्धान्त की डींग मारनेवालीं. संन्यास का कराडा उठाने वालों, राजनीति में वाल की खाल खींचनेवालों, दम्भपूर्ण नेताओं को धनिकों के सामने कठपूतली की तरह नाचते देखते हैं। इनमें से एक भी निर्धन श्रीर ग़रीवों में रह कर, उनका सा जीवन न्यतीत करके उन्हें उनके स्वर्चों से सावधान वा जान कार करने नहीं जाता। मैं नहीं समभता कि ईश्वर श्रीर धर्मी किस मर्ज की दवा है। धर्मा ज्ञान किस खेत की मूली या वशुत्रा है ? सम्प्रदायों श्रीर समुदायों के नेता किस जंगल की चिड़िया, हैं ? आज यदि हम इस श्रन्धविश्वास को छोड़ दें, ईश्वर, धर्म श्रीर धनवानों के एजेंटों व नेताश्रों से मुँह मोड लें. श्रपने पैरों पर खड़े हों, तो श्राज ही हमारा कल्याण हो सकता है।

एम विलिकी प्रतिष्ठा करने के लिए नहीं पैदा हुए, हम सबके लाथ समान भाव से रहने के लिए जनमें हैं। न हम किसीके पैर पूजेंगे न हम अपने पैर पुजवावेंगे, न हमें ईश्वर की ज़क्करत है, न पैगम्बर और अवतार की, न गुरु वननेवाले लुदेरों की।

न्यायानुमोदित, धरमानुमोदित या उचित वही है जो बुद्धि-प्राह्य हो, विद्याना नुमोदित हो, मनुष्य-स्वातन्त्र्य का संरत्तकः हो। इसके विरुद्ध सारे अधिकार, सारी व्यवस्थाएं मिथ्या हैं, त्याज्य हैं, त्रत्याचाराश्रित स्रोर घातक हैं। किसीने ठीक ही कहा है कि 'हमारा श्रवतार श्रीर पैगम्बर विज्ञान है, हमारा धर्मा विवेक है, हमारा ख़ुदा संसार के मनुष्यों का समूह है। ईश्वर श्रीर उसके श्राक्षित धर्म श्रीर राज्य दोनों ही मनुष्यः के प्रधान शत्रु हैं। जहाँ श्रधिकार के नाम पर काम होता है. वहीं ईश्वर श्रोर शैतान की पैदाइश होती हैं। दोनों ही श्रजीवुल-् खिलकत जीवाँ को घका देकर सुखी होने के लिए हमें इनके पिता 'श्रधिकार' का ही नाश करना श्रेयस्कर है.। श्राज तक. धर्म के नाम पर हमें जुट़ेरों ने जितना लूटा है वह सब हम वापस तेने का प्रयत्न करें श्रीर सबसे प्रधान डाकू 'ईश्वर' के पैरों को महिमएडल पर जमने न दें, यही हमारा इस समय प्रधान कर्त्वय है।

ईश्वर के पूजनेवाले, दास वृत्ति का समर्थन करनेवाले करते हैं कि यदि धार्मिक वृद्धि वालों को देश का या और किसी संस्था आदि का काम सौंपा जाया तो वर्तमान समाज भी बुरा नहीं है। कानून बुरा नहीं होता, वर्तने वाले ही बुरे होते हैं। ईश्वर बुरा नहीं है, उसकी आधा को न माननेवाले ही बुरे हैं। राजा अञ्झाभी होता है, बुरा भी। बुरा राजा बुरा है। बुराई बुरी है, न कि राजा का पद ही बुरा है।

यह हमारे भोले भाइयां की नादानी है। भाँग बुरी नहीं है, हाँ, भाँग पीकर होश खो देनेवाले बुरे हैं। बाह वा। मैं कहता हूँ कि कानून हो ही क्यों ? न कानून होगा न कोई उसे बुरी तरह से वर्तेगा। न खुदा होगा, न उसके नाम पर हज़ारी लाखों टन कागुज़ रही किया जायगा। मनुष्य यदि सोचकर श्रपने समाज का संगठन करें, तो वह ईएवर, राजा, कानून के विना भी बहुत ग्रानन्द के साथ रह सकते हैं। ख़ास कर ख़ुदा जैसी पहेली तो नितानत ही अनावश्यक और व्यर्थ है। मैंने गत २७ वर्षों से ख़ुदा की परवा नहीं की, इससे मेरा कुछ भी दर्ज नहीं हुन्ना, उत्तरे सब काम वहुत श्रन्हे हुए हैं। मैं पहले से श्रधिक संयमी, मृतुप्य-भक्त श्रीर समाज-सेवा का प्रेमी वन गया हूँ, क्योंकि में श्रपने कामों को ही प्रधानता देता हूँ। हिन्दू सभा के सभापति की तरह मैं यह नहीं कहता कि 'ईश्वर हमें शक्ति से भरदे, हमें हिम्मत दे श्रीर हे सरकार हमारी रत्ना कर, हम तुभे चेतावनी देते हैं कि यदि तू ने हमारी रत्ता न की तो हम रो देंगे। तेरे परदादा ईश्वर का नाम ले-लेकर हाय-हाय मचावेंगे।'

हैं कहना हूँ कि शनुष्य एत से पूर्ण है, वह उसी से काम हो। भांक माँगना, प्रार्थना करना, हमें नीच श्रीर कायर बनाता है, को ज्यादः गायत्री जणी जायगी तो हिन्दू भी चोरी, डकैती, तक्तों श्रीरतों का हुराना श्रादि नीचता सीख़ लेंगे। ईश्वर पूर्णों के लिए शन्धेर का घर है। यस, इस सम्बन्ध में इसं समय में श्रदना यक्तव्य समाप्त करता हूँ।

नोट—यह वक्तर्य माष्ट्रशी के ४ अंकों में सन् १९१५ के नवस्वर से १९२६ की फावरी तक में छवा है !





व इम देखते हैं कि मनुष्य भी पशु हो है, किन्तु वह ग्रन्य पशुश्रों से वहुत ऊँवा है। वह पेसी परिस्थिति को पहुँच गया है कि पशु-जोवन से भिन्न नजर श्राता है, इसीलिए उसे हम पशु नहीं कहते। इसका काग्ण उसका विकाश श्रीर उत्कर्ष है। हम सोचते हैं, तो हमें उसके विकाश के दो कारण प्रतीत होते हैं। पहली उसको, उठानेवाली वात शक्ति श्रीर. ज्ञान है, जिन्हें प्राप्त करके वह धीरे-घीरे प्रकृति के वश से निकल कर, उस पर प्रभुत्व करने की श्रोर श्रग्रसर होता जा रहा है। वह मनुष्य जाति की श्रावश्यक, सुख श्रौर सुविधाजनक चीज़ॉ की प्रकृति से छीन कर, अपने सजातियों में प्रसारित करता. या वाँटता है। वह समक्ष गया है कि उसके पारस्परिक सम्बन्ध, विना प्रकृति से प्राप्त पदार्थ के जैसा चाहिए, वैसा **ब्राराम नहीं दे सकते। मनुष्य स्वयम् प्रकृति-जन्य सम्पत्ति है,** क्योंकि वह बुद्धि श्रौर शरीर से काम करता है श्रौर श्रपनी. जाति को नए न होने देने के उद्देश से उसकी श्रभिवृद्धि करता 8Å )

रहता है, इसमें उसे दूसरे के सहयोग की श्रावश्यकता होती है।

फिर यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति मानवी उन्नति ग्रौर उरकर्ष का किंवा संस्कृति का सहज शतु भी होता है। पक श्रोर तो वह दूसरे प्राणियों की तरह श्रकेला नहीं रह सकता ; यकान्तवास उसे श्रमहा दग्ड प्रतीत होने लगता है, व्सरी श्रोर सामाजिकता के लिए जिस त्याग की नितानत शावश्यकता है; जिसके विना सामाजिक जीवन श्रसम्भव है, उससे जी चुराता है। इसलिए व्यक्तियों की श्रयौक्तिक श्रौर व्यावातक वातों से मनुष्य को संस्कृति की रत्ना करनी श्रवश्यम्भावी हो जातो है। सामाजिकता श्रीर वैयक्तिक स्वार्थ-तत्परता दोनां युगपत् चल नहीं सकर्ती; एक दूसरे की वाधक हैं। इसलिए समाज में नियमों, प्रतिवन्धों श्रौर श्रद्धला की ज़रूरत होती है। विना इसके न पदार्थ ठीक-ठीक उत्पक्ष हो सकते हैं, न समाज में वितरण हो सकते हैं। जो कला श्रौर विज्ञान हमें समुत्रत श्रीर सुखी वनाता है, वही हमारा सर्वनाश भी कर सकता है।

इस विचार से जब समाज में निरङ्कुशता श्रौर नृशंसता की रोक-धाम करने के लिए थोड़े से वैद्यानिक, कलाकुशल श्रीर धलशाली लोग शासन-दएड धारण करते हैं तो वह बहुसंस्यक प्रजा को धीरे-धीरे पीसने लगते हैं। स्पष्ट है कि यह दीप उन्नति श्रौर उत्कर्प या दोनों के योग श्रौर संस्कृति में,

स्वाभाविक नहीं होते। संस्कृति श्रीर समाज के निर्माण में ही कमी रहती है। हमें देखना है कि वह कमी क्या है। निस्सन्देह मनुष्य ने बहुत श्रञ्छी श्रीर प्रशस्त उन्नति की है, करता जा रहा है श्रोर करता रहेगा। उसने प्रकृति को जीता है श्रीर श्रभी श्रोर श्रच्छी तरह से उस पर विजय प्राप्त करेगा, लेकिन उसने श्रापने समाज के प्रवन्ध में उतनी उन्नति नहीं की कि जिससे लोगों की श्रापत्तियाँ श्रौर शङ्काएँ वढ़ने के बदले कम होती। इम ख्याल कर सकते हैं कि मनुष्यों के सामाजिक या पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे होने सम्भव हैं, जिनसे मनुज़्य की - सहज भावनाओं को कुचलना श्रीर दवाना वन्द करके हम उन निमित्तों को ही मिटा दें, जिनसे संस्कृति के प्रति लोगों में श्रसन्तोप पैदा होता है। इससे भीतरी खींच-तान मिट कर, श्रादमी प्रकृति के पदार्थों की प्राप्ति में लग जायँगे श्रीर उनका शान्तिपूर्वक उपभोग करेंगे। सारांश यह कि मुज्यजाति के भीतर से समाज के विरोध का भाव एकदम मिटा देना ही सर्वोपरि श्रमीप्ट है। श्रव यह एक मनोवैद्यानिक प्रश्न बन जाता है, ग्रतः दृश्य जगत् के नैसर्गिक प्रश्न के साय-साथ मनोवृत्ति का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है। श्रगर हम किसी प्रकार जनता की वड़ो संख्या को कला-कुशल श्रीर वैद्यानिक वना दें श्रौर उसका शासन थोड़े से जात मृहों श्रीर नादानों पर रहे, तो यह संस्कृति के भीतर घुसा हुआ दोष क्रमशः दूर हो सकता है।.

लोग कहते हैं, मनुष्य स्त्रभावं से ही अवलसी श्रीर क्यर होता है, लेकिन प्रत्यक्षवादी इस बातः की मानने के लिए तैयार नहीं हैं। बास्तव में समाज की संस्कृति के दोष से ऐसा दिखाई पड़ता है। वैयक्तिक सम्पत्ति श्रीर सोने-वाँदी सहरा रही पदार्थों की श्रज्ञवस्त्र से श्रधिक प्रतिष्ठा देना श्रगर समाज से ६८ जाय, तो मनुष्यों में से बहुत बड़ी सीमा तक इंन्यों, कर्ता, विषमता श्रीर प्रतिद्वन्द्विता श्रादि मिट सकती हैं। एक नई पीढ़ी युक्ति, तर्क श्रीर विशुद्ध ज्ञान के श्राधार पर प्रमपूर्वक शिवित ग्रीर दीवित की जाय, जिसे संस्कृति के मधुर फलों के सिवा कटुता का श्रमुभव न करना पड़े, तो वह निस्तम्देह समाज श्रीर संस्कृति का कोई दूसरा ही भाव (सन्दाव) रखनेवाली जनता होगी। इसमें त्याग श्रीर सन्नी सामाजिकता का खयम् श्राविभाव होगा। ये लोग सताना श्रीर दयाना छोड़कर हमारे वर्तमान शासकों श्रौर नेताश्रों से कहीं भिन्न एवभाववाले सच्चे मनुष्य वर्नेगे।

पेसा होने को श्रसम्भव समक्त कर वैठे रहना, सहल इन्हारी के सिवा श्रीर कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रश्न के कई पहलू हैं, हम यहाँ पर साम्पत्तिक श्रीर मानसिक पहलुश्री को भ्यान में रख कर, कुछ जानने योग्य वार्ते लिखना चाहते हैं।

जय हमें मालूम हो गया कि प्रत्येक संस्कृति का श्राधार श्रिनवार्य श्रम श्रीर सहज समभ श्रिनुमोदित त्याग है, तब उसका यह अनिवार्य फल भी होगा कि जिन पर इसका बोभ पड़े वे विरोधी हो उठें। अब स्पष्ट होगया कि पदार्थ, उनके प्राप्ति के साधन और उनको समाज में वितरण करने के प्रवन्ध मात्र संस्कृति के आवश्यक लक्षण नहीं हो सकते, क्योंकि संस्कृति के अन्दर हो बगावत और विश्वंसक वासनाएँ प्रस्तुत मिलेंगी। इनको द्वा कर संस्कृति की रता के लिए कुछ बल के प्रयोग की ज़रूरत होगी, साथ ही विरोधियों को उनका सुखद बदला दिखला कर, राज़ी करना पड़ेगा। यह संस्कृतिका मानसिक अकृ या स्थान है।

परन्तु इतना करने पर भी मनुष्य की उद्देश्डता एकदम मिटती नहीं दीखती। इत्या, मार-पीट, व्यभिचार आदि किस देश या समाज की संस्कृति में नहीं हैं ? और इन अनेक विषयों पर विभिन्न संस्कृतियों में मतभेद भी हैं। बहुत सी वात ऐसी मिलती हैं, जो संस्कृति-विरुद्ध और समाज से वर्जित होती हुई भो एकदम मिट नहीं सकीं, कई वात तो मिटी नहीं या बहुत कम मिटी हैं। यद्यपि मनुष्य की बुद्धि और मन ने प्राचीन काल की अपेता अब बहुत उन्नति कर ली है, किर भी उसकी पशु-नुद्धि आज तक उसमें ज्यों की त्यों और जहाँ की तहाँ बनी है। बहुत बातों के लिए मनुष्यों को अब बाहरी दएड-विधान की ज़रूरत नहीं रही, उनके भीतर ऐसे भाव धुस गये हैं कि वे बहुत कुछ स्वतः समभ-नूभ कर रहते हैं। लेकिन पशुता का नितान्त उन्मूलन असम्भव बना हुआ है।

सनुष्य-समाज में इली संस्कृति की रहा के उपायों का नाम सीति रक्ता गया है। इसीसे भले-बुरे का भेद अपनी-अपनी जगभ के अनुसार प्रत्येक संस्कृति-संस्थापकों ने रक्तवा है श्रीर उसमें समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहता है ; क्योंकि मनुष्य का लान और उसका श्रनुभव उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं ! इत नीतिमत्ता की स्थापना श्रोर स्थिरता का सबसे बड़ा कारण ग्रह है कि उसे दूसरे की सहायता की ज़रूरत पड़ा करती है। हलने प्रकृति को एक सीमा तक जीता है, परन्तु उसे पूरा-पूरा यरा में करना मानवी शक्ति के वाहर है। जल, वायु, श्रीन क्रादि कभी-कभी दमारी सारी चतुरता को चुटकी में उड़ा देते हैं। भृकम्प धरती को उलट सकता है; जल की वाढ़ हमें जल-समाधि दे सकती है; श्राग, ज्ञ भर में दूर-दूर तक प्रलय का इस्य दिला सकती है; दीमारी सबको या श्रधिकाँश को एक साथ नप्ट कर सकर्ता है। इन अवस्थाओं में इम पारस्परिक विरोध भृल जाते हैं, हममें दया का भाव उदय होता है। इसी प्रकार हमें श्रनेक कामों में दूसरं के हाथ-पैरों श्रीर बुद्धि की सहायता हानियार्य दोती है, इसीलिए हममें सहयोग-बुद्धि का उदय होता है। सहयोग के भाव को स्थिर रखने के लिए छोर एक-टुनरे के प्रेम की हममें जो स्वामाविक वार्ते हैं, उन सबकी रहा के लिए जो ज़सरी नियम श्रनुभव से स्थिर हो जाते हैं, वही नीति है। यद सब मन से सम्बन्ध रखनेवाले ब्यापार हैं। इन्हीं मान-**क्षिक विचारों में धर्म श्रोर ई**श्वरकी कल्पना उत्पन्न हो उठती है।

् अब इम देखते हैं कि धर्म का उपयोग क्या है। जब संस्कृति, जो दवांव हम पर डालती है श्रीर जिस सहज त्यांग को वह इमसे चाहती है, उसी कारण उसकी विरोध होता है, तो हम इन वाधाश्रों को मनुष्य के जीवन-मार्ग से हटा क्यों न दें, मान लें कि ये वाघाएँ हटा दी गईं। इस दशा में हम यही देखेंगे कि जो जिसका जी चाहता है, क़रता है। कोई पुरुष प्रतिबन्ध-हीनता से अपनी काम-वासना की परितृष्टि के लिए चाहे जिस स्त्री को पसन्द करके व्यवहार में लावेगा, इसी तरह स्त्री भी करेगी। हर एक अपने प्रतिस्पर्धी को बिना रोक-टोक पीट सकेगा, या जान से मार सकेगा । लट-खसीट, छीना-भपटी जैसी पशुश्रों में देखी जाती है, मनुष्य में भी दीखेगी। यह निरङ्क्ष्य जीवन कितना सुन्दर होगा ? प्रत्येक श्रादमी को स्वेच्छाचार की इच्छा होगी, जैसा एक दूसरे के साथ व्यवहार करेगा, वैसा ही दूसरा भी उसके साथ करेगा। इस तरह के समाज में वही एक श्रादमी सारे सुखों के साधन का स्वामी बन जायगा। जिसमें शक्ति है, जिसके हाथ में सब पर श्रत्या-चारं करने का साधन और वल है। दूसरे देशों का जीतना श्रीर दूसरा क्या श्रर्थं रख सकता है।

लेकिन वात धीरे-धीरे उसको भी खलने लगेगी, जो संस्कृति को मिटाने का पक्षापाती था, फ्योंकि श्रव्यवस्था से हम श्रपनी प्राचीनतम प्रकृत श्रवस्था पर पहुँच जायँगे। इसमें सन्देह नहीं, कि प्रकृति हमारे सहज समभ के श्रवसार किये कामों में प्रकट में कोई वार्धा नहीं देती, परन्तु वह परोक्ष रूप से अवश्य वाधक होती है और हमें बड़ी बेदर्री कें साथ गिटा कर छोड़ती है। इसीलिए हम सङ्घ रूप में सङ्गठित होकर रहते हैं और एक संस्कृति उत्पन्न कर लेते हैं। इसीके सहारे हमारा जीवन सम्भव होता है। संस्कृति का यह प्रधान काम है कि हमारी रहा करे। प्राकृतिक अवस्था में रहने से हमें जो कप्ट होते हैं, उनसे सम्मिलित उत्कर्प और सभ्यता के महत्व का पता चलता है। हमें सनुष्य जाति को सुरिक्त रखने की चिन्ता पैदा होती है और साधन समभते हैं।

जिस तरह छोटा जड़का विवशता और पराधीनता की दशा में पिता-माता से डरता है और उनकी दया पर ही उसका जीवन निर्भर होता है, इसिलप वह पिता-माता की वहुत प्रतिष्ठा भी करता है और उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहता। इसी तरह प्रकृति से विवश होकर पहले के कम उन्नत मनुष्य, उसके प्रत्याचारों से डर कर, उसे पूजने लगे। जल, वायु, श्रीन प्रभृति मनुष्य के उपास्य देव हुए। इन देवताश्रों का काम हुआ प्रकृति के मय को दूर करना। निसर्ग की निर्द्यता के समय सान्त्वना देना, सन्तोप सिखाना और मनुष्य पर जो कष्ट सामाजिक संस्कृति की श्रधीनता से हो जन्य, उनका हराना। इस श्रीमित्राय से मनुष्य ने श्रपने कित्तत देवताश्रों को प्रशृति का स्वामी माना।

जब हमने देखा कि देवताओं से हमारे कए दूर नहीं किए जा सकते, तब भ्यान होने लगा कि भवितन्यता भी कोई चीज़ है, जिसका दर्जा देवताओं से भी ऊँचा है, देवता लोग भी भवितन्यता के अधीन रहते हैं। फिर घीरे-घीरे संस्कृति-सम्बन्धी नियमों को भी देवी विभूति मानने लगते हैं और उनका दर्जा मनुज्य समाज से भी ऊँचा वना देते हैं और नियमों की प्रकृति का भी अधिकारी मान बैठते हैं।

इस तरह मनुष्य की विवशता ऐसे ऐसे मनोरजक काल्पनिक, सुख-शान्ति-परक विचार का ढेर कर देती है और लोग समभने लगते हैं कि श्रव हम इनके द्वारा श्रक्ति श्रीर साग्य के श्रत्याचारों से क्वेंगे श्रीर हमें सामाजिक बुराइयों से भी त्राण मिलेगा।

लोग कहने लगते हैं, जीवन का उद्देश्य बहुत ऊँचा है। इसमें सन्देह नहीं कि उस ऊँचे उद्देश्य की हम कल्पना भी नहीं कर सकते, हाँ यह अवश्य मान लेते हैं कि इससे मानव-जीवन दोपरिहत, सर्वाद्ध-पूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार धोरे-धीरे मनुष्य जीवातमा को शरोर से अलग कर लेता है और उसीको इस महत् और उच्च स्थान का अधिकारी जान लेता है। उसे ख्याल होता रहता है कि इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है, या होना है, वह हमसे कहीं अधिक किसी बुद्धि का किया हुआ काम है। वह सर्वाद्ध पूर्ण निदेश बुद्ध जो मनुष्य की बुद्धि से बहुत उच्च स्थानीय है, जो करती है, सब हमारे हित के लिए

ही कारी है। एक एड़ी सारी संहदय-शक्ति, जो देखने में कडोर है, स्यकी निरीतिका श्रीर नियन्त्री है। वह हमें प्राकृत शक्तियों की क्रूरता की वेदी पर दलि नहीं होने देगी, हमारी रहा फ़रेगी। इस समस्ते लगते हैं कि मृत्यु से हम मिट नहीं जाते, किन्तु इसको नए प्रकार का कोई जीवन प्राप्त होता है श्रीर हम श्रधिक उत्ति के पथ पर श्रश्रसर होते जाते हैं। हमारे सामा-जिद्य होर नैतिक नियस, जिनसे संस्कृति बनती है, वे भी सारे विश्व ८२ शासन करते हैं। सामश्रस्य के साथ सर्वोच न्याया-सं स्थिर रक्षे जाते हैं, परिपुष्टि पाते रहते हैं। इस तरह **हर** शलाई का पुरस्कार सिलता है और हर बुराई के लिए दराड । यदि यह पुरस्तार या दएड इस जीवन में नहीं मिलता तो क्या सरतं के परचात के जीवन में मिलेगा। इस प्रकार मनुष्य-जीवन पे लारे भप, कष्ट श्रीर दुःख श्रवश्य ही मिट जाने वाले हैं। उस श्रहत्य जीवन में उन सारी कमियों की पूर्ति हो जायगी, जो हम यहाँ पूरी नहीं कर सके, वह सारे सुख हमें मिलेंगे, ल्निले इम प्राज बश्चित हैं। यह देवी जीवों के गुण हैं, देवी वियमों के महत्व हैं, इसी में सारे देवताओं को घनीभूत करके रण दिया गया है। जिन जातियाँ ने इस श्रनोखी बात को सीच पार गढ़ा, यह अपनी इस उन्नति के लिए बड़ा अभिमान रानी हैं।

यह धार्मिक माव निस्तन्देह यहुत काल में समुक्षत होते-होते यहाँ तक पहुँचे श्रीर हन्हें जुदा-जुदा देशों की विभिन्न संस्कृतियों ने विभिन्न रूपों में माना है। श्राज यही धर्म सभ्यता का सर्वोत्तम रत्न समका जाता है। इससे हमारे सारे ऐहिक श्रीर पारमार्थिक श्रमावों श्रीर श्रमियोगों की पूर्ति होती है। जो श्रादमी इसका विरोध करता है, उसका जीवन समाज को श्रसहा हो जाता है, कितने ही श्रम्धविश्वासी मूर्जों ने इस मतभेद के कारण श्रपने विरोधी को जान से मार डाला।

यहाँ यह शङ्को की जाती है कि तुम्हारी यह बात हमारी समक्त में नहीं ख्राती कि 'संस्कृति धार्मिक भावों को पैदा करके उन्हें ख्रपने परिकर में फैलातो है।' यह बात उतनी विस्पष्ट और प्राकृतिक नहीं प्रतीत होतो, जितना यह कहना कि संस्कृति ने ही क्षम के फल को सब लोगों तक पहुँचाने के नियम बनाए ख्रीर स्त्री-बच्चों पर ख्रिधकार स्थापित किया।

पेसी शङ्का अनुचित नहीं कही जा सकती। प्रकट में तो यही जान पड़ता है कि धार्मिक भाव भी उसी आवश्यकता से प्राहुर्भूत हुआ, जैसे संस्कृति के और दूसरे फल हमें मिले। इसका भी अभिपाय प्रकृति के घातक प्रभुत्व से संस्कृति की रज्ञा करना है। दूसरा अभीए यह है कि इसके (धर्म के) हारा संस्कृति की अटियों की मिटाया जाय। संस्कृति ही अपने अनुकृत एक धर्म की कल्पना कराने का कारण होती हैं। धर्म में भी मनुष्य पीड़ी-दर-पोड़ो उसी तरह दीचित होता रहता है, जैसे गिणुत-विद्या में। अन्तर यही होता है कि गिणुत

श्रादि जरुचे शीर प्रत्यदा विद्यान हैं श्रीर धर्म की परोत्त कल्पना ही ईश्वर के नाम पर इंश्वरीय छान कह कर सामने देखी जाती है। ईरवरीय-कत्पनाजनित-धर्म श्रपनी ऐतिहासिक न्युत्पत्ति श्रीर क्रमशः विकाश उत्कर्ष का कोई पता नहीं देता, जिस पर तर्क श्रीर टूसरे विज्ञान को विश्वास हो सके। इसका भी कोई कारण नहीं मिलता कि जुदा-जुदा युगों श्रौर विभिन्न संस्कृतियों में यह श्रलग-श्रलग क्यों हैं, एक सा धर्म सर्वत्र फ्यों नहीं है। श्रनुधादन से श्रनुमान होता है कि मनुष्य जाति ने श्रपनी चाल्यकालीन श्रहानावस्था में जो कुछ शास्त दृश्य देगी, उन्हें यही समका कि यह मेरे सदृश किसी मनुष्य के ही कृत्य हैं। यही उस व्यक्ति के मान लेने का कारण हुआ-लेकिन यह फारण स्वयम् सिद्ध नहीं है; फिर भी मनुष्य ने इसमें सन्तोप प्राप्त किया। इसीजिए इमारे यहाँ के स्रानेक सरल हृदय विद्वान् भी फ्रान्सीसी विद्वान् वाल्टेयर की तरह कटते हैं कि धर्म और ईश्वर से समाज को बड़ा लाभ हुआ श्रीर होता है; इसे श्रज्जूग्ण बना रहने देना चाहिए।

मच तो यह है कि जब मनुष्य प्रकृति के वल (Force) को विभिन्न रूप में देन फर उनकी पृथक्-पृथक् व्यक्ति समभ लेता है, तो यह उसकी वाल्यावस्था की सी नादानी ही है। जिस तरह घालक एक जिलीने को लेकर फिर उसे नहीं छोड़ता- जो लुड़ाना है उससे नाराज़ होता है, उसी तरह धर्म श्रार देशर के सम्बन्ध में विचारदीन लोगों का हाल है। हमें

कोई भी विश्वास के लायक ऐसी वात नहीं. मिलती, जिसके आधार पर इन निराधार कल्पनाओं पर विश्वास कर लें और उन्हें विद्यान का स्थान दें। वालकों को नाना प्रकार के नामों से भय दिखलाया जाता है, वावाजी और हीवा हमारे प्रान्त के लोगों में बहुत प्रविलत हैं। वच्चा इन्हें सच्वी व्यक्तियाँ समभ कर डर जाता है, किन्तु बड़े होने पर वह समभता है कि यह कल्पना-मात्र थी, वास्तव में कुछ न था। इसी प्रकार मजुष्य जाति को श्रवस्था और ज्ञान ज्यां-ज्यों परिषक होते जाते हैं, त्यां-त्यां वह देवी शक्ति को कल्पना को श्रव्छी तरह धीरे-धीरे समभता जाता है।

प्रसट है कि धर्म कुछ लिद्धान्त-समुख्य का नाम है, कुछ ऐसी घटनाओं और आन्तरिक या वाहा (भीतरी या बाहरी) वास्तविकता का कथन मात्र है, जिनसे हमें ऐसी-ऐसी बातें मिलती हैं, जो कभी हमारे अनुभव में नहीं आई । फिर वह वातें इसिल कही जाती हैं कि हम उन पर विश्वास करें। वातें भी ऐसी होती हैं जिनको हम हितकारी और जाभदायिनी समक्षाने लग जाते हैं; इसिल विना तर्क और खोज के उन्हें मान लेते हैं। इन तर्क, युक्ति और प्रमाणहीन वातों को जो वहुत सी जान लेता है, विद्या और बुद्धि का भारडागार माना जाता है, और जो नहीं जानता वह मुर्क है। दूध-दही के समुद्र, अमृत और मद्य की नहरं, स्वर्ग के विविध भोग, हमारे भौगोलिक ज्ञान पर पानी फेरने को तैयार रहते हैं। फिर भी

एसारे गूर्श साई ही नंदीं, बड़े-पड़े पढ़े-लिखे, कभी-कभी स्वार्थ पता और सभी अविचार से उन्हीं वातों की परिपृष्टि करते रहते हैं, जिनके त्यागने में ही सनुष्यं जाति का कल्याण है। यहा यह जाता है कि हम जो कुछ धर्म और ईश्वर की वावत कह रहे हैं, संसार से विद्वानों के बहुकालन्यापी अनुभव और विचार या फल है। ठीक है, लेकिन क्या इनका कोई युक्तियुक्त, नर्जायुक्त वर्तमान यनुभव-अनुमोदित प्रमाण भी है !-इसका उत्तर हमें नहीं मिलता।

जय इस पृद्धते हैं कि श्रापका धर्म-सम्बन्धी झान किस श्राधार पर है, तो उत्तर मिलता है कि 'पहले तो वह विश्वास परने के योग्य है, क्योंकि इसारे वाप-दादे श्रादिकाल से हो उसे मानते श्रीर उस पर विश्वास करते श्राप हैं। दूसरे, हमारे पान पुस्तकी प्रमाण है, जो बहुत प्राचीन समय से हमारे पान चले श्राते हैं। तीसरे यह कि धर्म श्रीर ईश्वर के मामले में शहा परना मना है, बहुन बुरा है। श्रव पाठक स्वयम् देल लें कि पहली श्रीर तीसरो वातें इतनी वादियात हैं कि कोई भी स्वान प्राणी इनको पुनकर हँसे बिना नहीं रह सकता। दूसरी दान पुस्तकों या प्राव्ह प्रमाण वाली रहती है। इसका भी कोई प्रमाण मान्य नहीं हो सकता, जब तक यह न सिद्ध कर दिया जाय कि यह पुस्तकों पेतिहासिक प्रमाण कहलाने श्रीर मानने के योग्य हैं। पेतिहासिक प्रमाण किसे कहते हैं, इसको जानने के लिए विद्यानों ने बड़ी-बड़ी पुस्तकों महत्वपूर्ण विचार के साथ- जिली हैं, श्रीर हमारी प्रमा उन कसौटियों को, जो इन पुस्तकों में हैं, श्रहण भी करती है। हमें संसार की धार्मिक पुस्तकों में से कोई भी ऐसी नहीं मिली, जिसे हम ऐतिहासिक प्रामाणि-कता की सनद दे सकें।

फिर यह कहना कि धर्म में शङ्का करना ही उचित नहीं है. धर्म की सारी पोल खोल देता है। हमें तो सत्य के प्रहण श्रीर श्रसत्य के परित्याग को हमेशा तैयार रहना चाहिए। यही मानवी ज्ञान का महत्व है। यह कहना मुर्खता है कि श्रमुक पुस्तक में स्वयम् ईश्वर या श्रह्लाह ने श्रमुक वात लिखी है, इसे मान लो। कोई-कोई स्रादमी कह देते हैं कि 'ईश्वर श्रीर धर्म का मर्म हमारे मन श्रीर मेधा के वाहर की वात है। इसके उत्तर में सिवा इसके श्रीर क्या कह सकते हैं कि 'तव तो यह विषय पागल्खाने के लोग ही ठीक समक्ष सकते हैं। धर्मान्ध लोगों ने धर्म के नाम पर बड़े-बड़े ऋत्याचार उन सत्यवादियों पर किए हैं, जिन्होंने उनकी तर्कहीन कल्पनाश्रों को सत्य मानने से इन्कार किया। हमारे पास यूरोप, श्ररव श्रीर भारत के धार्मिक लोगों के श्रत्याचार के पेतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत हैं श्रौर हम श्राज भी धर्म के नाम पर की जाने वाली नर-इत्यास्रों के स्रांखों देखनेवाले साद्ति हैं। स्रतः हमारा विश्वास ईश्वर श्रौर धर्म की निर्मु लता पर श्रौर भी हुड़ हो जाता है। पुनः हम धर्म के निर्दिष्ट मतों, मुल स्त्रों या सिद्धान्तों पर केवल विवेक-दृष्टि से विचार करते हैं तो भी करना पडता है कि धर्म के सारे के सारे सिद्धान्त अम-मूलक हैं। उनका प्रमाण नहीं मिलता, इसलिए उनके सत्य मान लेने के लिए कोई दाध्य नहीं हो सकता, न किसीको विश्वास करने के लिए द्वाया जा सकता है। कोई-कोई तो इतने श्रममयनीय श्रीर संसार की उन सच्चाइयाँ से दूर हैं, जिन्हें मनुष्य ने वड़े श्रम से हुँदा श्रीर समका है। उनमें से बहुता की सद्यारं के मृत्य का निर्णय हो ही नहीं सकता, न हम उन्हें सत्य सिद्ध कर सकते हैं। उनका खएडन करके असरय प्रति-पादित कर सकते हैं। संसार की पहेली को हम धीरे-धीरे गोज फरते-करने जानते जाते हैं, लेकिन बहुत वार्ते ऐसी हैं जिनका एपए उत्तर देना विद्यान के बल के बाहर है। लेकिन र्चतानिक किया ही एकमात्र साधन हमारे पास है, जिससे हम चारा नत्य का ग्रान पा सकते हैं। यह श्राशा करना भी भ्रम है कि हमें स्वातुभृति से, योग की समाधि से कुछ मालूम हो सकता है। इनसे सिवा विशिष्ट श्रवस्था के श्रीर कुछ नहीं जान पहता, दस प्रकार के विशिष्ट भावों को व्यक्त करके दनाना भी इस्लाभ्य दोता है। धार्मिक सिद्धान्तों से एसारे मानिषक जीवन की भी कोई विश्वस्त वात नहीं मिलनी । किसी यात का कोई जवाय जो उपनिपर्दे देती हैं, यह छोर निमिराच्छादित दाव्दों में । इनके स्पण्डी-करण में लोग श्रपनी डाँग श्रड़ा देते हैं, यह सर्वधा श्रमुचित है।

हमारे प्रतिपद्मी यह शङ्का कर सकते हैं कि जब तुम धार्मिक अनेक सिद्धान्तों का यथावत् खएडन नहीं कर सकते और संसार का विद्यान-वल अभी तक कच्चा ही है, तो फिर हम उन पर विश्वास फ्यों न कर लें। क्योंकि जनश्रुति, परम्परागत इन्तकथा और बहुत बड़ा लोकमत, और बहुकालच्यापी मनुष्य जाति के ज्ञान का भाएडार, और धर्मजनित सन्तोष हमारे पद्म में हैं। इसका उत्तर हम पहले यही देते हैं कि हमारी किसी पर ज़बरद्स्ती नहीं है। हमें अधिकार है कि हम ऐसी वातों का आँख बन्द करके विश्वास कर लें अथवा बिल्कुल विश्वास न करें। हम तो इतना ही कहेंगे कि आप अपने को धोके में डाल कर, यह न समक्ष बैठें कि आपका यह तर्क आपको विशुद्ध निर्णय की ओर ले जा रहा है। अज्ञान, अज्ञान ही है, उसे किसी वात के मान लेने या विश्वास करने का अधिकार नहीं होता, यही कह सकते हैं कि यह वात अभी तक अनिश्वत है।

हमने देखा है कि लोग धर्म को नहीं मानते, पर श्रपने श्रापको श्रोर दूसरों को धोका देते रहते हैं कि हम धर्म के बड़े पक्के मानने वाले हैं। धर्म के मामले में हम मुक्त-कएठ से कह सकते हैं कि लोग बड़े ही कपटी, कुटिल श्रोर चतुराई से श्रनाचार करने वाले होते हैं। बड़े-बड़े पिएडत या दर्शनइ शब्दों श्रोर वाक्यों का मनमाना श्रथं खींच-तान कर लगा लेते हैं। यहाँ तक कि मूल का नाम-निशान तक बाक़ी नहीं रहता। ंर्वर का ऐसा श्रनिश्चित किएत श्रर्थ कर देते हैं, जो बुद्धि ये पाएर होता है और ईश्वर-भक्त वन वैठते हैं। बहुतों की हमने ब्रव्यगत राति शक्ति को ही ईश्वर कहते पाया हैं। यद्यपि इत नई कल्पनाध्रों से उस सर्व-शक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी र्दश्यर का पता ही नहीं रहता, जिसको धर्मी' ने कल्पना की है। जो मनुष्य इस बहुत बड़े श्रातेय विश्व में श्रवने को तुन्छ श्रीर नर्चथा निर्वल समभता है उसे लोग बड़ा धार्मिक मानते हैं, किन्तु यह तो धर्म के भाव के विधायक लदाण नहीं हैं। धर्म तो यह है जो इसके विरुद्ध होकर इस भाव को हटाने का रनाज हुँहै। क्योंकि सर्वशिक्तिमान् ईरवर तो सव जानता है। श्रवता उपासक धर्म के यल से इस बाजान की हटा सकता है, प्रागर यह ऐसा नहीं करता तो वह स्वयम् ईश्वर का इन्कारी हैं। यह तो नास्तिक भी कहता है कि मैंने प्रकृति के सारे भेद नहीं जान पाप और इस महान् विश्व में एक अकिञ्चन प्राणी हैं। यात वास्तव में यह है कि ईरवर और धर्म की कल्पना मार्चान काल के कम छान वाले लोगों ने भय और श्रद्धान के पारम की है। अपने लिए एक मिथ्या श्रयतम्ब स्थापित किया ैं शोर गार में स्वार्थी लोगों ने श्रपना मतलव गाँउने के लिए उमं एव दृढ़ किया श्रीर रंगा।

इन वातों को सुन कर हमारे बहुत से भोले भाई कह उठते हैं कि श्रागर धर्म श्रीर ईश्वर सम है, तो श्रापकी श्रीर भी सामाजिक, नैनिक वातें भी समात्मक हैं। लेकिन यह श्रागर यह कोघ में कहते हैं तो हमारे पास कोई उत्तर नहीं है। श्रगर यह यह बात सच्चे मन से कहते हैं तो हमारा, उत्तर सीधा श्रीर सरल है।

जिन वातों की सचाई को हम तर्क की कसौटियों द्वारा जाँच कर सकते हैं, अपने प्रत्यक्त अनुभव से कार्य के फल को देख कर जान सकते हैं, उनमें और निराधार मन-कल्पित धर्म में वड़ा अन्तर है। हमें मनुष्यों की रक्ता के लिए या अपने ही देश की जनता की रक्ता के लिए संस्कृति की रक्ता की जकरत है। समयानुसार इस संस्कृति में हेर-फर भी होता रहता है, यहां कोई वात आँख वन्द करके मान लेने की नहीं होती, न तर्क-वितर्क या विरोध-समर्थन की रोक-धाम है। इसलिए हम संस्कृति को धर्म की तरह भूममूलक नहीं मान सकते।

श्रगर यह कहा जाय कि धर्म के सिद्धान्तों श्रीर परमात्मा के न्याय श्रीर सर्वशक्तिमत्ता में संसार के श्रधिकांश लोगों का श्रात्मविश्वास है, इसके हट जाने से लोग श्रसामाजिकता के भावों से भर जायँगे, निडर श्रीर निस्सद्भोच होकर मनमानी करने लग पड़ेंगे, तो सारा समाज खएड-चएड हो जायगा। हजारों वर्ष की बनी संस्था के टूट जाने से श्रनेक ख्रावियाँ फेलेंगी श्रीर सारी सभ्यता नष्ट हो जायगी; इसलिए श्रगर यह मालूम भी हो जाय कि धर्म में सच्चाई नहीं है, तो भी हमें यह बात दिल में ही रखनी चाहिए। धर्म श्रीर ईश्वर को इटा कर तुम जनता की शान्ति श्रोर सन्तोप के लिए उन्हें दूसरी कौन की चीज़ दे सकते हा !

हमारा तो यद ख्याल है कि मिथ्या ईप्टूबर श्रीर धर्म की संस्थापना से नाम के बदने हानि ही होती है। हम से पहले भी बहुन लोगों ने इस विषय पर लिखा है, किन्तु उससे कहीं फी भी संस्कृति का मटियामेट नहीं हुआ। इस युग में श्रज्ञान का पर्दा फरने लगा है, लोग धर्म और ईश्वर का निर्मृत और भूमात्मक दीना समभने लगे हैं। जैसा दम ऊपर कह चुके हैं, परले समय में, न श्रव, कोई इन पर पूरा विश्वास रखता है। लागों या एज़ारों चर्ष से कल्पित धर्म श्रीर ईश्वर के बनावटी भय ने संसार पर शासन किया, उससे जो कुछ लाभ या हानि होनी थी, होली। श्रव तो हम देखते हैं कि मनुष्यों की वर्ड़ी मंग्या इस संस्कृति सं, जो धर्म के श्राधार पर है, दुखी ही रही है और इस श्रस्ता भार को श्रपने सर पर से उतार पर पाँक हेना चाहती है। ये लोग श्रद श्रपनी सहज समक पे ऊपर बन्धन राप्तना नापलन्द करते हैं श्रीर इस संस्कृति से मस्दन्य-विरुद्धेद फरना चाहते हैं। इमारे विरोधी कह सकते हैं कि विज्ञान-विज्ञान की पुकार से और विज्ञान की क्रमशः शप्रमारता में ममाज की यह दशा हुई जो बहुत शोकजनक है। लेकिन इम की देगते हैं कि जब धर्म का पूरा श्रातह था, जब धर्म-यातक ही शासन करते थे, तव लोग अधिक दुखी थे, धात-पत धर्म का फन्दा दीना पड़ने से नोग खुले में सौंस

लेने लगे हैं श्रीर श्रपने को सीभाग्यशाली सममते हैं। पुरोहित लोग भा संसार की प्रगति देख कर धर्म के ढकोसले की कड़ाई को ढोला करने पर मजनूर हो गए हैं। इसके प्रमाण हिन्दू, मुसलमान, ईसाई श्रादि सभी धर्मों में पाए जाते हैं। हमने यहाँ उदाहरणों से श्रपने छोटे से लेख को बढ़ाना उचित नहीं समभा। प्रायश्चित्त, कफ़्फ़ारा और पीनेन्स का श्रर्थ ही है बन्धन का ढीला करना या मूर्लों से माल पठना। कुछ भी हो, यर धर्म का बन्धन ढीला ज़कर हुआ और होता जा रहा है।

ईसाइयों में पक सम्प्रदाय है, जो सम्मवतः कस में श्रधिक पाया जाता है। यह समभता है कि पाप करना बहुत ज़करी है, क्योंकि बिना इसके ईश्वर की पूरी दया, श्राशीर्वाद श्रीर समा का उपभोग श्रसम्भव है। मुसलमानों का ख़ुदा भी बड़ा मुश्राफ़ करनेवाला है। हिन्दू तो मिनट-मिनट पर श्रपने पूर्वकृत श्रपराधों को धोकर बहा सकते हैं। इसलिए ईश्वर श्रीर धर्म से बुराइयों की रोक-थाम नहीं हुई, न हो सकती है। ऐसे श्रादमी बहुत हैं, जो बुराई करने से ईश्वर को तभी तक डरते हैं जबतक उन्हें कोई देखता हो। श्रागर कोई श्रादमी न देखता हो, तो ईश्वर को ताक पर रख कर सब कुछ कर सकते हैं। इसलिए समाज ईश्वर से बहुत बड़ी चीज़ है। हम तो रात-दिन पादड़ी साहब, मौलवी साहब श्रीर पिएडत महोदय को यही पुकारते सुनते हैं कि श्रव धर्म का हाल हो रहा है, लोगों में से ईश्वर का डर कम होता जाता है, धर्म-कारों के लिए रुपया नहीं मिलता, चढ़ावा कम ग्राता है, कथा श्रोर मालूद में पहले की सी भीड़ें नहीं होतीं।

ग्रातन्य यह है कि ज्यां-ज्यां विद्या-बुद्धि बढ़ती जाती है, विद्या सुलभ होने के कारण श्रधिक श्रादमियों में फैलती जाती है, त्यां-त्यां ईश्वर का डेरा दूर हटता जाता है। श्रव वेचारा रोग-शय्या पर पड़ा श्रपने जीवन की घडियाँ गिन रहा है। लेकिन यह तो हँसी मात्र है। न ईश्वर कभी था, न है, न हो सकता है।

हमारा द्रढ़ विश्वास है कि जब लोग यह समक लेंगे कि समाज के नियमों को तोड़ने से उनकी भी हानि है, अगर हम किसीको मार डालेंगे तो उसके परिवार के लोग हमें मार डालेंगे, तो समाज में मार-काट सर्वंत्र फैल कर मनुष्य का सामाजिक जीवन दूभर कर देगी। यह ज्ञान मनुष्य को दुर्पा से रोकता है और उपां-उपां ज्ञान बढ़ेगा त्यों त्यां श्रधिक रोकेगा। ईश्वरीय भय का पता उपासरों, ख़ानकाहों, नतेरीज़, मन्दिर, मस्जिद और गिर्जां में छुछ दिन रह कर देखो तो ठीक-ठीक मिल जायगा। अगर कहोगे कि किसीकी हत्या मत करो, इससे ईश्वर अप्रसन्न होगा और इस लोक और परलोक में तुम्हें दग्रंड मिलेगा, तो तुम्हारी कोई न सुनेगा और न अब सुनता है।

'हमको मालूम है, जन्नत की हक़ीक़त, लेकिन—दिल के खुश रखने को 'ग़ालिब' यह ख़्याल अच्छा है।'

<sup>—</sup>महाकवि गृालिब

इसिलिये श्रिशिक्षित जन-समूह को चाहे शानवान श्रीर समभदार बना कर शुराइयों से रोकें, चाहे लह के वल उन्हें पशुश्रों की तरह हाँकते रहें, ईश्वर श्रीर धर्म से कुछ होना-जाना नहीं है।

हम मानते हैं कि जनता को शिक्तित बनाने का काम एक तो श्रम-लाभ्य है, दूसरे धन-पात्र, धर्मयाजक श्रीर सरकार इन्हें वास्तविक सद्धान प्राणी बनाना नहीं चाहती, नहीं तो हमारे सामने रूस है, जिसे हम हस कहा करते थे। रूस में १६१७ के पहले शिक्तितों की संख्या भारत से भी कम थी। श्राज शिक्तितों की संख्या वहाँ संसार के सब बड़े देशों से श्रिधक है।

श्रगर श्राज हम न्यायालयों को हटा दें तो मालूम हो जाय कि ईश्वर श्रीर धर्म मनुष्य-समाज की कितनी रक्षा करते हैं। श्राज भी श्रान-त्रुद्धि होने पर लोग श्रपनी वासनाश्रों श्रीर इच्छाश्रों के पेसे दास हो गये हैं कि समाज के नियमों को तोड़े यग़ैर नहीं रहते; तो पिछले समय के कम शान वाले लोग ज़्यादा उद्दाड श्रीर प्रचएड होंगे, इसमें सन्देह नहीं। इन्हें सदा संस्कृति के नियमों को पालन करने के लिए दएड वाष्य करता रहा है, न कि कितात ईश्वर श्रीर निर्मूल धर्म ? वालक होवा से डर जाता है, लेकिन जवान होने पर वह उसकी शक्त को समक्ष जाता है। लड़कियाँ गुड़िया खेल सकती हैं,

प्रत गुवितयो गुड़ियों का खेल नहीं पसन्द करती। श्रव संसार में ईइवर श्रीर धर्म का तमाशा बहुत दिन नहीं टिक सकता। · , फल सुसासे एक लड़के ने प्रश्न किया 'श्रापकी बात सत्य दोने पर भी यदि कोई व्यक्ति ईश्वर और धर्म को माने तो श्रापकी इसरें क्या हानि ?' मैंने हँस कर कहा कि मेरे वैयक्तिक हानि का प्रश्र उहीं है, न में किसी पर दवाव डालता हूँ कि भेरो वात नान ही ले। यहाँ वात है समाज के हानि-लाम की, ज़र्न्हां लोगों को इससे हानि पहुँचती है जो इस भूम में पड़े हैं। वात को विना समभे मान लेने श्रीर उसके श्रवुकूल चलने में ज्ञान की वृद्धि रुकती है। ईश्वर श्रीर धर्म के नाम से जो समय . नष्ट किया जाता है वह ंसमाज-सेवा में लगाया जा सकता है। सूठे भय से काम करने की श्रपेला सक्वे भय श्रीर भाव से काम करना अधिक अञ्जा और पवित्र है। समाज को सुसङ्ग ठित श्रीर श्रञ्जलित रखने के लिए, हमें समाज के नियमों को क्षान के श्राधार पर मानना उचित है श्रीर कल्पित ईश्वर के भय से डरना वच्चों की तरह 'भोली वाले वावाजी' से डरना है। एक ज्ञान की जांगृतावस्था है और दूसरी स्रज्ञान की निद्रित परिस्थिति है। जो लोगं ईश्वर श्रौर धर्म पर विश्वास न रख कर श्रपने मतलव के लिए रात-दिन भूठ वोलते हैं, ठगी करते हैं, श्रादमी की दृष्टि बचाकर किसी भी समाज-द्रोही कांम को कर लेते हैं, वे दूसरों को ईश्वर और धर्म का भय दिखाते फिरते हैं, यह क्या प्रत्यव जनता की घोखा देना नहीं है ? यह कहना गृलत है कि लोगों के जी से ईश्वर का अय निकाल देना, समाज को नष्ट-भूष्ट कर डालेगा । ऐसा ही फ़ान्स के विद्वान वाल्टेयर ने भी कहा था कि 'अगर ईश्वर न हो तो हम एक ईश्वर की कल्पनो करके रक्केंगे । क्योंकि साधारण जन-समूहों को ईश्वर की ज़रूरत है । लेकिन इसका ठीक उत्तर एक कली विद्वान 'मिकाईल वेकुनिन' ने यह दिया कि 'अगर ईश्वर हो भी तो हम उसे अर्द्धचन्द्र देकर निकाल बाहर करेंगे, क्योंकि वह बुराइयों की जड़ है।' इस विवाद को हम अच्छी तरह समस लें तो कूटनीति के आसरे हमें ईश्वर को बनाए रखने की हानि और सचाई के निमित्त उसके हटा देने के लाभ विस्पष्ट हो जाएँगे, इसमें सन्देह नहीं। कल्पित ईश्वर ने चाहे सहस्तें वर्ष पहले जङ्गली लोगों को कितना भी लाभ पहुँचाया हो, परन्तु आज तो हमें उससे हानि ही हानि नजर आती है।

हमारा विपन्नी कहता है कि 'श्राप तो ऐसी बदतो-व्याघात-पूर्ण वातें कहते हैं, जिनमें परस्पर सामञ्जस्य नहीं दीखता। एक श्रोर तो श्राप कहते हैं कि मनुष्य श्रपनी सहज समभा श्रीर वासनाश्रों से प्रेरित श्रीर शासित होता है, उन्हीं के श्रनुसार चलता है, बुद्धि श्रीर ज्ञान का श्रनुमान करना कम पसन्द करता है, दूसरी श्रोर यह भी कहते जाते हैं कि बुद्धि श्रीर ज्ञान के श्राधार पर संस्कृति की रह्मा करते रहो, उसका साथ देते रहो। श्रापको यह भी याद रखना चाहिए कि मानस की द्वाप्ति तें धर्म को हटा दिया गया था, पर यह बात चल न सकी। श्रव कल ने धर्म का पूरा विद्वकार किया है, देखें यह विद्वकार कितने दिन चलता है। सच तो यह है कि मनुष्यं धर्म विना जी नहीं सकता। श्राप कहते हैं कि धर्म एक रोग है जो मनुष्य की नाड़ियों की वेकार कर डालता है, श्रोर वह प्रमुख्य के भीतर घुल बैठा है, इस रोग के हटाने में ही भलाई है। लेकिन श्रापने यह नहीं सोचा कि इस रोग को दूर कर देने से श्रोर कीन-कीन से घातक रोग मनुष्य में घुस धैरेंगे।

कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें धर्म के साथ ऐसा प्रगाढ़ प्रेम है, जैमे नशेवाज़ को नशे के साथ। यह लोग धर्म को नहीं छोड़ सकते। इन्हें चाहे जितना समकावें यह न समकेंगे, लेकिन अधिकांश लोग ऐसे हैं जो धर्म के पीछे इतने दीवाने नहीं हैं। यह लोग सामाजिक नियमों को अर्थात् संस्कृति के नियमों को इसीलिए नहीं तोड़ते कि धर्म उन्हें धर्मकी देता रहता है, रिश्वत का लालच दिखाता रहता है और बहलाता रहता है। वह लोग धर्म की उसी समय तक परचा करते हैं, जबतक वह समकते हैं कि सचमुच कोई वाधा देने वाली वस्तु धर्म है। जहाँ धर्म की सत्यता को स्वीकार करने से उनका दिल हटा कि वह वागी हो जाते हैं। यह फिर धर्म की परवा नहीं करते, न इन पर किसी तर्क-वितर्क का प्रभाव पड़ता है। इनके इत्यों से धर्म का भय उठ जाता है,

क्योंकि यह देखते हैं कि दूसरे लोग भी धर्म की नहीं डरते। इस तरह धीरे-धीरे धर्म का वनावटी डर उठता जाता है, चाहे इस धर्म श्रीर ईश्वर के विरुद्ध कुछ लिखें या न लिखें।

ं पुन, निस्तन्देह लोग तकी श्रीर युक्तियों की वहुत कम परवा करते हैं, श्रपनी स्वामाविक समस के नितान्त वशवती दोते हैं, उसीके श्रनुसार जो इच्छा उत्पन्न दोती है, उसीको पूरा करने में दत्तचित्त हो जाते हैं। सेकिन क्या धर्म के पत्तपा-तियों ने कभी अपने दिल से यह पूछा है कि क्या मंतुष्यं कां पेसा होनां श्रच्छा है ? क्या उनकी श्रन्तरात्मा को ऐसी ज़रूरतं भान होती है कि वह घोले में कम से कम जब तक रह सकें, रहें ? सामाजिक जीव 'मनुष्य' के स्वभावों श्रीर विकाश के इतिहास श्रादि विषयों का ज्ञाता पिएडत क्या श्रापको ऐसे मनुष्य के मस्तिष्क को श्रावृत्त करनेवालो हड्डी की दशा बता सफता है, जिसकी शिराश्रों को वाल्यकाल से हो कड़ी पट्टी बाँध कर ख़राबं कर दिया गया हो। जो लोग हाथों में फँसे हुए गहने पहने रहते हैं, क्या उनकी नाड़ी का ठीक पता वैद्य को मिल सकता है ? ज़रा निर्भय, निश्चल, चमकते हुए, स्वस्थ चेहरे वाले वालक की तीव बुद्धि का और नवजवान की कमज़ोर समक का मुक़ावला करो श्रौर समस्तो, तो तुमको मालूम होगा कि इस दुराई के भीतर एक प्रधान कारण धर्म भी है। होश सँभालते ही बच्चे के लिए 'ईश्वर' नाम के दूसरे होवे का उर खड़ा कर दिया जाता है। उसके दृदय में दूसरे जोक, नरक शीर स्वर्ग की चिन्ता पैदा करके उसका दिमाग ज़राब कर दिया जाता है। वड़े होने पर श्रादमी के सिर में वाप-दादों के ढक्क, भाव, विचार श्राप ही घुस-वैठते हैं, लेकिन हमारे भोले भाई उस समय तक ठहरना नहीं चाहते। वाल्यकाल से सन्तान के लर में धर्म, ईश्वर, श्रोर परलोक को हुँसना श्रारम्म कर देते हैं, जब कि न उसमें इन वातों के समभ्ते की बुद्धि होती है और न उसका इनमें जी ही लगता है। वच्चों में लैङ्गिक ( Sexnal ) समुन्नति का रोकना श्रीर यहुत जल्द धर्म का रोगी वना डालना, श्राजकल लोग शिवा का सार समकते हैं। वचों में स्वतन्त्र विचार की शक्ति की वृद्धि को रोकना श्रौर मानिक्षक शक्ति में धर्म-रूपी घुन लगा देना, कोई चतुराई की बात नहीं है। नरक की धमकी से बच्चे के कलेजे को कमज़ोर बना देना हितैपी माता-पिता का काम नहीं है, यह तो एक प्रकार की शत्रुता है, मनुष्य जीवन की उन्नति को रोकना है। जिस धर्म में जितनी अधिक कट्टरता होती है उस धर्म में उतने ही श्रधिक मूर्ख होते हैं। पशिया में ख़ासकर निकट पूर्व के देशों में धार्मिक कट्टरता के कारण विज्ञान-वेत्ताश्रों श्रौर वैज्ञानिक श्राविष्कर्ताश्रों का कहीं पता महीं है। भारत में ही हम देखते हैं कि धर्म की कट्टरता हिन्दुश्रों की श्रपेता मुसलमानों में ज्यादा है, इसलिए मुसलमानों में हिन्दुओं से कहीं श्रधिक मूर्खता पाई जाती है। हिन्दुश्रों में चाहे वैज्ञानिक श्राविक्कार करने वाले मिलें, पर मुसलमानी

में हूँढने से नहीं निकलेंगे। यह प्रत्यक्त प्रमाण इस यात का है कि मनुष्य श्रयने को धार्मिक कहरता से मूर्ल बना डालता है, श्रम्ध-विश्वासी कर लेता है श्रीर किसी भी सची खोज के लायक नहीं रखता। राजनीतिध-जगत् जानता है कि हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बदले मुसलमानों ने इसकी गुजामी को स्थिर रखने में श्रधिक परिश्रम किया है। इसका कारण धार्मिक कहरता या धर्मान्धता का श्राधिक ही है। मिन्त श्रीर दकीं में धर्मान्धता के विनाश के साथ-साथ उनका उत्यान हुश्रा है, भारत में धर्मान्धता के साथ-साथ उनका उत्यान हुश्रा है, भारत में धर्मान्धता के साथ-साथ उनका उत्यान हुश्रा है, भारत में धर्मान्धता के साथ-साथ उनका उत्यान हुश्रा है, भारत में धर्मान्धता के साथ-साथ उनका उत्यान हुश्रा है, भारत में धर्मान्धता के साथ-साथ उनका उत्यान होता जा रहा है। किर भी पैसे बुद्धि-भागडागारों को कमी नहीं है, जो कहते हैं कि हमें करान श्रीर वेद में शान्ति मिनती है।

यदि मनुष्य वाल्यकाल से ही आंखें और कान बन्द करके धार्मिक बेहदिगयों को अपने सर में क्ट-क्टकर भरता रहा, धार्मिक पुस्तकों के प्रत्यन्न बद्दतीव्याधातों को नहीं देख सका; उसका मनुष्यत्व से गिर जाना खाभाविक है। पशु-बुद्धि को समाज के दित के लिए उच्छुद्धल न होने देने का काम धान का है, धान के सर पर जब आरम्भ से ही फुठाराधात होने लगे तो बेचारे गान का प्राण् हमारे घर में कैसे बच सकता है ? हमारे देश में ऐसे पापिष्ट हदयों की कमी नहीं है जो देश के ६० प्रति सो भूत्र मरतों की चिन्ता से एक इत्य भी व्यथित नहीं होते, किन्तु परलोक की चिन्ता में सारा जीवन नष्ट कर डालते हैं।

जिस देश में अन्धे ही पसते ही, उस देश में निश्चय ही काने की गहिमा आँखों से अधिक होगी। यहाँ वेचाराः न्नान फैसे ठहर सकता है ? 'धोबी वस कर क्या करे, दिकश्रम्बर के आम'।

लोग स्त्रियों को 'नाकिसुल-ग्रक्क' कहते हैं, कंहीं-कहीं भने श्रादिमयों ने तो उनके सर बहुत से स्वामाविक दोप मढ़ दिए हैं। एक ज्ञान-राशि हिन्दू तो कहता है 'ढोल गँवार शद्ध पशु नारी'। जैन इज़रत फ़रमाते हैं कि स्त्रियों की मुक्ति ही नहीं दोती और यहूदियों में तो प्रार्थना की जाती है, 'है प्रभो, श्रापने वड़ी रूपा की, हमें स्त्री नहीं वनाया।' क्या यह सब वेहूदिगयाँ हमें धर्म को धिकारने की श्रोर प्रवृत्त नहीं करतीं ? हम स्त्रियों के सम्बन्ध में श्रनेक निवन्ध श्रनेक मासिक पत्रिकाश्रों में लिख चुके हैं श्रीर पक स्वतन्त्र पुस्तक के लिखने का विचार है, जिनमें स्त्रियों पर पुरुषों के दीर्घकाल व्यापी श्रत्याचार को ऐतिहासिक प्रमाण के साथ दिखाया जाय, पर यह सब जीवन और स्वा-स्थ्य के हाथ की वात है। श्रस्तु, हम यहाँ स्त्रियों के पंत्र में जिख कर विषयान्तरित नहीं होना चाहते; पर इतना हम ज़कर कहेंगे कि स्त्रियों की निर्वलता और मुर्खता के ज़िममेदार पुरुष हैं, ख्रियाँ पुरुषों से अधिक मूर्ख हैं , इसीतिए धार्मिक ठगों के हाथों यह श्रधिक ठगी जाती है। मेरे प्राण्यारे धर्मान्धतस्त्रस्त मनुष्य भाइयो ! एक वार धर्म को श्रोर ईश्वर को २५ वर्ष के लिए त्याग कर देखों, अगर आप अच्छे त बने तो फिर इन्हीं ख़याली पुलाव के पकाने में लग जाना। अगर आज आप नहीं छोड़ते तो आपकी आगे आनेवाली आपसे अधिक चतुर सन्तित इन ढकोसलों को निस्सन्देह समाज से बहिष्कृत करेगी। आजकल पुरोहिती-ठगी पहले की तरह नहीं चलती, यह प्रमाण है हमारी भविष्यद्वाणी के सिद्ध होने का।

श्रफ़ोमची की श्रफ़ीम छुड़ाना कठिन है, इसे मैं समभता हूँ, किन्तु वह स्वयं चाहे तो धीरे-धीरे छोड़ सकता है। एकदम श्रगर किसी का दुर्गुण छुड़ाया जाता है तो वह दुराचारी छिप कर श्रपनी दुर्वासना को पूरी करने लगता है, जैसा कि कस मैं देखते हैं। श्रनेक मूर्ख घरों में छिप छिप कर नमाज़ों में श्रपना समय ख़राब किया करते हैं।

ईर्वर श्रीर धर्म के ढकोसले को छोड़ने के वाद हम सची श्रवस्था में श्राजाते हैं, हम निवंतता को समस्त कर उसके दूर करने के लिए श्रपने हाथ-पैरों का हिलाना सीखते हैं। सन्ध्या, पूजा, व्रत श्रीर नमाज़ के ज़ोर से श्रपने दुलों के मिटाने की वेहदा हरकत छोड़ देते हैं। हम समस्ते लगते हैं कि में श्रमुपचार, विवश श्रीर तुच्छ प्राणी हूँ। प्रकृति का ज्ञान श्रथाह है, लेकिन उससे कोई ईश्वर या धर्म मेरी मदद श्रीर रक्षा नहीं कर सकता, इसलिए में स्वयम् श्रपनी रक्षा का उपाय सोचूं, श्रपने हित के लिए काम करूँ।

पिता के जितने श्रीविष्यतां हुए हैं, उन्होंने चाहे देश्वर का रागटन न किया हो, पर यह ज़रूर है कि उन्होंने नमाज़ पढ़ते हुए कोई श्राविष्यार नहीं किया; बिल श्रनेक श्राविष्कार करनेवाले वैद्यानिकों को नमाज़ पढ़नेवालों ने सताया ज़रूर है। जब कोई नवयुदक घर छोड़ कर निकल जाता है श्रीर उसके सामने कोई रारण-स्थल नहीं रहता तब वह श्रमशीन श्रीर काम का श्रादमी जल्दी वनता है। श्रादमी सदा बालक नहीं रह सकता। वह सक्वे छान की प्राप्ति से श्रमशील, स्वतन्त्र जंबान बनता जा रहा है, उसकी इस उसति श्रीर इस उत्कर्ष में बाधा ढालना श्रपने पेरी श्राप फुल्हाड़ी मारना है।

भाग्य एक श्रीर नए वस्तु हैं। इस से श्रादमी निकम्मा श्रीर श्रानसी हो जाता है। वह लगातार श्रद्धश्य शिक का ही श्राश्रय हुँड़ने लगता है। किसी भी घटना का, श्रच्छी हो या घरी, कारण नहीं हुँड़ता। भाग्य पर भरोसा करके वैठ जाता है। श्रागर श्रादमी सावधान हो जायगा तो श्रपने लिय श्रीर समाज के लिए हिंतकारी कामों के करने में दत्तचित्त रहेगा। स्वर्ग श्रीर ईश्वर के भृत को जिन, फ़रिश्ते, यद्ध श्रादि के लिए छोड़ कर श्राप श्रपनी पृथ्वी पर ही श्रपना स्वर्ग बनाने में लग जायंगा। ईश्वर, धर्म श्रीर भाग्य का वशीभूत न रहेगा।

सर्वम् परवशं दुखम् सर्वम् श्रात्मवशं सुखम् यह लेख अक्टूबर १९३२, में भविष्य के जुबली अंक में प्रकाबित इका था।

## 

प्राचित स्था है कि सत्य ही सनातन धर्म है ?

क्या

तो हमें इतना समय लगा होगा जिसका

किये अभी सम्भव नहीं प्रतीत होता। दादा डिनिक्ती ही बात
पर विचार करें तो वानर से नर और वानरी से नारी बनने में
पूँछ धिस कर लूमस्थल सपाट होने में ही कोट्याचुकोटि वर्ष
लग गये होंगे। इस बीच में इन वापुरे प्राणियों को अपनी
आवश्यकता-पूर्ति में, अपनी वासनाओं की संत्रित में, अपनी
भूख-प्यास विदूरित करने की फिक में जिस मस्तिष्क की
ज़क्तरत पड़ी होगी उसकी उन्नति और अभिवृद्धि में न जाने
कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा। कौन कह सकता है कि बानर
थोनि में आने के बाद कितने दिनों में बेचारे ने अपने हाथों
को चलने के काम से छुटो देकर पैरों के बल खड़े-खड़े चलना
सीखा होगा। फिर उसके कितने दिन बाद उसके नन्हें से

विमाग में इतनी जगह हुई होगी कि जिसमें तर्क श्रीर झान दो प्रकाश का समावेश हो, जिससे वह वेचारा सत्यासत्य का निर्णय कर सके। भूल, भय, मूर्जता, श्रजान, श्राजस्य, श्रविद्या सदृश श्रनेक वाधार्य भी थीं जिन्होंने सद्भान होने पर भी प्राणियों को सत्य की लोज में उतने ज़ोर से श्रग्रसर नहीं होने दिया जितनी ज़ोर से कि वह होना चाहता था।

श्रीर श्रागे चलकर देखते हैं तो इतिहास सादी देता है कि श्रनेकानेक ठोकरें खाने पर जब हम प्रकाश के संमीप श्रा गए श्रोर सत्य बटनाश्रों के श्राधार को सीधी, सच्वी श्रोर पक्की सड़क जानकर उस पर चलने लगे तो हममें ही अगणित वंचक उत्पन्न हो उठे । श्राग्राकर श्रवतारां, नवियां, ज्योतिषयां, पंडितों, पुरोहितों, मौलाना, मुल्लायों ने हम धोका दिया, श्रवनृति की श्रीर पैर पकड़कर बसीटा; राजाश्री, सरदारी, हाकिमों, ज़मीदारों और साहुकारों ने अपनी अवधूती चाल चलकर जनता को वश पड़ते ख़ूब मिट्टी में मिलाया, श्राजकल इन श्रवरोधक मशीनों में एक छुल पूर्ण लीडरशाही श्रीर बढ़ गई है। फिर भी हम देखते हैं कि हम वन्दरों के वे दुम बच्चों में सचाई की तलाश घटती नहीं वरन् वढ़ती ही जा रही है! इसीसे मैं समभता हूँ कि सत्य की खोज मनुष्य का स्वामाः विक धर्म है । यह विलक्षण ठीक है कि 'सत्यम् धर्म सनातनः।'

्र प्रिय वाचक वृत्द, पहले पुरोहित कुलोद्धव पंडित राजी ने, जिनमें बुद्धि श्रीर तर्क व दर्शन झान से दवे हुए कितने ही पम० प० वी० प० भी शामिल हैं, मेरे एक लेख पर हज़ारीं ही येतुकी गढगढकर सुनाई हैं। लेकिन एक ने भी प्रत्यक् श्रीर परोक्त प्रमाण न दिया कि जिसमें ईश्वर संसार के भावी समभदारों के जिये कोई वास्तविक पदार्थ सिद्ध हो जाता। इसी प्रकार मुक्ते आशा है कि सेकड़ों दावे वे दलील मेरी 'सत्यकी न्याख्या' पर होंने । इन पाणिडत्याभिमानियांको यह पता नहीं लगता कि संसार, वदल रहा है। ख्राज ऐसा कोई भी समभ-दार नहीं जो डेढ़ हज़ार, ढ़ाई हज़ार, पाँच, सात, दश हज़ार वर्ष की पुरानी पुस्तकों की जंगली कहानियों श्रीर निर्मूल गपोड़ों में संतोप प्राप्त कर सके। कोरे महात्माओं को चाहे क़ुरान में शान्ति मिलती हो चाहे वाइविल में, चाहे पौराणिक गाधायों में लेकिन सांसारिक जीवों को तो विज्ञान की कसौटी पर कसे हुए, तर्ककी श्रांच पर तपाये हुए सत्य में ही शानित की अलक दिखाई देती है। युद्धदेव ने ठीक कहा है कि सत्य ही ·सव कुड़ हैं। सत्य की ही खोज में फिरना मानव जीवन का पंक सर्वोत्कृष्ट भ्येय होता चाहिए। एक श्रॅंश्रेज विद्वान 'एडी-सन' भी, इसी का समर्थन करता है-There is nothing so laudable as to hanker after truth. परिवत शिरो-मिण कन्हेयालाल अलखधारी ने सत्य की महिमा अपने 'सच्चे स्नान' नामक ट्रेक्ट में लिख कर हमें सावधान किया िक 'लत्यंमेव जयित नानृतम्' सत्य है। सत्य की न्यास्या हैं 'महदेव' से लेकर शाजतक हिन्दू जगत में होने वाले विद्वानों ने वहुत कुछ कहा है, लेकिन 'वेबिल' ने अपनी सत्य को न्याख्या में कामाल कर दिया, कलम तोड़ दिया, पाल- विद्वां का मुँह मरोड़ दिया, मानव जगत् में सत्य का वास्त- विद्वां का सुँह मरोड़ दिया, मानव जगत् में सत्य का वास्त-

पया इस भ्रममय श्रीर घोर तमाच्छादित जीवन में श्राली-स्नप्रद सत्य के समान श्रीर महत्व वाली लामदायक बढ़ी वात हो सकती है । में तो यही कहुँगा—नहीं। सत्य जगत् का झान धन हैं, उसे ड्रवने से वचानेवाली नाव है, उसे श्रम्धकार से निकालनेवाला प्रकाश है। सत्य की खोज में व्यस्त होने के बरावर दुसरा कोई व्यापार या व्यवसाय हो नहीं सकता।

सत्य उन्नित की जड़, काएड, शाखा श्रीर पत्ती सब कुछ है। श्रानन्द की जननी श्रीर जनक सचाई ही है। सत्य मन की शुद्ध करता है, विचार को पवित्र करता है, श्राकांक्षाश्रों श्रीर श्रादशों को उच्च बनाता है। सत्य का नाम सभ्यता, मनुष्य-भक्ति श्रीर दयालुता है। सत्य के जानने की महत्वाकांता के बरावर क्या कोई दूसरी श्राकांता हो सकती है? सत्य से हमें शिक्त मिलती है। सत्य डाल श्रीर तलवार दोनों का एक साथ काम देता है। सत्य गुरु, मित्र, पुत्र श्रीर सहायक सब कुछ है। यह तो जीवन इयोति है।

जो एक सत्य बात खोज निकालता है यह ऋषि है, उसका यह खोज-मूत्ताम्त वेद है, उसके जलाये हुए प्रदीप के प्रकाश से संसार को उजाना मिलता है। लेकिन सत्य मिलता कैसे है ! खोज, श्रनुभव श्रीर शुद्ध तर्क से, निष्पत्त श्रन्वेषण, स्व-तन्त्र विचार वाले दिमाग की लगन से। प्रत्येक नर-नारी को स्त्रतन्त्र खोज का पूरा श्रधिकार है। चाहे जितनी खोज करे. वने जितनी करे. उसके इस नैसर्गिक श्रधिकार में जो वाधा डालता है वही पापी है, दुष्ट है, श्रत्याचारी है, मानव संसार का चिर शृष्टु है। संसार के साहित्य पर मुहर लगाकर रखना नीचता है। भू-मएडल का साहित्य-द्वार हर एक के लिए खुला होना चाहिए, छिपाना, बन्द करना, लट्टके यल से रोकना श्रच्छा नहीं। मनुष्य के ही लिये सारे पवित्र विचार हैं। किसी विषय को छिपाकर रखना उस विषय की पवित्रता ्रश्रीर मदिमाकी बढ़ाता नहीं वरन् नष्ट कर डालता है। हममें से प्रत्येक ग्रपने ग्रुद्ध सच्चे भावों को कह सके, ग्रपने तर्क से काम ले सके, यहा ठीक मनुष्योचित्त वात श्रीर व्यापार है।

जो ग्रन्वेपकको, किसी भी सत्य के हुँद्रनेवाले को, गुप्त ग्रान के प्रकाशक को इस लोक या परलोक के दएड का भय देता है, वह मनुष्य-जाति का शत्रु है। वह दगावाज़ है जो परलोक या श्राक्तवत में श्रानन्द-भोग का प्रलोभन देकर सत्य पर पर्दा ढालता है, श्रन्वेपक का मुँह वन्द करता है। क्या उक्तोच द्वारा सत्य का प्रकाश न होने देना पाप नहीं है। शाणयों का जिससे वर्तमान या भविष्यत् मं श्रहित होता है वदी पाप है। विना विचार-स्वातन्त्र्य सोज ग्रसम्भव है। राजा श्रीर धर्म का भय याधक है। खोज बुद्धि श्रीर तर्क के श्राधार पर दोती है, श्रन्धपरम्परा के भरोसे सत्य की खोज होना सर्वधा श्रसम्भव है। सत्य के जिज्ञासुत्रों, श्रन्वेपकों को या खोज की चाह रलनेवालों को चाहिए कि भय को छोड़ दें, अपने भोतरी प्रकाश से काम लें, भीतर वाहर सच्चे हां, श्रपने मन की प्रयोगशाला में श्रकेले वैठकर, संसार के सिद्धान्तों की, वादों को इत्ति-वृत्तियों के श्राधार पर विश्लेषण संश्लेषण पूर्वक ्रवृत छाने । धर्म, राजा श्रीर पुरोहित सवका भय छोड़ कर श्रपने थ्रम से प्राप्त फल को जैसा का तेला संसार के सामने रख दें। यही स्वतन्त्रता है, यही पुराय है, यही कर्तव्य है, यही मानसिक पवित्रता है। देव, देवी, राजा, गुरु, पुरोहित, धर्म श्रीर ईश्वर किसीके भय से सत्य का छिपाना पाप है। किसीके कहने से अपने तर्क, युक्ति, जानाजुमोदित वात को क्यों छिपाचे १

ज़ब वह जमाले दिल फरोज़, स्रते मेहर नीम रोज़।
श्राप ही हो नज़ारा सोज़, पर्देमें मुँह छिपाये क्यों ॥
हाँ, हमारी खोज में लगाव, भुकाव न हो; श्रात्मान्वेषित
शुद्ध सत्य की खोज की रला करने की हिम्मत हाथ से न जावे;
प्रेम, भक्ति, ईर्ब्या, छेष, भय, दोस्ती, दुश्मनी हमारे विचार में
खलल न डालने पावें। हमें तो सचाई की तलाश है श्रीर

बस—श्रीर कुछ नहीं। हममें से हरएक का खत्व श्रीर दायित्व सत्य की खोज है। हम जानते हैं कि सत्य से हानि नहीं हो सकती, हानि होती है भूल से, श्रसत्य से। सत्य का खोजने बाला बड़े-बड़े नामों, बड़े-बड़े श्रंथों के प्रमाणों, रीतियों श्रीर रिवाजों की कुछ परवा नहीं करता, जब तक कि उसका विवेक परवा करने को वाध्य न करे। श्रन्वेषक श्रपने हृद्य का एक मुखी राजा है, पर श्रत्याचारी नहीं। इसके राज्य में छुल, भय श्रीर धींगा-धींगी को कदापि वसने की श्राहा नहीं होती।

सत्य सत्य ही है, बात नई हो या पुरानी, नर की हो या नारी की, बूढ़े की हो या वालक की, पंडित की हो या मुर्क की, जिन्दे की हो या संसारपित्यक्त की। हम पुराने श्रादमियों, प्राचीन श्रन्थों की भूठी, वेहूदी बात इसिलए सत्य नहीं मान सकते कि उन्हें श्रमुक महा लेखक ने लिखी है, श्रमुक प्राचीन श्रन्थ में लिखी हैं। न हम किसी नवज्ञवान या वालक की श्रीर न नवीन श्रन्थ की सत्य बात को इसिलए ठुकरा सकते हैं कि उसे एक नवयुवक या बालक ने कहा है, कि वह किसी श्राधु- निक श्रन्थ में लिखी हुई है। श्राकृतिक सौन्दर्य को किसी तरह गहने-कपड़े श्रादि सजावट की ज़करत नहीं होती, जैसे लाल गूदड़ों में भी चमकता रहता है, उसी तरह सत्य को बनाव, खुनाव, साज-श्रद्धार की श्रावश्यकता नहीं। भूठ, छल या पाप व कायरता को ही ज्याति, उच्चस्थान, उत्तम वेशभूषा श्रीर श्रीर छन्न द्यस्थिद की ज़करत हुआ करती है। हम तो सत्य-

शाही हैं। हमें इस बात की परवा नहीं कि दोदाश्रों का क्या मत था, इम किल सन्प्रदाय या समुदाय के हैं, किसका क्या कथन है, पया सिद्धान्त है। जो कुछ भी हो, सत्य है तो शिरो-धार्य्य, श्रसत्य है तो वहिष्कार्य। न किसीको करनी चाहिए श्रीर न कोई समभदार, चतुर, प्रतिभावान, सञ्चा कभी बहुमत श्रीर शल्पमत की परवा करता है। उसे तो सत्य से काम रहता है। वह जानता है कि वहुमत सदा मूर्लों का ही बना होता है। विना विचार किये ही हाथ उठानेवालों का समुदाय प्रायः बहुमत बनाया करता है। यह सत्य के ब्रहण करने श्रीर श्रसत्य के परित्याग को खदा तैयार वैठा रहता है, यदि सावधान किया जाय । इतिहासों के पढ़ने से क्या जाभ र यही तो कि विगत-इतिहास को पढ़कर उन भूलों से वर्चे जिनमें पड़कर श्रन्य जातियों ने हानि उठाई श्रर्यात् भूलों को हटाने श्रौर सत्य की स्थापना करने की इच्छा ही इतिहास-पाठ की श्रोर हमें प्रवृत्त करती है।

ज्योतिष, त्रायुर्वेद, खगोल, भूगोल, भूगर्भ इत्यादि-इत्यादि जितनी भी विद्यायें या विज्ञान हैं सब किसी सची बात की खोज करते हैं। यहाँ तक कि गण प्रधान कविता भी श्रपनी तह में किसी सचाई की तरफ़ इशारा करने का दावा करती है। लेकिन सत्य के अन्वेपी को इस गण कविता की ज़करत नहीं, वह न्यारियों की तरह कुपदार्थों को अलग फेंक देता है। रसायनिक श्रपना प्रयोगशाला में वैठा-वैठा प्रकृति के गुप्त भाएडार की खोज करके सच्चे मोती के निकालने में न्यस्त रहता है। जहाँ देखिये सत्य की ही खोज है। हाँ पैसा ठगने श्रथवा मूखों का गोल बढ़ाने के लिए गण गढ़नेवालों की संख्या भी बहुत है। इन्हीं से बचने के लिए हमें सत्य की न्याख्या की ज़करत पड़ी है।

(२)

सत्य का ही पर्याय विज्ञान है। प्रत्येक विज्ञान का विद्यार्थी सत्य की ही खोज में लगा रहता है। वह धर्म-प्रचारकों की .तरह संसार की श्राँखों में धूल भोंक कर सत्य के छिपाने की चिन्ता नहीं रखता। मनुष्य में सच्ची वात कहने की हिम्मत होनी चाहिये। परवा नहीं, मरे हुन्नों ने क्या कहा या जीवितों का क्या विश्वास है। सचाई ही बुद्धिमानों की ईमानदारी है। इसी में उनका श्रीर श्रीरों का भी भला है। जो धर्म या लड़ का भय दिखाकर किसीको सत्य वोलने से रोक रखता है, वह सभ्यता का नाशक, मनुष्य जाति का घोर शत्रु—कट्टर द्वशमन है। जो राज्य के नियन्ता श्रीर धर्म के सञ्चालक श्रवने विचारों के प्रकट करने के श्रधिकार का दावा करते हैं श्रौर दूसरों के उसी श्रधिकार को श्रस्वीकार करते हैं वे श्रन्यायी श्रौर श्रसत्य के समर्थक हैं। कोई विचार कैसा भी पवित्र, ग्रुद्ध श्रौर निदोंष क्यों न हो टूसरों को श्रधिकार है, कि उसकी जाँच करें-उसकी स्रालोचना-प्रत्यालोचना करें। कौन जानता है कि कीनसा विचार पवित्र है। कोई भी विचार मेरे लिए पवित्र नहीं है जिसकी पायत में यह न जान लूं कि यह सभा है। स्वतन्त्र विचार प्रकट करना एक मुद्दत से राजा या राज्य श्रीर ईश्वर की श्रवजा का कारण समभा जाता है। यह क्यां ? क़ुरान के किसी विचार के विरुद्ध मुँह खोला कि मुरतिद, भुनहरिफ श्रीर इझील को समालोचना की कि हियरटिक बनाया गया, वेदों, शास्त्रों के किसी वाक्य में शंका उत्पन्न हुई तो 'नास्तिको वेदनिन्दकः' कह कर उत्तका तिरस्कार किया गया। सोकरीज श्रौर गलेलिया का दिखडत होना, कादियानियों का काबुल में पथराया जाना, स्वामी दयानन्द की हत्या करना, वौद्ध-भित्तुश्रों का देश से वहिष्कृत किया जाना, धार्म्मिक श्रत्या-चारों के जीते-जागते प्रमाण हैं। लो० तिलक को कई वार क़ैंद क्यों हुई, म० गाँधी को जेल क्यों भेजा गया, स्राज स्रनेक नवयुवक जेल में क्यों सड़ रहे हैं ! स्वतन्त्र विचारों के प्रकट करने के कारण।

स्वतन्त्रता, वादानुवाद, ईमानदारी, खोज और हिम्मत सत्य के सहायक सखा हैं। इनका अपमान करना सत्य का अपमान है। सत्य का प्रेम प्रकाश से है, सरे मैदान से हैं, खुली वात से है। सत्य मनुष्य के ज्ञानेन्द्रियों, मनुष्य के विवेक, तर्क और अन्य समस्त मानसिक गुणों से उपनीत होकर कहता है— सोचो, विचारो, समफों में कहाँ और कैसे हूँ। इसके लिए बलवान निर्वल पर, मनुष्य-मनुष्य पर अत्याचार करे; यह न्याय है, सत्य है, धर्म है या पाजीपन ? सचाई नहीं चाहती कि लोग लट्ट के सामने सिरं भुकां कर प्रणाम करें, श्रादाव करें, होमेज के लिए उद्यत हों, पेट के यल चलें, पुरुपों की गुदा श्रीर स्त्रियों के गुहा स्थान में लकड़ी की जाय। भय दिखला कर नमस्कार प्राप्त करना सत्यं सदा दुरा समभता रहा है श्रीर रहेगा। हम सत्य की सेवा क्यों करें । खोज, ईमानदारी, भद्रता की क्यों ज़करत है ! प्राणी मात्र के सुख के लिए। यह न माने तो कम से कम मनुष्य मात्र के सुख के लिए। यह स्वतन्त्र विचार वाले प्रत्यक्ष-वादी का उत्तर है । श्रम्ध विश्वास सत्कर्म नहीं है। विना तर्क श्रीर वुद्धि के सहयोग किये कोई वात 'निणींत' (Settled fact) नहीं हो सकती।

यह सत्य श्रीर विचार-स्वाधीनता का ही फल है कि संसार ने इतनी वैद्यानिक उन्नति की। यदि इसके मार्ग में धर्म छल श्रीर राज-कैतव की रोकें न होतीं तो श्राज जगत् कई शताब्दी श्रागे श्रानेवाले समय को कभी का प्राप्त कर खुका होता। प्रकृति के भेदों का उद्घाटन, प्रकृति पर विजय पाना, मार्ग की नैसिगिक वाधाश्रों को दूर करने का साधन सत्य है। हम देखते हैं मनुष्यों में भूक-प्यास का कष्ट वढ़ रहा है, रोगों की वृद्धि हो रही है, नाना प्रकार की यातनाएँ सामने खड़ी हैं, कद छोटे होते जाते हैं, उमर घटती जाती है, पेट के लिए प्रेम वेचा जाता है। यह सब कैसा नाटक है रे श्रन्न, वस्त्र, धर, ईधन, भेषज श्रादि विहीन कानून से शान्ति कैसे स्थिर

न्हेंगी ? संसार सुखी कैसे हो सकेगा ? इस लोक में योंही पैर महीरते रही परलोक में वड़ी-बड़ी हवेली, दूध, मधु, मक्लन, सध वर्गरह के समुद्र, सुन्दर-सुन्दर जरतारी रेश्मी वस्त्र श्रीर जवाहरात जटित सीने के गहने मिलेंगे, इसलिए या इसलिए कि इस सुख श्रीर शान्ति से घर में खाने-पहरने की आंभट को छोड़ कर मरुगोन्सुल हो चैन की बंशी बजाते रहें श्रीर श्रानन्द सं हएड पेलं । अगर इसमें जरा भी गुलती हुई तो पुलीस का लहु, उला का फतवा श्रीर जेलर का साँटा सिर पर धरा है। श्रागर यह वाते ठीक इसी लिए हैं तो हुजूर का सत्य बड़ा विचित्र है, इतनी टेढ़ी खीर है कि उसकी निगलते ही हलक़ फट जाना है। ऐ सचाई त् किथर है ! कैसी है ! क्या ऐसी री है, जैसा हमें धर्म श्रोर राजशासन बतला रहे हैं ? श्रगर तुभे रम ऐसा जानते तो तेरी उपालना न करते, तुभे दूर से धी नमस्कार कर लेते। परन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि सवार्र! र् है, सनातन है, मानव धर्म है, सुख का हेतु है, तू ही श्रानन्द हैं, गृही चैनाय है, तृही अत्तर है।

यह भूनगडल श्रमावाँ श्रीर दुर्गु गाँ का साग्डार हो रहा है. भयानक लगें से श्राकीर्ग है, इसमें मूर्खता-जन्य भय श्रीर पूजा प्रधानका प्राप्त कर सुकी है, सावधान ! सावधान !

देग्ते, श्रद परतोक का राज-राजेरवर, सातर्वे श्रासमान पर रुद्धितीय चौकी पर विराजमान वादराह पदच्युत किया जायगा, गरक की पातनाश्रों का नामोनियान मिटाया जायगा, कुम्भीपाक, रीरव, संहार श्रीर कालस्त्र श्रादि नरकों को सदा के लिए उठा दिया जायगा, हवालातों, जेनज़ानों की ज़रूरतें मिटा दी जायँगी। समय समीप है जब सत्यदेव की पूजा का विस्तार होगा, लोग श्रपने दिमाग समुन्नत कर सकेंगे, युद्धि बढ़ा सकेंगे। हम देखेंगे, कि प्रकृति ही हमारा धर्मा-श्रन्थ है, इसी के पाठ से सत्य की जय होगी, श्रसत्य मिटेगा श्रीर संसार सुखी होगा।

मनुष्यो, श्रवने क्रवर विश्वास करो, श्रवने पैरां खड़े हो।
भाग्य के भरोसे पर जीनेवालो। श्रवृष्य श्रजात परमेश्वर से मिला
माँगकर तुम पेट नहीं भर सकते, इसलिए संसार में मनुष्य की
तरह जी भी नहीं सकते। श्रापने शेख़िचली की कहानियाँ
सुनी हैं, श्रापके पास वे मूँइ-गोड़ की कथाश्रों का भाणडार भरा
पड़ा है। उनसे तुम्हारा क्या बना है हिन्दुश्रों, तुमको सहस्रों
वर्षों से सुख की नींद सोना, निश्चिन्त बैठ कर पेट भरना
नसीव नहीं हुश्रा। श्रगर इन परलोक की कहानियाँ से पेट
भरता होता तो तुम कभी इतने भूके-नंगे नहीं हो सकते थे।
प्रकृति से बड़ा कोई नहीं है। मनुष्य ही श्रपना भाग्यविधाता,
दूसरे मनुष्य का भी विधाता है। मनुष्य-समाज एक बनकर,
मिलकर श्रव्हिका स्वामी बन सकता है। वृत्त, धरतो, सड़क,
कंकड़ियाँ, नदी, वन, उपवन, पहाड़ सभी मिलकर हमें एक
नया बृतान्त, नई कथा बतला रहे हैं। श्राकाश के तारे, चन्द्र

स्टर्य, प्रहाति के श्रंग हैं, व्याख्यान सुनो श्रीर मनन करो। सणी उमङ्ग, कहो उत्साह से मनुष्यवत् वने रहो।

> सिजदेसे गर विद्युत मिले दूर की जिये, दीज़ल सदी पै सर का भुकाना नहीं श्रव्छा।

में समभाता हूँ, लोग सुनते-सुनते घवरा गए होंगे। पर में पया करूँ, यह सत्यदेव की सची कथा है, दिल जलों की श्राह है, पचास वर्ष के दुखमय जीवन का श्रनुभव है। इसे श्राप चादते हैं तो सुने नहीं तो श्रापका श्रधिकार है श्राप इन दो-चार पृष्ठों को उलट जाय, दूसरी रोचक वात पढ़। मैं नहीं फहता कि श्रापको पढ़ना पड़ेगा, नहीं तो नरक के सुपुर्द या जेल के ह्वाले होना होगा। कहूँ भी कैसे न हाथ में इतनी शक्त, न दिल में इतनी कूरताकी इच्छा। हाँ, मैदान में डटा है, श्रपनी लोई हुई सत्य की शक्ति को हुँइता हूँ।

न दस्ते कि या यार दरावेजम मन। न पाये कि श्रज मियानः द्युगुरेजम मन।

'श्रामद्म वरसरे मतलव ।' 'सत्यम् धर्म सनोतनः।' क्या यह सत्य नहीं है, कि नारियों के कष्ट नरों सें कहीं श्रधिक हैं। इन्हें एक हजरत ने पित का ग़ुलाम, दुनरे ने भोग का सर्वोत्तम पदार्थ यनाकर श्रीर विचार ही दिल से, निकाल दिया, तीसरे ने पह लोक ही नहीं परकोक सी मिध्या बस्तु की श्राहा के श्राधार से भी पश्चित कर दिया श्रीर कह मारा 'नारियों की मुक्ति ही नहीं होती, श्रीर तो श्रीर विद्या के बोक्त से दवे हुए श्रमेक दार्शनिकों ने भी इन्हें दवीचे रखने का पूरा प्रयक्त किया। जर्मनी का बड़ा भारी दार्शनिक परिडत शोपेनहार साहव फरमाते हैं—

Woman is not called to Creat things. she pays her debt to life by the throes of birth, care of her children, subjection to her husband. The most intense utterances of life are denied her Her life is destined to be less event-ful and more trivial than that of man. It is her vocation to nurse and educate children, because she is herself childish and remains an over-grown child. All her life is a kind of intermediate being between the child and the man who is the only proper human being.

भाषान्तर—महत्व के कामों के लिए नारियाँ नहीं होतीं। वह प्रसव वेदना, बच्चे की सेवा श्रीर पित की दासता से श्रपने जीवन का ऋण चुकाती हैं। उसे श्रपने जीवन की गहरी वातों के कहने का भी श्रधिकार नहीं। उसके जीवन का नरों के जीवन से श्रधिक तुच्छ श्रीर कम घटना पूर्ण होना उसके भाग्य में है। उसका यही काम है कि बच्चों को पाले-पोसे, खिलाये-पिलाये, क्योंकि वह स्वतः बच्चों की तरह होती है

श्रीर जीवन भर किशोर वयस्क वातक बनी रहती है। बच्ची श्रीर मनुष्यों के बीच का एक जीव नारी है, यथार्थ मनुष्य तो पुरुष ही है।

श्रर्थात् खियाँ मूर्ज, नादान, वे समझ, केवल घर की टहल चाकरी के योग्य होती हैं। यही तुलकी बाबा भी कहते हैं— ''ढोल गंबार शृद्ध पशु नारी, ये सब ताड़न के श्रिधकारी!" सुभान तेरी कुद्रत! सुभान तेरा खेल! कितनी हूर की सुभी, कितना सुन्दर विचार है, कैसी महत्वपूर्ण खोज है— कैसी सत्य श्रीर न्याय की बात है! श्रीर हजरत शोपेनहार की जबानी सुनिये—Girls should be brougt up to habits of domesticity and servility.

लड़िक्यों को घरेलूपन, नम्रता, सेवा-कर्मकी शिद्धा-दीका मिलनी चाहिए। जैसे मनु बावाने शुद्धों के लिए फरमाया है, 'सुश्रूषामनुस्थया।

यह क्यों ! इसलिए कि Women are the most complete and hopless philistines" स्त्रियाँ परिपूर्ण श्रीर श्राशातीत मूर्जा होतो हैं।

यदि यह बात डाक्टर वेसेएट सदूश विदुषो महिला ने पढ़ी या सुनी होगी तो उन्हें आश्चर्यान्वित होकर शोपेनहार की आत्मा को बुलाकर पूछना पड़ा होगा कि यह क्या बात है? क्योंकि श्रीमती वेसेएट साहवा सनातन धर्म का रहस्य समभती हैं। श्रमरीका, योरोप श्रीर कस में विद्वान महिलाश्री की कमी नहीं है, वह क्यों फिर लोट कर अविद्यान्धकार में जाना ठीक समर्भेगी। क्या परिडता उमा नेहरू पेसे पुरुषों के मिथ्या विचारों का खएडन करके 'सत्य' का भएडा न उठायेंगी?

कोई भी देश ऐसा नहीं जहाँ की वावत हम शोपेनहार श्रोर उसी के से दूसरे श्रनेक विचार वाले दार्शनिकों के विचारों को सत्य समस्त सकें। मूर्ख श्री हो वा पुरुष श्रनेक कारणों से होते हैं। परिस्थिति, शिद्धा दीद्धा की सुविधा का न मिलना; वलवानों, धनवानों, विद्धानों का श्रत्याचार, श्राव हवा, शारीरिक दोप श्रादि कुछ ऐसे कारण हैं जो नर-नारियों को मूर्ख बना देते हैं। इन बातों पर प्रकाश डालने के बदले, इन कारणों को दूर करने के स्थान पर जो कहता है कि श्रमुक श्रंश मनुष्य जाति का मुर्ख वने रहने के लिए ही बना है वह श्रसत्य कहता है, सत्य का खून करता है। सत्य सनातन धर्म बतलाता जा रहा है श्रीर बतलायेगा कि श्रन्त में सत्य की ही जय होती है।

हमं श्राशा है हमारे देश के नर-नारी यह सिद्ध कर देंगे कि उनका हानी, विद्वान, वलवान् श्रीर स्वतन्त्र मनुष्य वनना उनके हाथ में है, श्रीर इस तरह से बना करते हैं क्योंकि यही रीति सत्य श्रीर सनातन है।

(३)

क्रपर के दो लेकों में जो कुछ मी कहा है वह सब प्रत्यत्त, प्राष्ट्रत पूर्व स्वयं सिद्ध सत्य है। मुक्त से कोई पूछे कि कीन सहता है 'दासता स्वतन्त्रता से श्रच्छी है ?" तो मैं सार्फ़साफ़ कह दूँगा कि सारे पिएहत, पुरोहित, मौलवी, मुल्ले,
पोप श्रीर विशप कहते हैं कि ईश्वर की सच्ची श्राज्ञा, श्रपीरुपेय
गान हमारे पास है, इसे श्रांस वन्द करके मान लो, इसीके
श्रमुकार चलो, श्रद्धा को दसल न दो। जो कोई इस पुस्तक में
लिशी हुई घातों को—जो श्रपीरुपेय हैं, मनुष्य-बुद्धि के बाहर
है न गानेगा, वह श्रनन्त या श्रसीम समय के लिए नरक की
यातना भोगेगा या "चौरासी" में फिरता फिरेगा। चाहे
गुमको धर्मपुस्तक की वात कितनी ही खुराफात भरी नजर
गावे पर उसे ज़कर ही मान लो, नहीं तो तुम नास्तिक हो,
मुन्निद हो इत्यादि। क्या यह मानितक स्वतन्त्रता है या
गुलामी की कठिन येड़ी !

हमारे गले में धर्म पुस्तकें आशा और भय के डोरे से यांची जाती हैं। एक और शैतान हमारी गर्दन द्वोचने की नय्यार है और दूसरी और परमेश्वर महाराज या अल्ताह नियां अपना डंडा लिए लान-जाल आंख दिखा रहे हैं। इस धर्म रुपी चही के दोनों पार्टों के अन्दर मनुष्य आंख बन्द परके पिने जा रहे हैं। इस पर भी कहा यह जाता है कि सत्यामस्य का विवेचन करने वानी बुद्धि नुम्हें मिली है, तुम स्वतन्त्रनापूर्वक सत्यामस्य के निर्णय के अधिकारी हो। परमारमा द्यानु है यह नुम्हें स्वतन्त्रना देता है कि नुम अपनी पत्रमद से काम करों। येचारे थे-एड़े दीन-हीनों से पुरोहितनी कहते हैं, तुम वेद-शास्त्र पढ़ कर नहीं समक सकते, कुरान का समक्षना श्रासान नहीं, वाइविल का जान लेना टेढ़ी खीर है। हमारे हाथ में स्वर्ग की कुझी है; चले श्राश्रो हम तुम्हें श्रभी ठीक-ठिकाने पर पहुँचाये देते हैं। किसीने ठोक ही कहा है:—

> गधे की लंगोटी में तीन मुहर सोने की कहती है बुलबुल में पार लगा दूँगी सुन।

· श्रर्थात्, श्रग्नानी लोगां का जीवन--लड़कपन, जवानी श्रोर खुढ़ाई, सोने की श्रशफियाँ हैं, बुलबुल--पुरोहित श्रोर परिडत-इन्हें पार लगा देने का धोका देते हैं।

हमारे , खेरलाह वकलाय खुदा फरमाते हैं कि धर्म-पुस्तक मनुष्य के तर्क की पहुँच से कहीं परे हैं, मनुष्य-युद्धि उसके रहस्य को नहीं जान सकती। मैं भी कहता हूँ, 'वात सत्य है, मनुष्य-युद्धि से खारिज पागललाने के निवासियों के लिए ही श्रापकी धर्मपुस्तकें बहुत उपयुक्त हैं।'

इस तरह हमारे मन-मन्दिर से परम-पूज्या भगवती दुदि को वहिष्कृत करके हमें नरक के भय रूप सर्प के सामने खड़ा किया जाता है श्रीर कहा जाता है—इस सर्प का भय करो नहीं तो तुम श्रपने श्रापको खो बैठोगे। में तो यही कहुँगा कि इस सर्प का सर कुचल दो, भय के भूत को विदा कर दो, श्राँख खोलो, देखो सत्यासत्य, उचित-श्रनुचित का भेद बतलाने वाली कसोटी तुम्हारे पात है। श्रगर दिमागृ ईश्वर के भय की धुश्राँधार गरम हवा श्रीर धूल से भरी हुई श्राँधी से जल कर क्हारा का जङ्गल वन गया तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जाया। हमें वच्चों की तरह फुसलाने-वहलाने के लिए केवल तरक का भय ही नहीं, किन्तुः स्वर्ग के सुखों का प्रकोंभन भी दिया जाता है। अगर तुम डरसे बुद्धि को विदाई नहीं दे सकते तो वावा कुछ उत्कोच (रिशवत) लेकर ही श्रक्क को , खैरवाद कहो।

लेकिन स्वाभाविक सत्य सनातन धर्म कहता है कि बुद्धि
शान सममदार, विचारशील व्यक्तियों की प्रतिष्ठा और निष्ठा

उसी वात पर हो सकती है जिसकी जड़ में खुली ठोस सर्व
मान्य घटनायें हो, जिसका आधार विशुद्ध सत्य वातों पर हो।

वात तो वही मानने लायक होती है जिसमें धमकी, घुड़की से

काम न लिया गया हो, वासनाओं को न भड़काया गया हो,

श्राशा और भय का सहारा न लिया गया हो विक बुद्ध सीधेसाद विस्पष्ट शब्दों में विचेक से काम लेने के लिए छोड़ दी

गई हो और विवेक ने अपना श्राख़िरी फैसला दे दिया हो।

मन को सारी योग्यताओं ने, हमारे सारे इन्द्रिय ज्ञानों ने,

हमारी बुद्धि ने मिलकर यह कहा हो कि अमुक बात निस्सन्देह

मान लेने योग्य है क्योंकि हमने इसे ता-छान कर खरा पाया

है तो हम उसे ज़रूर मानेंगे, इसमें किसी भी पिएडत या पुरो
हित की सिक़ारिश दरकार नहीं।

वाचक वृन्द ! विश्वास किसी पुरस्कार या उत्कोच से पैदा नहीं होता। विश्वास की उत्पत्ति निर्दोष प्रमाणों से होती

है। किसी इनाम या रिशवत का वादा सवृत नधी हो सकता। रिशवत से वात की वस्त-स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं पड सकता, न इससं वात सिद्ध होती है, न इससे कोई सन्देह दूर होता है, न किसी शंका का समाधान इससे सम्भव है। रिशवत या इनाम के वल पर किसी वात का किसीसे मनवाना या कहलाना ईमानदारी नहीं वेईमानी है, श्रसत्य है, छल है, धोका है, दुष्टता है, वद-माशी है। किसी टाकिम को-चाहे वदनाम पुलीस का सिपादी हो. डिप्टी कलक्टर, मजिस्टेट हो, चाहे जज या जुरर हो-रिश्वत तभी दी जाती है या रिश्वत का वादा तभी किया जाता है जब भूठ की सत्य कहलाना होता है। इम से खर्ग के सुखों का वादा इसी लिए किया जाता है कि हम धर्मी पुस्तकों की मिथ्या कलपनाश्रों को सत्य कहने लगे'। मज्ञुष्यो सावधान ! इस रिश्वत के वादे से बची, नहीं तो तुम तो मारे ही जाग्रोगे तम्हारी श्रागे श्रानेवाली सन्तानों का भी सत्यानारा होता रहेगा।

श्रगर में कह दूँ कि धरती के केन्द्र में एक ऐसा हीरा है जिसकी परिधि ५०० मील है। मेरी इस वात का जो विश्वास करेगा उसे एक करोड़ रुपया इनाम मिलेगा। तो क्या श्राप इस वात को प्रमाण मान लेंगे १ क्या यह वादा प्रमाण है इस बात का कि ५०० मील परिधि वाला एक हीरा भूगर्भ में मौजूद है १ बुद्धिमान लोग तो तर्कशास्त्र की कसीटी पर इस कथन को परलहा चाहेंगे, युक्तियुक्त प्रमाण माँगेंगे, हाँ, धोका देनेवाले शौर हपोरलंख लोग धन के लोभ से चाहे पेसे मूठ को सत्य कहने लगें। मैं तो सभी धम्में की पुस्तकों से उद्धरण देकर वतलाता कि मेरा दावा बिल्फुल सचा है, लेकिन मुभे विश्वास है कि सतवाला महाराज इतने लम्बे लेखों को खीकार नहीं करते हलिए यहाँ हो रुकना पड़ा। चमत्कारों, मोजज़ों या श्रीर श्रमहोनी वालों को प्रघटित घटना चताकर लोगों की श्रांबों में धूल मोंकना धम्मे-नेताश्रों का ही काम है। इससे मतुष्य की मानसिक स्वतन्त्रता पर पत्थर डाला जाता है। जहाँ श्रात्मोद्धार के लिए विश्वास की प्रधानता दी गई है वहाँ बुद्धि का गला घोंटा गया है। इस प्रकार की बेहदा बालों ने स्वत्व श्रीर दायित्व, मले श्रीर बुरे के पहिचान की कसीटी पर पदी डाल दिया है।

मजा यह है कि इन सारी श्रनुचित चेए। श्रों के होते हुए भी जनलाधारण पर सनातन श्रथांत् नैसिंगिक धर्म का प्रभाव बना ही रहा श्रोर समय-समय पर फूठ का पर्दा खोलने, श्रसत्य का गढ़ ढाहने को श्रविश्वासी, नास्तिक निर्मीक लेखक श्रोर बक्ता होते ही रहे श्रोर सत्य की क्रमशः जय होती रही। श्राज हमें संसार का रंग पहले से बहुत बदला नजर श्रा रहा है। चाहे श्रताह मियाँ श्रास्तीन चढ़ाये मेरी गर्दन नापने को तय्यार क्यों न खड़े हों, चाहे धर्मनेता हमें रात-दिन ईश्वर महाराज की तलवार की धार श्रीर उनके जेलखाने की मुसीवतों की कथा

सुनाया फरें पर श्रक्त तो इस बाजीगरी को शिकश्त देकर ही चैन लेगी। इन धर्म के मकाश्रॉने (Monopoly holders) कितने विरोधियों के श्राण नहीं लिए। इसी साल के भीतर कुरान के संरक्षतेंने सात श्रार्य समाजियों के खून पिये, पिछले इतिहास की दास्तान दुहराने की ज़रुरत नहीं। पेसे वैकुएठ या विहश्त की ख़रीद फरोख़्त का बाज़ार, श्राजकल भी खून गर्म है। हिन्दुश्रों का बाज़ार इस खयाल से बड़ा ही सुन्दर श्रीर शानदार नजर श्राता है। इनके यहाँ श्रदालतों की तरह ईश्वर के यहाँ भी वकालत, रिशवत, नजराना बड़े ज़ोरों के साथ चलता है। रिशवत मुसलमान इंसाई भी देते हैं; पर हिन्दू इन से बढ़े-चढ़े हैं। हिन्दुश्रों के हरामखोर धर्म नेता तादाद में बहुत—श्रन्य धर्मों की श्रपेता बहुत ज्यादः—हैं श्रीर मज़े भी ख़ूव उड़ाते हैं।

लेकिन विशुद्ध सत्य या सनातन सत्य तो इसे वड़ी ही घृणा की दृष्टि से देखता है और चाहता है कि मोम को मोम कहा जाय, पत्थर को पत्थर—ग्रनर्थ ग्रज्ञा नहीं, मूर्खों के धन से जेव भरनेवाले पुरोहित, पगड़े, मौलवी, श्राज माला माल हैं। जो जनता कथा-कहानियों श्रीर गपोड़ों पर विश्वास करना छोड़े दे तो हरामखोरों का एक बहुत खड़ा समुदाय ग्रपनी मौत श्राप ही मर जाय श्रीर जलदी मर जाय।

पक घोर पाप राज्ञस को संसार का स्वामी बनाकर आकाश में वैठाल देना और फिर उसके नाम से संसार के लोगों को निर्दयता के साथ दोनों हाथों लूटना धर्म है। जो इसका भएडा फोड़ करने उठे, उसे वड़े-वड़े उपाध्याय एम० ए० खानदानी खुटेरे कोसने को खड़े हों। इन खुटेरों और गुलाम हृदयों को स्वतन्त्र विचार वाला मनुष्य सुहाता ही नहीं। यह काल्पनिक जगत् में चकर लगानेवाले सचाई को फूटी श्रांखों नहीं देख सकते। उसमें अपराध किसका है ? सत्य का ?

वीरवल श्राकाश दीपक के तले वैठकर खिचड़ी पकाता है, वाका नानक इलाहाबाद में त्रिवेणी के कल से अपना करतार पूर का खेत सींचते हैं। इन्हें कोई कैसे समभाये जब समभाने वाला ख़ुद नरक की श्राग में जलने से उरता हो श्रीर श्रज्ञात लोकस्थ मृत लोगों को भर-भर लोटे पानी पहुँचा रहा हो।

(8)

सिवा धर्म के श्रीर सारे ही विज्ञान वास्तविकता की खोज में व्यस्त श्रीर सचाई की तलाश के इच्छुक श्रीर सची बात के भूखे देखे जाते हैं। जब कभी, जहाँ कहीं किसी व्यक्ति ने काई सची बात खोज कर निकाली कि उसका यथेष्ठ सम्मान किया गया। लेकिन धार्मिक विद्यालय में श्रगर किसीने किसी साम्प्रदायिक विश्वास के विरुद्ध कोई बात कही कि वहीं उसका मुँह बन्द किया गया, या तो वह श्रपनी खोज को गुप्त रखे, या श्रपनी खोज का स्वतः खरडन करे, नहीं तो पदच्युत होने का श्रपमान भेले। श्रीमती ऐनीवेसेन्ट सदृश परिडता को उनके पति ने इसलिए श्रपने प्रेम से विश्वत किया था कि

इनका मत उनके धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकृत पड़ा। मन की शुद्धता श्रोर सत्यता पाप है, कायरता श्रोर छन सुकृति है। स्थापित धार्मिकसिद्धान्तों के विरुद्ध कही हुई सच्ची बात मिथ्या है, जहाँ किसी ने ऐसी सच्ची वात कही कि वह श्रमिशाप का भागी बना। धर्मशिद्धा-भवन का हर एक श्रध्यापक श्रनृत में ही जीवन ज्यतीत करता है। धर्म-विज्ञान ही एक श्रसत्यपूर्ण ज्ञान है। इसे विज्ञान कहें या श्रद्धानान्धकार विद्ेश के शत्रु हैं। भूगर्भ, भूगोल, खगोल श्रादि विद्याशों के छाताश्रों को उनके सच्चे विचार के लिए दएड दिए गए, मानों वे हत्यारे श्रोर महापापी थे, सिर्फ़ इसलिए कि उन्होंने माने हुए धर्म-सिद्धान्तों के विरुद्ध सत्य का श्रकाश किया।

श्रायुर्वेदकों, प्राणी श्रास्त्र के क्षाताश्रों, नृवंश विद्या के जानकारों श्रोर पुरातत्व के लोजने वालों को धर्मयाजकों ने बुराभ्यला कहने से नहीं छोड़ा। फ्राम्स के कुम्हार पैलिसी को जिसने चीनी के वर्तन बनाने की रीति खोजी, धार्मिक विचारों के कारण कैंद्र किया गया। यद्यपि श्राज उसकी मूर्ति फ्राम्स देश को सुशोभित कर रही है। लोकमान्य भगवान् तिलक को वेदों की श्रायु को खोज करने श्रोर गीता रहस्य लिखने के कारण उनके कतिपय शिष्यों तक ने उन्हें बुरा-भला कहा। यह धर्म-विद्यान की सचाई, उदारता श्रीर महत्ता के छोटे-छोटे नमूने हैं। कुरान के विरुद्ध विचार प्रकट कीजिये कि मुसलिम खड़ग

इस्त शिर पर खड़ा सिलेगा। वाइविल का खएडन कीजिये कि कि तुरन्त पादड़ी लमाज काटने दौड़ेगा । यही हाल हिन्दू और दूसरे धर्मी का भी है। हाँ, जुदा-जुदा धर्म वालों के क्रोध के पारे की डिगरी में तारतम्य श्राजकल ज़रूर देखने में श्राता है। धर्म पुस्तकों स्रोर उनकी बातों की पड़ताल करने से प्रकट होता है कि सारे घर्म एक श्रमृत कल्पना की शाखाएं हैं। क्यों-कि उनकी गप्प कथाएं एक टूसरे से ख़ुब जोड़ खातीं श्रीर समता रखती, हैं; पर इस बात को स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं। यदि सत्य मानने को धर्मयाजक तैयार होते तो ग्रुघ नानक के उपर्युक्त ज्यावृहारिक श्राद्ध-तर्पण के खगडन के पश्चात् यह मिथ्या प्रथा उठ जाती। पर नहीं, ज्यों ज्यों सत्य का सूर्य कँचा उठता जाता है, यह बुराइयाँ दिन-दिन घटती ही चली जारही हैं। धर्म के संरत्तक संभाव्य, समता श्रीर श्रनुमान की दुहाई देते हैं, लेकिन प्रमाण न दारद । श्रगर मूसाने श्रीर बुगहम यंगने सिनाई श्रीर ऊटा पर ख़ुदा से बात की, तो नामदेव की प्रार्थना पर विष्णु की सृतिने दूध पिया श्रीर भोजन किया श्रोर मुहम्मद साहवने सातवें श्रासमान पर जाकर र्दश्वर से सालात् वातें की। लिलत विस्तर के अनुसार बुद्धदेव को दिग्पालों ने श्रांकर प्याले दिए। जैन सतीने पैर छुश्राकर हज़ारों मन की जञ्जीर तोड़ गिराई। मला इन वातों को सिवा श्रम्धविश्वासियों के दूसरा कौन सङ्गान मनुष्य सत्य मान

सकता है ?

कौन से धर्म ने विकान की वृद्धि की है। जितनी खोज, जितने श्राविष्कार श्राज हमारे सामने हैं, इनमें से एक का भी पता धर्म पुस्तकों में होता तो नई खोज को हम खोज या श्राविष्कार क्यों कहते ? हम तो इन्हीं नई-लोजों को धर्मग्रन्थ करताश्रों की बहादुरी समभकर पहले ही सन्तुष्ट हो जाते। धर्मग्रन्थों के श्रथों को प्रत्याह बदला जाता है, या उनके नये-नये अर्थ किये जाते हैं। पर उन गप्पों से परिवर्ण गल्पों को सदा के लिए तह करके क्यों नहीं रखा जाता ? इसलिये कि उनके विना पुरोहित-मएडल श्रीर राजवर्ग की लूट कायम नहीं रह सकती। धर्मयाजकों की कथा में जब श्रीता कम श्राते हैं तो वह नई शिद्या, श्रीर विक्रान के प्रकाश को ख़ूब जी भरकर कोसते हैं। कभी-कभी यह निर्धनी की प्रशंसा में घरती और श्राकाश की सन्ध मिला देते हैं। घन,, दौलत, भोग-विलास की मनमानी ख़बर लेते हैं। गुरीवाँ श्रीर त्यागियों को स्वर्ग में पहुँचा देते हैं। परन्तु हजरत की नजर चढ़ाने पर ही रहती है। चढ़ावा कमती आया, दिल्ला कम मिली कि श्रदा-मिक की कमी की दुहाई मच गई। इन पुरोहिती का न शिला में विश्वास है, न मस्तिष्क की समुत्रति में भरोसा श्रीर सुख। यह तो यही चाहते हैं कि सारा संसार श्रन्धा वनकर दुनियाँ भर की गर्पों को सच मान ले और इनका उल्ल सदा के लिए सीधा वना रह जाय।

इनकी बुद्धि में पृथ्वी चक्की के पाट के सदृश है, सूर्य एक कीचड़ के गड्दे से निकलता है श्रीर फिर वहाँ ही जाकर हिए जाना है, इत्यादि । जहाँ देखिये धर्मान्धता, श्रन्धविश्वास, रुढ़ियों की दालता, रीतियों-रिवाजों की गुलामी भरी पड़ी है। वर् फ्रन्थ विश्वास श्रीर रुढ़ि-प्रियता विषयर सर्प हैं। इनके घातक. दिप से जाति को सचाई ही वचा सकती है। धर्मान्यता प्राण घातक है। एक विज्ञान-प्राण सज्जन कहते हैं। 'श्रव ईडन के वाग् की कहानी, नेवले का सुनहरी पूछ का किस्सा हमें सदा के लिए उठा देना पड़ेगा। श्राज के लिप, सर पी० सी० राय श्रीर सर जैं० सीं० वीस हमारे ऋषि हैं। इनके तिखे वैज्ञानिक प्रन्य वेद हैं, प्रकृति ही उपास्य परमात्ना है। वह समय दूर नहीं हैं जब थामिक ज्याख्यानों के स्थान में सत्यवादी विद्वानों के शिता-प्रद भाषण होंगे, जिनसे हमें श्ररल सत्य का पता लगेगा। प्रकृति के गुप्त, गृढ़ रहस्य हमारे इस्तगत होंगे। पुरानी निर्मू ल, तर्क विरुद्ध पुस्तकों के स्थान में हमारे पुस्तकालय वैक्षानिक कोजों की पुस्तकों से भरे होंगे। पुरोहितो ! सावधान, गप्प गायात्रों को, भद्दी वेसर-पैर की रिवाजों को जल्दी मिटा दी, हँस-हँस कर मिटा दी, नहीं तो तुम्हें बहुत पछताना पड़ेगा। तुम्हारे वच्चों को इसका कुफल भोगना पड़ेगा। श्रज्ञान का दिन-दिन नाश हो रहा है।

श्राश्रो वान्धव, हम सत्य सें प्यार करें, श्रात्मा की स्व-तन्त्रता पर कुठाराधात न करें। हम बच्चों को शिक्षा पालने से ही, मांकी पवित्र गोद से ही श्रारम्भ कर दें। यही प्रार-म्सिक शिक्षा का पवित्र मन्दिर है। इस शिक्षा में हम लड़की- लड़के का भेद भूल जायँ। सभी झानार्जन करने के लिए एक समान श्रिथकारी हैं। माता की गोद भूँठ का विस्तार करने के लिए नहीं है। यह पवित्र खज भूठ का भागडागार न होना चािहए। माता-पिता निस्संकोच होकर बच्चों से सदा सत्य बोलें। जो बात वे न जानते हों कहदें कि "नहीं जानते"। भूठ गढ़ कर बच्चों के दिल श्रीर दिमाग में भूठ के पौधे का समा-रीपन बड़ा दोष है। हर बच्चे को श्रिधकार होना चािहए कि चह जो चाहे पूछे, शङ्का करे, सन्देह करे, किसी बात के लिये ठीक हेतु माँगे। जिस बात को हम सिद्ध करके नहीं बतला सकते उसे व्यर्थ सत्य कह कर बच्चों के सिर में ट्रँसते रहना मानव-जाति का घोर श्रकत्वाण करना है।

हममें से प्रत्येक का कर्तव्य है कि भूठ से बचे, किसी की भी बात को विना जाँचे पड़ताले विना छान-बीन के सत्य न मान वैठें। शिला का श्रमिप्राय है मनुष्य-बुद्धि को विकसित करना, उसके मस्तिष्क को इतना बलवान श्रीर श्रन्वेषक बनाना कि वह श्रपनी खोज से संसार को लाम पहुँचा सके। प्राकृत सत्य का प्रकाश ही मनुष्य का ध्येय है, यही सनातन सत्य है। हम सब इस सत्य की खोज में लगें। क्योंकि

नोट—यह लेख २८ अप्रैल १९२८ के मतवाला में प्रत्यक्षवादी के नाम से छपा था।



श्रम्थ विश्वास की जनती मुद्रता है, इसका जनके भये है। श्रीर इसकी सन्तति धोर दुःख। १४० है।

प्रमान करें। कि विश्वास तो श्रन्धा होता ही है।
असे और विश्वास का श्रन्धा होना जगत्
प्रसिद्ध बात है। मैं कहुँगा, नहीं, करापि
नहीं—पेतिहासिक प्रमाणों से, श्रागमन
श्रीर निगमन तर्क से जाँचने के बाद जिस बात का विश्वास
किया जाता है, जो वात विज्ञान की प्रयोगशाला से ठीक
सिद्ध होकर हमारे विश्वास का हेतु होती है, जो प्रत्यन प्रमाण
की कसीटी पर कसने में वावन तोने पाव रत्ती उतरती है वह
विश्वास है, श्रेष श्रम्ध विश्वास ।

इस एक विभेदारमक भाव को लक्ष्य में रखकर सतर्क श्रीर सज्ञान प्राणी, स्त्री हो या पुरुष, पूछ सकता है कि 'फिर श्रम्ध विश्वास है क्या ?' इसा प्रश्न का उत्तर देना इस निवन्ध का मुख्य उद्देश्य है। श्रव में श्रगले पृष्ठों में श्रम्ध-विश्वास की (१०६) श्रपरोत्त स्पष्ट परिभाषा करने के बाद उदाहरणों के द्वारा पाठकों को वतलाऊँगा कि श्रन्ध विश्वास क्या है।

ं १—जीते जागंते प्रमाणों की उपेदाा करके या विना प्रमाण के ही किसी बात की सत्य मान लेना।

२—पक पहेली को दूसरी पहेली से बूमना। जैसे, डाक्टर वैरो से किसी ने पूछा—ईमान क्या है ?" Quod est fides ? उसने उत्तर दिया—जो तू नहीं देख सकता। Quod non vides ?

इस प्रकार के प्रश्लोत्तर उपनिषदीं में भी पाये जाते हैं। प्रायः साधु श्रौर ज्योतिषी इसी प्रकार के उत्तर दिया करते हैं। यही पहेली का पहली से बूभना है।

ई--कार्थ्य श्रीर कारण-सम्बन्ध की उपेत्ता करना।

ध—यह मान लेना कि कोई श्र-वस्तु पदार्थ (मन, विचार, इच्छा श्रीर शक्ति-इनमें से चारों या कोई एक) संसार का नियन्त्रण करता है या संसार को बनाता या बिगाइता है।

५—यह समभना कि विना वस्तु के मन की ही कल्पना से जगत् वन गया । यानी ग्रस्य से सब कुछ बना या प्रादुर्भूत हुआ।

६—यह समसना कि पुरुष, बल या फोर्स (force) के विना श्रीर उंससे मिन्न प्रकृति (वास्तविक जगत्) का श्रस्तित्व है। श्रथवा इसके विपरीत यह समस तेनां कि प्रकृति के

श्रक्तित्व विना या उससे भिन्न फोर्स, बन या पुरुष का श्राधिनत्व है।

७—अनेक प्रकार की अतौकिक-अनहोनी वातों को मान शोना। जाद, मन्त्र, चमत्कार, आदि अतौकिक (Supernatural) शिक्यों पर विश्वास करना।

इस परिभाषा में हम श्रीर भी वृद्धि कर सकते थे, लेकिन शोष सब का लमावेश इनमें हो जाता है, इसलिए इतना ही लिखना पर्याप्त समभा गया। याद रहे कि श्रन्ध-विश्वास के जनक श्रीर जननी भय श्रीर मूर्खता हैं श्रीर इनकी सन्तित धोर दुःख है। श्रन्ध-विश्वासियों को पद-पद पर घोर दुःख उठाने पड़ते हैं।

जब कोई की रोटी वनाते-बनाते किसी गीली लकड़ी से

'फुड़फुड़ की श्रावाज़ निकलती देखती श्रोर सुनती है, तो वह

कह उठती है—'थू, थू, कोई दुष्टा मेरा चवाव कर रही है।,
भोली-भालो क्ली नहीं समस सकती कि गीली लकड़ी से
गर्मी पहुँचने के कारण उसके भीतर का पानी निकल रहा
है। लकड़ी के फुड़फुड़ाने श्रोर चवाव करने में कोई कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार श्रीर भी श्रगणित मिथ्या
करपनायें होती हैं, जैसे तबे से रोटी फिसलने पर श्रतिथि के
श्राने की, श्रंग फड़कने पर भला या बुरा होने की श्रीर हथेली
खुजाने से धन मिलने की करपना वहुधा लोग किया करते
हैं। यही श्रन्ध विश्वास है।

पक श्रादमी घर से कहीं को चलता है श्रीर दरवाजे से निकलते ही उसे पक श्रादमो सामने की श्रोर से लकड़ी लिए नजर श्राता है, अथवा कोई काना मिल जाता है, तो वह सम-भता है कि शकुन वह त बुरा हुश्रा। जलसे भरा घड़ा लिए कोई मिल जाता है तो मान लेता है कि शकुन श्रच्छा हुश्रा। लोग यह नहीं समसते कि कोई शकुन या श्रपशकुन शकृति के प्रवाह को रोक नहीं सकता, न कोई नया कार्य्य या कारण प्रकृति में उत्पन्न कर सकता है श्रीर न इन शकुनों या घटनाश्रों में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध ही स्थापित कर सकता है। कितने ही नादान इन शकुनों के कारण श्रपनी यात्रा या दूसरे कार्मों को रोक देते हैं, श्रीर वहुधा हानि उठाते हैं।

वहुतरे श्रादमी नीलम, पन्ना, हीरा मूँगा लहसुनिया श्रादि रत्नों, घड़ियों, दिनों, महीनों श्रीर श्रनेक प्रकार के चिन्हों के साथ दुर्भाग्य श्रीर सीभाग्य का नाता जोड़ देते हैं। हजामत बनवाने, कपड़ा बदलने, नया गहना या कपड़ा पहनने, श्रीर श्राने-जाने के लिए कुछ लोग किसी-किसी दिन श्रीर न्तन्त्र को लाभदायक श्रीर किसी-किसी को हानिप्रद समभते हैं। यह नहीं सोचते कि दिन वेला श्रीर नत्त्रत्र श्रादिका हमारे खाने-पहनने श्रीर रहने-सहने के साथ कौन सा प्राष्ट्रत सम्बन्ध हो सकता है। मङ्गल का पहना हुआ नया कपड़ा क्यों जलदी फट जायगा श्रीर सोमचार का पहना हुआ क्यों बहुत दिन तक चलेगा श्रीनिवार को धारण किया हुआ श्रामूषण क्यों चोरो

चला जायगा १ इन दिनों या नदात्रों का चोरों के साथ कौन सा जरवन्हा है १ कब इनमें परस्पर इस प्रकार का कएट्राक्ट हुन्ना १ क्या चोरों श्रीर दिनों के साथ कएट्राक्ट होना सम्भव है १ परन्तु लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य के साथ कुछ न कुछ श्रन्थ विश्वास की मात्रा लगी हुई देखने में श्राही जाती है।

ईलाइयों में तेरह आदिमयों के लाथ वैठकर भोजन करना
अश्चिभ समभा जाता है। क्यों है खाने और तेरह को संख्या से
क्या सम्बन्ध है वहुल लोग शुक्रवार को अशुभ मानते हैं, परन्तु
मुसलमान इसे शुच्चि और पुनीत समभते हैं। इसी तरह यहदी
शनिवार को और ईसाई रिववार को पवित्र मानते हैं। किन्तु
हमें तो शुभाशुभ से शुक्क, शनि या रिव का कोई भी सांसारिक
सम्बन्ध नजर नहीं आता।

जात सी भारत में ऐसे श्रगणित स्त्री श्रीर पुरुष पाये जाते हैं जो सममते हैं कि सूर्यग्रहण श्रीर चन्द्रग्रहण से राजा श्रीर प्रजा को श्रसीम हानि पहुँचती है, दुर्भित होते हैं। पुन्छल तारा के निकलने से महामारी फैलती है। श्रावण की प्रतिपादा को वृंद पड़ने से चन्द्रमा के चारों श्रोर मण्डल पड़ने से वृष्ट श्रन्छी होती है। इसी तरह शुकास्त में यात्रा करना श्रीर केतुका उदय होना श्रनेक कामों के लिए श्रन्छा नहीं होता। ये लोग तारा टूटने से काँप उठते हैं। भूकम्प श्राने पर भय के मारे प्रार्थना में प्रवृत्त होजाते हैं। यह सब श्रन्थ

विश्वास के ही प्रमाण हैं। इस बात का किसी ने अबतक कारण न बतलाया कि क्यों किसीको हाथ में नमक देना बुरा है और खाँड़ देना बुरा नहीं; स्याही का गिरना शुभ और सिरके का गिरना क्यों अशुभ है !

यदि नाटक की रंगभूमि में पहला आदमी भिगा अर्थात् तिरद्धा देखनेवाला कहीं आगया तो पाश्चात्य देशों के लोग समक्ष लेते हैं कि नाटक में कृतकार्य्यता न होगी और दर्शक बहुत थोड़ी संख्या में आयेंगे। यह समक्षना बहुत दुस्तर है कि कैसे प्रथम आनेवाले दर्शक की तिरछी दृष्टि की विशिष्टता जनता के मनों को उनके घर बैठे बदल देती है जिससे बह नाटक देखने के लिए आने से कक जाते हैं, अथवा बहुत ही कम संख्या में आते हैं, दर्शकों के न आने का विचार कैसे सब से पहले भिगे को ही नाट्यशाला में भेज देता है। प्रत्यन में तो इन दोनों घटनाओं में कोई कार्य्य-कारण-सम्बन्ध नहीं देखा जाता।

इसी प्रकार इज़ारों ही शुभाशुभ वातें, शकुन, पूर्व सूचनाएँ श्रीर भविष्यत् वाणियाँ हैं जो बड़े-बड़े दूरदर्शी समक्तदारों श्रीर विद्वानों को दंग श्रीर हैरान कर देती हैं। इन सब वातों को चातुर्व्य कहें या वेह्नदगी या मुर्कता ?

क़र्जो, समाधियां, बृत्तों, पशु-पित्तयों की पूजा से, गरहे-तावीजों के वाँधने से, श्रच्छे लोगों के वाल, दाँत, नस चिता या जूनी की शरमसे कैसे कोई घटना हो या रुक सकती है ? स्वियार सिंघी, हत्था जोड़ी, वाघनख पहरने से कैसे बोमारियाँ साम जायँगी, दाम्पत्य प्रेम बढ़ेगा श्रीर बालक श्रभय हो जायँगे, यह कोई नहीं समक्षा सकता।

स्वयदों, भृतों, प्रेतों और चुड़ें लोंका आना, ब्रह्म और दूसरे राद्मसों का खताना किसी रोगो दिमागने ही आबिष्कृत किया होगा। इस आविष्कार के कारण अनेक उनमाद, मूर्च्छां, अपस्मार आदि के रोगी दवा से बिश्चत रहकर काड़ने-फूँकने वालों के हाथों अकाल ही काल के कवल होते रहते हैं।

श्राज हम अपने भाग्य की वक्रोक्ति से बड़े-वड़े विद्वानों को ख़ास कर धियोसोफिकेल सोसाइटीवार्लों को देखते हैं कि वे स्वयम इस अन्धकार के गढ़े में पड़कर जनताको भी मिट्टो में मिलाने श्रीर उसी अन्धकार के गढ़े में गिराने को तत्पर हो रहे हैं। पम० प० श्रीर वी० प० विद्या श्रीर वृद्धि की गठरी सर पर लादे हुए साधारण ज्ञान श्रीर तर्क को सलाम करके भूतों-प्रेतों का ही राग रात-दिन गाते रहते हैं श्रीर संवाद पत्रों के कालम के कालम इन्हीं वेसर-पैर की वातों से काले करने में श्रानन्द मानते हैं। ज्ञान पड़ता है कि जैसे शरावी शराव के पहले प्याले को हलक़ के नीचे उतारने के पहले सलाम करते हुए हमें यह सूचना देता है कि 'श्रक्क रुक़्सत मी शवद ई' श्रल वदाये होशस्त ।' उसी तरह हमारे श्रनेक पढ़े-लिखे मित्र थियोसोफिकेल सोसाईटी में दाखिल

होने से पहले श्रपने तर्क, ज्ञान श्रीर युद्धि को विदाई का सलाम करके श्रन्ध विश्वास में जीवन विताने का निश्चय कर लेते हैं।

पया श्राज इस वीसवीं शताब्दी के वैद्यानिक युग में सिवा चन्न मूर्जी के कोई भी सममदार, चतुर, पढ़ा-लिखा, जानकार श्रादमी विश्वास कर सकता है कि भूत, प्रेत, राज्ञस, जिन डाकिनी, शांकिनी, यिहाणी, पिशाचिनी, कूष्माएड, भैरव, भूमियाया सच्यद किसी रोगी को नीरोग करने की शक्ति सम्पन्न श्रास्तित्व रखते हैं शिक्ते-विज्ञी के वाल, उज्जू के पर, गधा-लोटन-की धृलि, घोर काले कींवे के नीड़ की लकड़ी श्रादि के सहुगुणों-पर सिवा विगड़े दिमाग़ों के कौन भरोसा कर सकता है ? गएडे-तावीजों, भूतों, प्रेतों का ढकोसला पुराने जमाने के श्रनध-विश्वासियों श्रीर श्रसभ्य जंगिलयों को ही ठीक जंब सकताथा, पढ़ा-लिखा जानकार श्रादमी कब इनके भरोसे श्रपना जीवन नष्ट कर सकता है ?

पहले जमाने में लोग मानलेते थे कि जनाईन की धूप जलाने से भृत भाग जाते हैं, वया (पत्ती) का नीड़ घर में लटकाने से चुड़ेल नहीं श्राती, घुग्यू (उल्लक) की श्राँखों को बत्ती में रख कड़प तेल का काजल बनाकर श्राँखों में लगाने से बच्चों पर टोना श्रसर नहीं करता श्रोर धरती के श्रन्दर का गड़ा हुश्रा धन दिखलाई देने लगता है। श्राजकल निज्ञान के

١

बकाश में पके हुए लोगों के शुद्ध पवित्र मस्तिष्क में ऐसी बातों का ब्रदेश कठिन होता जाता है। हमें चाहिए कि हम श्रशिदित प्रामीणों और अन्धकार में पड़ी हुई स्त्री जाति के दिलों को अपने इस अकारामय युग के ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करें और अन्ध विश्वास के विषाक सर्प को मार कर गाड़ दें।

इन्हीं भूतां, प्रेतों और चुड़ेल श्रादि की मिथ्या कल्पना श्रौर विश्वास ने जादूगरों की सृष्टि की, श्रोक्ता, भोंपा, सयाना प्रभृति छुटेरों को अवतरित किया। सेद सांई, अलफ सांई ह्व्चृ लाला, शेख सहो, नूना चमारी, कुर्प वाला, पीपल वाला, भृमिया, मलानी वगैरा मुखों के उपास्यदेव वने श्रौर मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र जाटू के ज्ञाता वननेवाले दुष्ट ठग इनके पुजारी हो येंठे । इन ठगॉने धीरे-धीरे वुड्ढॉ को जवान दनाने, नारण, मोइन, उचारन, वशीकरण के अनेक ढोंग रचे । कितने ही भोले-भाने लोग अलौकिक शक्ति प्राप्ति के निमित्त मुद्दीं का सेवन करने लगे। चितासस्म लगा कर निद्यों के किनारे रातों मन्त्र जपने में प्रवृत्त हो उठे। मैंने अपने वैयक्तिक अनुभव से देखा है कि यह सब भूठे ढकोतले हैं। लेकिन फिर देखता हूँ कि वहुतों का विश्वास है कि भृतों के हाथ में सारे उत्तम पदाथों के देने की शिक है। बुराइयाँ से वचनेवालां को जहाँ ईश्वर दूसरे लोक में पुरस्कृत करता है वहाँ भृत-पिशाच इसी लोक में सब कुछ दे देते हैं। इस श्रन्य विश्वास के कारण मनुष्य जाति ने जो

जो कर्ए उठाये, श्रीर जो कर उठा रही है उसकी कल्पना करना बहुत कठिन है। इसी श्रन्धविश्वास के प्रताए से गोस्वामी तुलसीदासजी की :माँति न जाने कितने वालक-वालिकाओं को उनके माता-पिता वाल्यकाल में ही घर से बाहर फेंक ग्राये, राज्यों ने न जाने कितने पुरुषों श्रीर स्त्रियों को जीता जला दिया या पानी में डुवाकर मार डाला, केवल -यही समभक्तर कि यह जादूगर श्रीर डाइन हैं, इनसे मनुष्य जाति को श्रसीम हानि पहुँचती है। इसी विचार से श्रनेक मनुष्यों को कारागार-वास कराया गया श्रीर विविध प्रकार की चन्त्रणार्ये दी गई'। इन सवका दायित्व श्रन्ध विश्वास पर ही है। किसी देश का भी इतिहास हम देखें ऐसी घटनाओं-से ज़ाली न मिलेगा। मुलिलम और ईसाई धर्म के इतिहास भी इस प्रकार की घटनायों से भरे पड़े हैं। ईसाइयों के नये श्रीर पुराने दोनों श्रहदनामें हमारे इस कथन के साज्ञी हैं। मिस्नकी गाथा, मुला के काम श्रीर मसीह का मनुष्य पर से भूतों को उतार कर ग्रूकरों में प्रविष्ट करना आदि इस पुस्तकों म पढ़ सकते हैं।

क्या यह स्पष्ट नहीं है कि ये सब भयानक कुकृतियाँ श्रम्ध-विश्वास के कारण हुई, मनुष्य जाति की इन सारी वेदनाश्रों श्रोर दुःखों की जड़ श्रज्ञान श्रोर मुर्खता थी, श्रोर है। डाइन श्रीर जादूगर कभी भी न थे श्रोर न श्रव हैं। मनुष्य

٠:

क्दाचित् पिशाचों से सौदा नहीं कर सकता। हमारे पूर्वज इन वातों में भारी भूल के शिकार थे।

इमारे पूर्वज श्रौर वहुतेरे मुर्ख श्राज भी चमत्कारों मोजज़ों श्रौर करामातों अर्थात् श्रकोिकक, श्रनहोनी शक्तियों पर लह थे श्रौर हैं। ऐसे लोगों को सदा ही अनहोनी वात की तलाश रहती है। यही कारण है कि तमाम धर्म प्रनथ अप्राकृत वातों श्रीर कल्पित घटनाश्रों से भरे पड़े हैं। इनकी दृष्टि में संसार जादूरय है। मृतात्माओं को नचाना वाजीगरों के वाएँ हाथ का लाधारण खेल है। श्राजकल भी लोग सुधरे हुए रूप में मृत श्रात्माश्रों के बुलाने श्रीर उनसे दात-चीत करने का प्रपश्च रचकर केवल भोली-भाली जनता की ही आँखों में धूल नहीं डालते, चितक वहुधा पढ़े-िलखे लोगों को भी मन्त्रपुरध कर लेते हैं। क्योंकि इस छलपूर्ण जादूगरी का ढोंग रचनेवाले लयम् एढ़े-लिखे दोते हैं, वाक्पटु श्रौर सुलेखक होने के साथ ही साथ इनमें चालवाजी का कौराल पिछुले समय के लोगी की त्रऐका वहुत .ज्यादः होता है। तथापि सचेष्ट, तर्कशील, सत्यान्वेपी लोग जानते हैं कि इनकी दिखलाई हुई घटनाओं के पोछे कोई नैसर्गिक कारण नहीं होता श्रौर न लोग यही मानते हैं कि किसी भी प्रेतसिद्ध या यह्मणीसिद्ध ने जो चाहा हो वही तत्काल हो गया हो। पैशाची विद्या का ज्ञाता, जिसने श्रपने को पिशाचों के हाथ वेच दिया हो, जहाँ कुछ इधर-उधर की इरकत करता या कुछ अर्थहीन शब्द चुड्चुड़ाता है कि घटना

भट्रपट प्रघटित हो जाती है। श्रन्विवश्वासी गोस्वामो तुलसो-दासजी रामाण्या में लिख मारते हैं किः—

> श्रनमिल श्रज्ञर श्ररथ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।

संसार कार्य्य-कारण-सम्बन्ध को भूल कर छल, घोका, चालवाज़ी, श्रीर चमत्कारों का इस प्रकार गुलाम बन गया है कि लोग भूठ बोलने से तिक भी नहीं डरते। इतना भूठ का प्रवाप लोगों में फैल गया है कि वे मिष्ट्या वातों को श्रापनी श्राँखों देखी घटना कहकर भोले-भाले मनुष्यों को चहकाने लगते हैं। श्राज भी ऐसे महापुरुषां का घाटा नहीं है जो सुनी-सुनाई गणों को श्रपनी श्राँख देखी होने को सालो देने में नहीं हिचकते।

चमत्कार क्या है ? इसका उत्तर सिवा इसके और कुछ नहीं हो सकता कि 'चमत्कार या करामात या मोजज़ा वह है जिसका किसी भी प्राकृतिक (सची) वात से कुछ मी सम्बन्ध न हो, तर्क, ज्ञान, बुद्धि और कार्य्य-कारण-सम्बन्ध का जिसमें दख़ल न हो और प्रकृतिका बनावटी स्वामो जो जी चाहे कर कर डाले। खाजा मुईनुहोन चिश्ती दीवार पर सवार होकर कहने लगे 'दीवार चल' और दीवार चल पड़ी, कमालख़ाँ हाथी पर बैठे-बैठे हाथी सहित कुएँ में समा गये और चैन से रहने लगे, अमुक महाशय ने चाँद की ओर उँगली करके

हिलाई और चाँद फरकर दो दुकड़े हो गया, श्रमुक पीर साहब पा सन्त महाराज ने दातोन करके फाड़ी श्रीर ज़मीन में गाड़ दी, उसी से दड़ा भारी छायाशद नीम का पेड़ खड़ा हो गया। श्रमुक महाशय ने कच्चे को पेट में ही सारी विद्या पढ़ा दी, श्रमुक स्त्री की नाक से ही वेटा पैदा हो गया, श्रमुक हजरत का कलेजा फाड़ कर फरिश्तों ने दिल निकाल लिया श्रीर पानी से धोकर जहाँ का तहाँ रख दिया श्रीर वे तुरन्त चल निकले। इसी ठरह के लाखों गपोड़े प्राचीन धर्म पुस्तकों में भरे पड़े हैं। श्राज कल भी बहुत से नादान इन वातों को प्रेम से सुनते हैं,

सार यह है कि उपर्युक्त 'सरजरी' की तरह जो कोई वो श्रीर दो पाँच करके दिखा दे तो वह पाटीगणित का चमत्कार है, यदि कोई ऐसा वृत्त वना दे जिसका व्यास परिधि के बराबर हो तो वह रेखा गणित का चमत्कार है, श्रगर कोई विना श्रवलम्ब के दण्ड यन्त्र को चला दे तो वह यन्त्र-शास्त्र का चमत्कार है। इसी तरह गति-विद्यान का चमत्कार होगा यदि कोई एक पत्थर श्राकाश की श्रोर ऐसा फेंके कि उसकी गति पहले पल में ५ फोट, दूसरे पल में १० फीट श्रीर तीसरे पल में १० फीट हो। रसायन शास्त्र का चमत्कार है, "पारस परिस कुवातु सहाई," श्राँखों में एक ख़ास श्रंजन के लगाते ही सारे संसार के घरती में गड़े खजानों का दीख जाना श्रादि प्रसिद्ध गणें चमत्कार, के हो नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हा श्रादि प्रसिद्ध गणें चमत्कार, के हो नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हा

सव वातों का विश्वास मनुष्य को करना चाहिए। जिस धर्मा में जितनी ज्यादः ऐसी गणों की भरमार हो, वह धर्मा उतना ही श्रधिक सच्चा श्रीर उच्च कद्मा का समक्षा जाना चाहिए। यह सब खुराफ़ात सिवा श्रन्ध-विश्वास के श्रीर क्या है?

, सबसे बड़ी वात जो प्रत्येक सचे, घार्मिक श्रौर विश्वास वाले पुरुष में होनी चाहिए, वह शायद यह है कि वह अपनी प्रज्ञा को नमस्कार करके दूर हट जाय; प्रकृति के नियमों के ज्ञान को अज्ञान कहकर और मुर्खता मानकर आराम से बैठा रहे। लेकिन इम क्या करें, हमारे वर्तमान युग का ज्ञान इमें कुछ श्रीर ही वार्ते वता रहा है। हम प्राकृतिक नियमों की श्रटल समभने लगे हें, नैसर्गिक नियमों में सास्य श्रीर साम-. अस्य देखते हैं। इमारा विश्वास हो गया है श्रौर प्रत्यन प्रमाण के श्राधार पर हुश्रा है, कि वस्तुश्रों में कार्य्य श्रीर कारण। सम्बन्ध उनके स्वभाव के श्रवुतार होते हैं। वस्तु के स्वभाव को कोई बदल नहीं सकता। समान दशाश्रों में ठोक एक समान फल हमें सर्वत्र देखने में त्राते हैं। जहाँ कोई अन्तर मिला कि इम उसका नवीन कारण सोचने बैठ जाते हैं। इम जानते हैं कि जैसी वस्तु होती है, उससे वैसे ही दूसरे श्राकार-प्रकार की वस्तु वन सकती है। यह नहीं हो सकता कि 'कुछ नहीं' से सारा संसार वन जाय। श्रव्यक्त भाव से कोई वस्तु व्यक नहीं होती। प्रकृति में कोई कार्य्य निष्फल नहीं जाता. श्रीर प्रत्येक कार्य्य का कारण होता है । सुतराम्, कोई भी समभदार

ŧ

प्रादमी चमत्कारों का विश्वास नहीं कर सकता, श्रनहोनी वातों को लत्य नहीं मान सकता। चमत्कार न कभी हुए श्रीर न हो सकते हैं, इसकिए कभी होंगे भी नहीं। मूर्खता के धरातल पर चमत्कारों श्रीर मोजज़ों के वृक्त के वीज जड़ पकड़ते हैं श्रीर ज्ञान का प्रकाश लगते ही सुखकर नष्ट हो जाते हैं।

पक श्रोर तो हम भूतों, प्रेतों राज्ञसों श्रोर पिशाचों की खृष्टि श्रासुरी शक्ति के नाम से किये वैठे हैं, दूसरी श्रोर दैवी शिक्त के नाम से देवताश्रों श्रीर फरिश्तों का श्राविष्कार करते हैं।

इन देवता ख़ों, फिरिश्तों ख़ौर मुश्रक्क कों के भी जप होते हैं, इनके नामसे भी गएंडे-तावीज़ वनाये श्लौर दिये जाते हैं। काला जपने, उपवास करने से; एक समय खाने या किसी दिन किसी विशेष पदार्थ के खाने या न खाने से यह देवता प्रसन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत श्लाचरण से वह श्लगर श्लप्रसन्न नहीं होते तो उदासीन श्लवश्य रहते हैं। कोई देवता गुड़ के पुए से राजी होता है, कोई चने की दाल से, कोई जौकी रोटी से, कोई तेल में पके हुए उड़द के वड़ों से, कोई मद्य से श्लौर मांस से। कहाँ तक गिनाया जाय, इन देवता श्लों की लीलाश्लों, इनके खान-पान के पदार्थों, इनके प्रसन्द के रंगों श्लौर कपड़ों, तथा इनकी श्लाकुल कीड़ा-भूमियों के वर्णन से श्लगित पुस्तकें भरी पड़ी हैं। श्लाप था बुद्ध सिद्ध करने जायँ तो किसी मौलवो साहव से पृद्धिये कि क्या करना लाजिम है, श्रापको दुर्गा या यक्तणी सिद्ध करनी है तो श्रोभाजी कीं शागिदीं करें, यदि 'ऐवराका डेवरा' यन्त्र भरना हो तो रोमन कैथोलिक, पाद्री के शिष्य वर्ने। श्रगणित मुश्रकल श्रीर श्रसीम देव-देवी की भरमार है, प्रत्येक के ऊपर एक एक पुस्तक या निवन्ध श्रापको मिलेगा।

श्रयाना बद्या जो कहीं चारपाई पर सोते-सोते या खेलते-खेलते एकाएक हँस या रो पड़ा तो जान लिया जाता है कि उसकी बौरही (पगली) देवी खिला रही है। कान में दर्द होते ही श्राटे का कान बना कर बाबा सालार हांस को चढ़ाने की व्यवस्था की जाती है। मिस्जदों में ताक भरने, मजारों पर चिरागी, फूलमाला चढ़ाने, मलीदा, शीरा-पूरी मिन्द्रों में भेंट करने से यह श्रव्छे देवता राजी हो जाते हैं। मेरे पास न इतना समय है, न इतना इस निवन्ध में स्थान, न इतना साहस कि कोटि-कोटि देव-देवियों की पूरी दास्तान पाठकों को भेंट करूँ। 'धोड़िंह मा जनहाँह स्याने।'

कभी-कभी इन भूठे श्रीर निष्प्रयोजन दास्तानों से जी की यड़ा दुःख श्रीर घृणा होती है। देखिये तो 'भैरव' वावा का गएडा पहनने से भैरव वावा हरदम वच्चों की रचा करते हैं। इसी प्रकार श्रीर श्रनेक वावा, दादी श्रीर माताएँ हैं जिनका काम न केवल वच्चों की ही चौकीदारी करना है किन्तु श्रपने हर एक गएडाधारी की रज्ञा करना उनका एकमात्र काम इस दुनिया में है। कौन कह सकता है कि श्रगणित लोगों की जो

١

श्रमणित स्थानो में रहते हैं, जुदा-जुदा दिशाश्रों में चलते फिरते श्रीर काम करते हैं, उनके साथ एक 'भैरव बाबा' सदा साथ फिरता श्रीर चौकीदारी करता होगा।

इन देवतात्रों के पुजकड़ भक्तों श्रीर कथकड़ पुजारियों का कहना है कि वह श्रपने भक्तों, श्रौर गएडाधारियों की छाती पर गड़े तीर और तलवार को पानी कर डालता है, इन पर वन्द्क या तोप का बार हो तो गोला-गोली वीच में ही ठएडे होकर गिर जाते हैं। ये देवता लोग अपने प्रेमियों की हज़ारी तरह से रक्ता करते हैं। इन देवों के शुद्ध हृदय विश्वासी भक्त हलाहल विप भी पी लें तो कुछ असर न हो। ये पवित्र आत्माओं के मनों का संशय दूर करते हैं, उनके मनों में श्रद्धा श्रीर भक्ति का वीज वो देते हैं, साधुश्रों को स्त्रियों के फन्दों से बचाते हैं। इन देवताश्रों के नाम पर जो व्रत, उपवास, पूजा, श्रर्चा श्रीरं . प्रार्थना करता है, उसे स्वर्ग में बड़ी-बड़ी हवेलियाँ, सुन्दर-सुन्दर हरे-भरे वाग्-वगीचे, घन-धान्य से परिपूर्ण भागडार मिलते हैं। इनकें भक्तों को वासनाएँ नहीं सता सकतीं, न इन पर श्रासुरिक कोप का ही कोई प्रभाव पड़ सकता है। इन देव-ताश्रों के भक्तों की रत्ना-नर हो या नारी, वालक हो, या वृद्ध साधु हो या साध्वी सबकी रत्ता—स्वतः होती रहता है।

फिर इन देव-देवियों की जातियाँ है । कोई नर है, कोई नारी, कोई पराड, कोई बाल ब्रह्मचारी, कोई सद्गुस्थ, कोई

जात दया की मूर्ति; कोई कोंप का श्रवतार है। कोई तो े ऐसा है, जो संसार में कभी प्रकट ही नहीं हुआ। किसीके दो हाथ, दो पैर हैं श्रीर बहुत से श्रनेक हाथ-पैर वाले हैं। बहुतों के केवल सर ही है, धड़ नहीं, किसी-किसी के केवल धड़ है सर नहीं। महादेव वावा के गणों की चित्रावली देखनी हो तो तुलसीकृत रामायण ही एक बार पढ़ लीजिये। इनमें कोई मीलों चौड़े पेटवाला मिलेगा, तो कोई सूत के तार से भी पतला-दुवला, किसीके सर में आँख ही नहीं, श्रीर किसीका सारा शरीर श्राँखों से ही भरा पड़ा है। किसी के एक, किसी के दो, किसी के तीन, किसी के ४-५-६-७- है श्रीर १० तक सर हैं, तो किसी के सिरों की गिनती ही करना कठिन है। किसी-किसी देव महाशय की मूंछ ११२ मील लम्बी है। श्रगर श्रमरीका की सबसे श्रधिक तेज चलनेवाली रेल गाड़ी पर सवार दोकर इनकी मूंछ के सिरे की खोज करने निकलें, तो १४ योजन अर्थात् ११२ मील चलने के लिये ६० मील प्रति घएटे के हिसाब से भी क़रीव सवा घएटा लग जाय। इतनी सम्बी डाढ़ी-मूं इ वालों के रहने के घर कैसे होंगे । छोटे-मोटे श्रसंख्य जीव इनकी डाढ़ी श्रीर मूंब्रों में फँसकर मर जाते होंगे, बहुतेरे पत्नी इनमें श्रपने घोंसले वना लेते - होंगे । श्रनेक सरवालों को सोने में, सिर दर्द श्रीर सदी लग जाने में कितना कुछ श्रीर कितनी श्रसुविधा होती होगी, इसको पाठक श्राप ही सोच लें। श्रहतु, इन वार्ती को छोड़ देने पर भी,

यह समक्ष में नहीं आता कि यह लोगों के मनों का हाल कैसे जान लेते हैं ! ये क्या हैं, कैसे हैं, कैसे स्थानान्तर में दौड़े-दौड़े फिरते हैं ! इन प्रश्नों का भी ऐसा उत्तर इनके भक्त, पएडे और पुजारी नहीं देते, जिससे किसीकी तर्कशील और सत्यान्वे-पिणी बुद्धि को सन्तीष हो।

लोग कहते हैं कि फरिश्तों और देवताओं का राजा श्रहाह मियां या परमेश्वर है और दुरात्माओं का राजा शैतान या श्रसराध्यत । फिर यह भी कहते हैं कि सबका मालिक सबका वनानेवाला वही एक परम पिता परमातमा या त्रल्लाह ही है। तब पया देवासर-संग्राम स्वामी और सेवक का युद्ध है, या पिता-पुत्र का विग्रह ? जरा कुरान, पुरान श्रीर इंडील को उनकी टोका तफसीरों के साथ पढ़ें श्रीर प्रत्येक गाथा को भ्यान से अभ्ययन और मनन करें तो अक्क चकर में पड़ जायगो। कहीं-कहीं तो यह समऋना दुस्तर हो नहीं, बिलक श्रसम्भव भी हो जाता है कि ख़ुदा बड़ा है या शैतान ? मनुष्यों का सचा हितैयो श्रव्लाह है या हज्रते शैता जुलसुश्रव्जम् ? मेरे भाई यह न समर्फे कि में हाशिये चढ़ा रहा हूँ या एतराजी की ही ज़ातिर पतराज जड़ रहा हूँ, विक हकीकत यही है जो मैं कह रहा हूँ। दर्यांकि खुदाई पुस्तकों या श्रासमानी कितावीं के पड़ने से मालूम होता है कि श्रल्लाह मियां ने निश्चय कर तिया था कि श्रादम श्रोर उसकी श्रोताद सदा सर्वदा तएठ, नाँवार जाहिल श्रीर नातजुर्वेकार बनी रहे । तभी तो उसने बुद्धि का बृद्ध उत्पन्न कर देने पर भी श्रादम को उस बृद्ध का फल खाने का कठिन निषेध कर दिया। लेकिन शैतान महाराज ने श्रादम को वही फत्त खिलाया, जिससे वह बुद्धिमान् हो गया श्रौर फल यह हुश्रा कि श्राज उसकी सन्तान संसार में विज्ञान का श्राश्चर्य दिखला रही है। उसके वैज्ञानिक कौशल को उन्नति ने धीरे-धीरे जल, वायु, पृथ्वी, श्राकाश श्रीर श्रम्नि सवको अपना वशवत्ती वना रखा है। श्रल्लाहिमयां के श्राहा-कारी फरिश्ते घोर मुढ़ता श्रौर श्रन्धकार में ही पड़े हैं। जो कहीं फरिश्ते भी बुद्धि-बृज्ञ का पवित्र फल चखकर शैतान के शागिर्द वन जाते तो श्राज सङ्क, नहर, डाक्ख़ाना, तार श्रीर रेडिश्रो का संवन्ध सहज ही हम लोगों के साथ जुड़ सकता था, लेकिन फरिश्तों, देवताश्रों या वहिश्तवालों में मनुष्यों की सी भी वृद्धि नहीं है। तब हम फिर पूछते हैं कि श्रल्लाह वड़ा या शैतान हिम मनुष्य ( श्रादम की सन्तति, श्रादमी ) ईश्वर के इतज्ञ हों या शैतान के ? मैं यदि अलौकिक शक्ति का मानने वाला होता तो निश्चय ही अल्लाह मियां का नाम भूल कर भी न तेता और शैतान के सुयश के गीत रात-दिन गाता श्रीर उसीकी नेकी का डंका पीटता।

हममें से बहुत से नर-नारियों का विश्वास है कि भजन, पूजन, व्रत, उपवास आदि से वे ईश्वर को और उसकी भक्त सेना देवताओं को प्रसन्न रखें तो उनसे हमें सब जगह, सब समय, सब तरह की सहायता मिले और हम बुराइयों नो भी यस जायँ। लेकिन ये वैचारे तर्कशास्त्रक नहीं या तक से काम लेना पसन्द ही नहीं करते, इसीलिए यह समक्ष भी नहीं सकते कि नुराइयों को वतानेवाला इनकी किताबों की ही जाची के श्रद्धलार शौतान है, ईश्वर ्सवको सच वोलना सिखाता है, लेकिन फिर भी शैतान की बदौलत भूठ बोलने वालों की ही तादाद दुनियां में बहुत ज्यादा है। इसी प्रकार छोर भी सैकड़ों वातें हैं जिनमें हजरते खुदा विवश, लाचार श्रीर परीशान फिरते हैं, कोई इनकी परवा तक नहीं करता। ईश्वर के वन्दे रात-दिन रोटी मांगते, रोग-रहित होने के लिए प्रार्थना करते हैं। इवन, पूजा पाठ, रोजे श्रीर निमाज में सर खपाते रहते हैं, परन्तु संसार में भूखों की संख्या दिन-दिन वढ़ती ही जाती है, नई-नई वोमारियाँ श्रीर महामारियाँ घेरती ही चली त्रा रही है, त्रीर वायु शुद्ध होने के वदले गन्दी ही होती चलो जाती हैं। लोग ख़ुदा ख़ुदा पुकारते रह जाते हैं श्रीर शैतान वरावर श्रपना काम वनाता श्रीर ख़ुदा को हर कदम पर शिकश्तफाश देता चला जाता है। श्रगर मनुष्य कृतम वनता ग्रौर शैतान का ग्रहसान मानता श्रौर उसीके पास श्रपनी दरख़ास्तें ले जाता तो शायद उसका ज्यादा भला द्योता । मगर हमें तो इस नेक मिजाज इन्साफ़ दोस्त शैतान की भी वृद्वाश का कोई ठीक पता नहीं चलता, वरना में श्रपनी द्रखास्तें उसीको भेजता। करीने से ऐसा मालूम होता है . कि शैतान की नजदीकी श्रगर किसीको दासिल है तो वह

सौभाग्यवती व्रितानियाको है। यंह लीला है श्रज्ञान तिमिराच्छा-दित श्रन्धविश्वासी संसार की जिसे श्रपने कानों का विश्वास श्राँखों से लाखों गुणा श्रधिक है।

हमारे पूर्वज भी श्रन्ध विश्वास के ही गर्त में पड़े-पड़े चले गये। यदि इनमें विज्ञानवेत्ता लोग श्रिधिक होते तो समस्रते कि प्रकृति पया है श्रीर प्रकृति के नियमों को भी कुछ जानते, सुनते, देखते श्रोर कार्य-कारण-सम्बन्ध का पता लगाते। भूतों, प्रेतों, देवतात्रों, मुत्रकलों श्रीर फरिश्तों पर ही सारे संसार का दारमदार न रखते। इनके पास तर्कशील बुद्धि होती तो यह समभ लेते कि यदि देवता और फरिश्ते हों भी तो उनकी बुद्धि हम मनुष्यों से कहीं कम है, श्रीर ये पशुश्रों से श्रधिक महत्व की चीज़ें नहीं हैं। यदि उनमें मनुष्यों से श्रिधिक शक्ति, ज्ञान या कीशल होता तो इतने लम्बे समय के बीत जाने पर ये कम से कम एक छोटा सा डाकख़ाना ज़कर ही खोल देते, एक तार घर भी उनकी कोशिश से स्थापित हो गया होता । इस दुनिया के लोग रात-दिन उंधर का संवाद पाने को व्यय और अपना संवाद भेजने को चिन्तित रहते हैं ग्रोर प्रयत भी करते हैं परन्तु कोई भी ठीक उत्तर नहीं मिलता। त्रगर हमारे देवाराधन करनेवाले लोग या शैतान से भयभीत रहनेवाले भाई ठीक पता-निशान बतलांते तो हर्मी लोग एक फोर्थक्काश डिस्ट्रिक्ट रोड तैयार कर लेते: फिर धीरे-धीरे उसकी उन्नति होती रहती। लेकिन वह तो लारा श्रन्ध-विश्वास है, इसमें कहीं भी सचाई की भतक नजर नहीं श्राती।

जिनके सर में समक है, जिनके मस्तिष्क में तर्क का प्रकाश है, जो लोग सचाई की खोज करना श्रपना कर्तव्य समभते हैं, जो प्रमाणों का मोल-तोल जानते हैं, वे कदावित् भी चमत्कारों; पर्चो ब्रादि ब्रलौकिक वातों पर विश्वास नहीं कर सकते, न वे शुभ-श्रशुभ दिन की परवा श्रीर शकुन-श्रश-कुन की चिन्ता ही कर सकते हैं। सममदार हृद्य जानता है कि सब वार येला एक समान हैं, तीन श्रौर चार या वारह श्रीर तेरह में से एक क्रूर श्रीर दूसरा सीम्य नहीं हो सकता। कैसा हीरा, मोती या काँच के टुकड़े का पहनना मनुष्य पर श्रसर करता है वैसा ही नीलम श्रीर लहसुनिया भी। टेढ़ी माँग निकाजने से न लड़की को पति टेढ़ा या साल, श्वसुर लड़ाके मिलते हैं श्रीर न टेड़ी टोपी लगाने से पुरुष के वैवाहिक-सुल में अन्तर एड़ सकता है। वुद्धिमान जानता है कि पूर्णिमा की रात को उल्लू इस वास्ते हूं । हूं !! नहीं करता कि कोई प्रतिष्ठित पुरुप मर जाय या वह मरनेवाला है, जिसकी प्राक् स्चना करने का कर्तव्य उल्लू के सिर पड़ा है। इमारा विवेक यतलाता है कि चाहे संसार मनुष्यों से ज़ाली हो जाय; चाहे उसके निवासी नर-नारी सद्गुणी हो जायँ धृम्रकेतु उदय होगा ही, ब्रह्ण पड़ें हीगे, तारे ट्रटते रहेंगे, उल्लूका वोलना धन्द्र न होगा श्रीर प्रकृति के सारे काम ज्यों के त्यों होते रहेंगे। इनको किसी का मरना या जीना रोक नहीं सकता, न यह किसी के मरने जीने में वाघक हो सकते हैं।

विकारहीन मस्तक भूत, प्रेत, चुड़ैल, शैतान श्रीर देवताश्रों की हस्तीका इनकारी है श्रीर श्रलौकिक शक्तिसम्पन्न जन्तुश्रों की कथाश्रों को गप्प सममता है। उसे मालुम है कि भूमिया, परा, छुनावा, देव, जिन, डाकिनी, शाकिनी, यिन्छि। श्रीर मुश्रक्तिल सभी रोगी मस्तकों की कल्पना, भयभीत श्रज्ञानियों का प्याल ही ख्याल है श्रीर कुछ नहीं। चुद्धिमान जानता है कि ये वार्ते कभी भी विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं सिद्ध हुई, श्रतः इनसे वचना श्रीर बचाना मेरा धर्म है।

देखिये, प्राचीन धर्म प्रधान युग में धरती चपटी श्रीर चांकोर या कुम्हार के चाक के समान गोल थी, इसके सिरकी श्रोर श्रर्थात् ऊपर को श्राकाश में सबसे ऊँचा स्थान ईश्वर का था, इसके नीचे देवता निवास करते थे, देवताश्रों के नीचे कमशाः नीचे की श्रोर श्रीर श्रीर जाति के लोग रहते थे, क्योंकि श्राकाश सात भागों में विभक्त था। मुसलमानों को विश्वास था कि खुदा श्रर्श-मुश्रत्ता पर, मुहम्मद कुर्सी पर; मसीह चौथे श्रासमान पर श्रपनी श्रपनी हचेलियों में रहते थे। स्वर्ग का दरवाज़ा वन्द रहता था। मुहम्मद साहव के पथारने पर स्वर्ग के दारोगा रिजवान ने उसका ताला खोलकर हजूर को सारे विहश्त की सेर कराई। मौजवी शहीद ने श्रपने

मौल्द में एक जगह लिखा है—'यों कहके वहीं खोल दिया फ़ुफ्ले दरे चख़ें कुहन'। अर्थात् मुस्तफा का स्वागत करते हुए पुराने आकाश का ताला खोल दिया, जैसे सुपिरिएटेएडेएट के आने पर जेलर जेल का ताला खोल देता है। हिन्दू-शास्त्र कहते हैं कि ऊपर सात्विक लोग जाते हैं, बीच में राजस बस्ते हैं और तामसी नीचे पड़े रहते हैं। याद रहे कि प्राचीन काल में जमीन की भी सात तहें थीं और एक एक तह में एकएक लोक बसता था। इन लोकों में कई प्रकार के नरक थे, यहाँ ही किसी एक लोक में पितृगण रहते थे, लेकिन आजकल आन के प्रकाश ने सारे तिलस्मात का सत्यानाश कर डाला, विद्यान के जादू ने सारी वाजीगरी का भेद खोलकर धर दिया।

श्रव ऋषिराज के कमएडल में डाली हुई महली इतनी मोटी ताजी नहीं हो सकती कि सारे संसार के पानी को घेर ले श्रोर न इतने जोर का त्फान ही श्रा सकता है कि हजरत ज़ुह को ह्वती हुई दुनिया को वचाने के लिए वीज की भाँति एक एक जोड़ा सारे संसार के प्राणियों का नावपर धरकर सुरित्तत रखना पड़े। फ्याँकि श्रव लोग समभ गये हैं कि महली के मांटेपन की हह है श्रीर जो त्फान संसार को घेर लेगा वह एक नावको वाकी नहीं छोड़ सकता। इन दन्तकथाश्रों श्रीर वे-सिरपैर के गपोड़ों के दिन दूर गये श्रीर वहुत दूर गये। यदि छोई इस छान के युग में भी इन वातों पर विश्वास करता है तो में समसता हैं कि उसे किसी श्रव्हे सुप्रवन्धयुक्त पागल खाने की कोठरी में श्राराम करने की वहुत ज़रूरत है।

धार्मिक युग में प्रोहित-मएडल स्वर्ग श्रीर नरक का सारा हाल जानता था, गृहस्थों के दिये हुए श्रत्र-वस्त्र वगैरह सारी चीज़ों को उनके पूर्व पुरुषों के पास वड़ी चतुराई; सावधानी श्रीर ईमानदारी के साथ पहुँचा देता था। श्राज भी ऐसे पुरोहित हैं जो सारा सामान दाता के माता पिता के पास ठीक ठीक पहुँचा देने का दम भरते हैं ग्रीर उनसे भी श्रधिक बुद्धि-शाली प्रतिभावान वह लोग हैं जो इस एजेन्सी के द्वारा लगा-तार थोड़ा-बहुत सामान रवाना किया करते हैं। परन्तु श्रव दिल में पजेएट समभता है कि यह मेरी घोखेवाज़ा है जो वहुत दिन न चल सकेगी, क्योंकि इनकी श्रामदनी पहले की श्रपेला श्रव रुपये में श्राने भर भी नहीं रह गई। पारसल भेजने वाले महाशय भी समक्षेत लगे हैं कि हमारी पारसर्ले बीच में ही मारी जाती हैं, श्रीर लोग सोलहों श्राने हजम कर जाते हैं। हजारी वर्ष हो चुके, श्राजतक एक की भी रसीद नहीं मिली। विश्वास की भी कोई सीमा है ? पर हो क्या, वेचारे लकीर के फ़कीर, मूर्खा स्त्रियों के पिंजड़े की विड़ियाँ जानवूक कर नाक छिदाते हैं श्रोर कौड़ी पहनकर नाचते हैं। समय श्रा रहा है कि भारत में इन नाचनेवाले वन्दरों श्रीर मदारियों की कथा केवल पुस्तकों में रह जायगी। देखने को लोग तरसंगे और कहेंगे-'सुनी इन्दर की सभा हमने कहानी में हैं।'

पादडी खाहव फरमाते हैं कि शैतान मनुष्यों को लालच मं डालता है. उसने मसीह को भी लालच में डालना चाहा था । परन्तु यही पाद्री महाशय स्वयम् लार्डस् प्रेश्नर श्रर्थात् प्रभु का प्रार्थना में कहते हैं, "भगवन् ! हमें लालच में न डाल (Lead us not into temptations)। जब खुदा भी मनुष्य को लालच में डालता है श्रीर शैतान भी, तो खुदा श्रीर शैतान में क्या अन्तर रहा ? ये दो चीज़ें कैसी हुई ? यह पहेली वूसनी कठिन है। जान पड़ता है कि समय समय पर लोगों के सिर में जो भी श्रायँ-वायँ-सायँ समाया, वही उन्होंने लिख मारा श्रीर उनके श्रनुयायियों ने सब कुछ श्रांब वन्द करके मान लिया। किसी ने जाँच-पहताल का कप्ट उठाना उचित नहीं समभा। हमें तत्वार्थ सूत्र के कई श्रध्यायों में श्रीर श्रन्य श्रन्यों में भी श्रनेक गपोड़े मिलते हैं; जिन्हें जैन स्नाता यड़े मजे में हलुए की तरह हलक के नीचे उतार जाते हैं। इम इस निवन्ध को पुस्तक वनाना नहीं चाहते, नहीं तो सभी धम्मों की गपोड़ कथाश्रों का खासा दिग्दर्शन कराना कोई वड़ी वात न थी। कहना यह है कि इस प्रकार की प्रमाणहीन विना जाँची पड़ताली वातों को सत्य मान लेना ही श्रन्ध विश्वास है। सच तो यह है कि न कोई श्रच्छी बुरी श्रव्यक्त श्रात्माएँ हैं, न कोई संसार का स्नष्टा श्रीर नियन्ता है न कोई मनुष्य का श्रव्यक म्रामक है; न कहीं इतिहास में ऐसी बातों का पता लगता है और न तर्क विम्नान से उनकी पुष्टि होती हैं। ये निर्मूल गाथाएँ इमारी समक्ष, हमारे ज्ञान, विचार श्रौर बुद्धि के वाहरकी हैं श्रीर बुद्धिहीनों को ही सोहती हैं।

सज्ञान मनुष्य को सामने आई हुई वार्तो पर सोचना और विचार करना चाहिए, हर बात की परीचा और पड़ताल करनी चाहिए; तर्क द्वारा उसके सत्यासत्य की छानबीन करनी चाहिए। जो बार्तो को सोचता विचारता नहीं; वह सज्ञान प्राणी कहलाने का अधिकारी नहीं है। विचार-शक्ति के होते हुए उससे काम न लेनेवाला आदमी आत्मवञ्चक है। जो स्वतन्त्रता-पूर्वक सोचने-विचारने और तर्क करने से डरता है, वह महाकायर है और अन्ध-विश्वास का क्षीत दास है।

हमारे सरत हृद्य एाठक-पाठिकाएँ शायद कहें कि 'श्रन्ध विश्वास' से क्या हानि है हम कहानी किस्सों को सत्य मान लें तो इससे क्या वनता विगड़ता है वैद्य, हकीम श्रीर डाक्टर की द्वा करते रहें साथ ही यदि गएडे-तावीजों को भी गले में डाल लें, आड़ा फूँकी भी कराते रहें तो कौन-सी वड़ी हानि है।

एक दिन में अपने एक संस्कृतज्ञ मित्र के साथ एक वारात में जा रहा था। मेरे मित्र ने कहा—यदि हम ईश्वर को जैसा संसार कहता है वैसा मान ले तो क्या हर्ज ? जो ईश्वर नहीं हुआ तो कुछ नहीं विगड़ा श्रौर जो श्रागे चलकर ईश्वर निकला तो हम दग्ड से बच जाँयगे। मैंने उत्तर दिया कि कम से कम श्राप ईश्वर के श्रस्तित्व में सन्देह तो ज़रूर करते हैं, यह वात श्रापके शब्दों से ही प्रकट है।

इस प्रकार के प्रश्न करनेवाले, सरलगामी, सन्देह में जीवन विताने वालों को में यही उत्तर दे सकता हूँ कि जो लोग दुनिया की खुराफातों को यही समसकर ठीक मानने श्रौर करने लग जायँ कि वात ठीक है तो ठीक ही है, श्रगर ठीक नहीं है तो भी हमारा इसमें हर्ज ही क्या है तो त्रादमी का दिसाग पागल-खाना वन जाय श्रीर उसका सारा समय इन्हीं कामों में नष्ट हो जाय श्रीर संसार केवल विवितों के ही रहते के उपयोगी हो जाय। ऐसी वेहद्गियों में पड़ने से हमारा विवेक-शक्ति मन्द पड़ते पड़ते नप्ट हो जाती है, हम मनुष्यता से गिर जाते हैं; हमारे विचारों श्रीर कामों में दूढ़ता नहीं रह जाती, इममें कचापन पैदा हो जाता है; सचाई की खोज, अन्वेपण श्रार स्त्राविष्कार की योग्तया सीए पड़ जाती है। कच्चे विचार श्रौर सरल-गमन, धोखा, छुत श्रौर जात के ही वरावर श्रनुभव श्रौर श्रनुभृत सत्य को भी स्थान देते हैं, गधे और घोड़े को एक समभ बैठते हैं, और कार्य कारण सम्बन्ध को भुला देते हैं। वे-पँदी के लीटे से लुढ़कने वाले विचार के लोग प्राकृत नियमों को श्रीर प्रकृति के कामों की भृल वैठते हैं श्रीर प्रत्येक श्रसम्भाव्यता श्रीर मृहता के श्रागे भयभीत दोकर गुलामाँ की तरह काँपते हुए खड़े रह जाते हैं, श्रीर सत्यासत्यका निर्णय नहीं कर सकते। सार यह कि श्रन्ध-विश्वास को श्रनुगमन श्रीर सन्दिग्ध पथ का श्रनुसरण मनुष्य को विवेकहीन वना डालता है। बुद्धि पर प्राकृत झान का प्रकाश पड़ना वन्द हो जाता है, श्रागे की राह नहीं स्भती। प्रकृति श्रदृश्य, श्रज्ञात, श्रव्यक्त शक्ति के हाथ में कठपुतली की तरह नाचती नज़र श्राती है।

> उमा दारु योपित की नाई'। सवहि नचावत राम गुसाई'॥

कह कर मनुष्य अपने ज्ञान की उन्नति से हाथ धो वैठता है। अलौकिक शक्ति, यिल्ला का माया दण्ड या वाजीगर की लकड़ी एक घटना को 'छू' करके उड़ा देती है, कार्यों के कारण का पता नहीं चलता, सारे कार्य प्राकृत कारणों से निस्तवन्थ-से रह जाते हैं। मन की उमंग का साम्राज्य हो जाता है, विचार-स्वातन्त्रच जाता रहता है, सत्यासत्य के विचार और विवेकपर पटालेप हो जाता है, हवाई किले तय्यार होने लगते हैं, वेपरकी उड़ान भरती है, परदार जमीन पर गिरती नजर आती है, गुणें प्रमाणों, सम्बन्धों और फलों का साम्राज्य काफूर हो जाता है, तर्क शीलता और वृद्धि विदाई लेकर चल देती हैं और अन्धिविश्वास का अल्यंड साम्राज्य हो जाता है। हृद्य बज्ज, समस पत्थर, दिमाग पिलपिला होना, छाती का धड़कना अन्धिविश्वासियों में अवश्यम्मावी है।

्र श्रन्ध विश्वास से संसार में समुत्रति की प्रगति रुक जाती है। मनुष्य की योग्यता, शारीरिक श्रीर मानसिक शक्तियाँ, श्रतौकिक शक्तिकी सहायता की खोज में विरम कर श्रित विश्वास-प्रवणता, श्रद्धा जाड्चवशात् रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, प्रार्थना, उपासना श्रीर विलदान श्रादि की खुराफातों श्रीर वाहियातों में उलक्ष कर जहाँ की तहाँ ज्यों की-त्यों रह जाती हैं, पुष्पित, पह्मवित फिलित श्रीर गुणित नहीं हो सकतीं। सचाई की खोज की इच्छा, मेधा- की दौड़, श्राविष्कार श्रीर श्रन्वेषण की कामना श्रीर सङ्गाव खरगोश के सर का सींग होजाता है। नशे से बुद्धि का हरण होना वहुधा कहा श्रीर सुना जाता है किन्तु श्रन्ध विश्वास बुद्धि के श्रपहरण में नशे का दादा गुरु है। श्रन्ध विश्वास स्वतन्त्रता का शत्रु है। जो जाति इस महा रोग से निरामय नहीं होती वह स्वतन्त्रता नहीं लाभ कर सकती।

श्रन्थ विश्वास ही देवताश्रों, फरिश्तों, दैत्यों, श्रैतानों, भूत-प्रेतों, जादूगरों, निशाचरों, शकुनकों, ज्योतिपियों, निवयों श्रीर विलयों की प्रसिवनी है। इसीने पोपों, महन्तों, पुजारियों, श्रोत्तियों, योगियों, योगिनियों श्रीर पुदोहित-पुरोहतानियों को जन्म दिया है। सन्त, महात्मा, धम्मोंपदेशक, शिल्क, भिल्मों, फकीर, साधू, सब इसीके बच्चे हैं। इसी दुष्ट श्रन्थ विश्वास-ने मनुष्य को मनुष्य के पैरों पर गिराया, पत्थर, बृत्त पशु श्रीर पित्तयों के सामने हमें घुटना टेकना सिखाया, इसी की बदौलत सांवों को प्जा हुई, नरविलयों की गई, बच्चों का वध किया गया, स्त्री वर्चों को दान किया गया, वेचा गया श्रीर त्यागा गया। श्रेल सदों की कड़ाही, कुर्वांवाले की चौकी, पीपलवाले- की ध्वजा, जखेया, दुलहरेव श्रीर गूगा पीर के गुलगुले प्रभृत मुद्रता के काम महामान्य महाराज श्रन्ध विश्वास के ही प्रताप के फल हैं।

श्रन्थ विश्वास ने मनुष्यों को सताने के श्रनेक यन्त्र निर्माण किए। इसकी दया से श्रनिणत नर-नारियों की खालें खींची गई। लाखों जीते जलाये गये श्रीर करोड़ों जेलों में सड़ाकर मारे गये। ईसाई धर्मी का इतिहास इस विषय पर श्रधिक प्रकाश ढाल सकता है, मुसलमान भी ईसाइयों से बहुत पीछे नहीं है, श्रीर न हिन्दू ही इस महामहिम्न गुण से नितानत कोरे हैं। धर्म्मान्धता के नशे में, पागलपन को ईश्वर की द्या श्रीर प्रेरणा, विद्यातों की जर्र श्रीर वहक को परमात्मा का झान समकने में लोग श्राज भी नहीं हिचकते, श्राप न मानें तो सटोरियों श्रीर श्रनपढ़ दीन-दीन किसानों श्रीर मजदूरों में वैठकर देख लें। कितने ज्रश्राड़ी, सट्टे, खेले, ठेलेवाले, वीमार श्रीर दुखी हरामखोर गँजेड़ियों भँगेड़ियों श्रीर शरावियों को सिद्ध बावाजी मान श्रपना सर्वस्व उनको समर्पण कर देते हैं। बहुधा भोलीभाली स्त्रियाँ श्रपना सतीत्व भी खो वैठती हैं।

श्रन्ध विश्वास हमारा खान-पान छुड़ाता है, हमें श्रपने श्रापसे घृणा करना सिखाता है, हम सब बालवचों सहित भूके मरते हैं श्रीर नंगे रहते हैं परन्तु हरामखोरों को इसी के श्रादेशानुसार खूब माल खिलाते श्रीर कपड़ा पहनाते हैं। यह श्रध्रुव को ध्रुवपर, श्रज्ञात को ज्ञातपर महत्व प्रदान करता है।

श्रगर इसकी समालोचना की जाय, इसकी किसी वात पर शंका

उठाई जाय तो श्रन्थ-विश्वासी ईश्वर की श्रवज्ञा, धर्म्मश्रन्थों के

श्रादेशों की श्रवहेलना श्रौर देश के चलन के प्रति वगावत करने
का श्रपराध लगाकर समालोचककी जीम कटवा लेता है, शँका
करनेवाले का चिहक्तार होता है। परलोक का भय देनेवाला,

युद्धि विज्ञान श्रौर मानवीय समुन्नति का शत्रु श्रौर घृणा, भगड़ा,

फसाद, विश्रह, स्वार्थान्धता, छोटाई, वड़ाई, दीनता, हीनता
फैलानेवाला विप श्रन्ध-विश्वास है। जिस दिन लोग श्राँख
कोलकर वात का विश्वास करना सीख लेंगे उस दिन छन,

फपट, ढोंग दगावाजी, हरामकोरी, दुष्टता, पराधीनता, श्रत्थाचार श्रौर श्रनाचार श्रादि सारी बुराइयों का श्रन्त हो
जायगा।

श्रव खुद हम श्रपना स्वामी घड़कर तैयार करना श्रीर छतजातापूर्वक उसकी गुलामी की जंजीर श्रपने पैरों में डालना पसन्द नहीं करते। हम श्रपने को किसी का दास बनाना नहीं चाहते, न बनायेंगे। न हमें नेता की जरूरत है श्रीर न श्रनुयायी की। हम तो यही चाहते हैं कि मनुष्य श्रपने प्रति सचा हो, श्रपने श्रादर्श पर श्रटल हो, दएड श्रादि की धमिकयाँ से निडर होकर रिशवतों के बादों में न फँसे। हम धरती हो या श्राकाश, फहीं भी किसी भी एक श्रत्याचारी श्रीर स्वेच्छाचारी की सृष्टि नहीं देण सकते।

केवल विज्ञान ही हमें श्रमृत्य रत दे सकता है। विज्ञान ही एक महर्घ पदार्थ है। इसने मनुष्यजाति को गुलामी से हुरकारा दिलाने का वीड़ा उठाया है। यह नंगों को वस्त्र श्रीर भूखों को श्राहार प्रदान करता है। इसी की श्रपूर्व दया से हमें रहने को घर, वहुत काल तक जीने का साधन, ज्ञानबृद्धि के निमित्त पुस्तर्के श्रीर चित्र मिले हैं। इसी के द्वारा हमें रेल तार, फीनोग्राम, टेलीफोन श्रोर विजली जैसे श्राश्चर्यं जनक पदार्थ हस्तगत हुए हैं। इसीले हमें कलानातीत अननत सामग्री भोगने को मिलेगी। विद्यान ही हमारा चहारा, संरक्षक श्रीर मोत्तदाता है। इसी के प्रताप से ईमानदारी श्रीर सचाई छल पर्व धोके-पर विजय पा सकती हैं। इससे हमारे मानसिक श्रीर शारीरिक रोग हटे हैं श्रीर हटेंगे। यह हमं लाभदायक धर्म सिखलायेगा. सन्दें हों को विद्रित करेगा, संसार को श्रन्ध विश्वास के गढ़े से निकालेगा। इसकी सेना में विचारशील, सत्यवादी, तस्व-दशीं, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सूर श्रीर सावन्त को स्थान मिलेगा श्रीर पुरोहित, पएडे, पुजारी, जाटूगर वगैरः विज्ञानभानु के प्रकाश से भाग कर उलुकों की भाँति सदासर्वदा के लिए श्रज्ञात लोक में जा छिपेंगे। इसके लाम्राज्य में छुल श्रीर कट्टरता को स्थान नहीं मिल सकता। श्राश्री प्रिय वान्धव हम महाराजा-धिराज विज्ञान की उपासना करें, जिससे दीनता, हीनता, जीणता का प्रन्त हो, हमारे पापों श्रीर श्रवराधों का नाश हो । हम वडे. श्रेष्ट श्रीर

श्रच्छे वनें । विद्यान का ही हाथ संसार को स्वतन्त्रता दिलायेगा।

हमें पूर्ण श्राशा है कि इस विज्ञान के युग में, सारे संसार के साथ भारत का भी सब प्रकार कल्याण होगा श्रीर बहुत जल्द होगा। उन्नति का एकमात्र मार्ग ज्ञान, विवेक श्रीर विचार-स्वातन्त्र्य है, प्रकृति का पाठ श्रीर उसके रहस्यों की खोज है, इसी की प्रत्यक्तवाद कहते हैं।

पाठक कहंने, कल्याण किसे कहते हैं ? उन्नति क्या पदार्थ है ? क्योंकि उन्नति के स्वरूप में बड़ा मतभेद है, इसकी परि-भाषा श्रत्यन्त विवादशस्त है। श्राज जिसे एक समुन्नति श्रीर कल्याण के मार्ग के नाम से पुकारता है, दूसरा कल उसीको घोर पतन श्रीर वर्यरता वतलाता है।

धर्मके ही सम्बन्धमें हम देखते हैं कि लोग बिना समके-वृक्षे श्रपनी प्रार्थना संस्कृत, श्रीर श्रर्थी में करते हैं, यदि मातृभाषा में प्रार्थना करें तो बहुत कम प्रतिष्ठित समक्षी जाती है, शायद श्रलाह मियांकी समक्षमें भी न श्रासके। लेकिन बहुत से समक्ष हारोंका मत है कि सब प्रार्थना-उपासना श्रपनी मातृभाषामें हा होनी चाहिए, क्योंकि इंश्वर समके या न समके कम से कम जो कुछ हम श्रपनी जवान से कहते हैं उसे खुद तो समक्ष लें। किसी समय इक्लैएड में ऐसा कानृन था कि जो कोई बाइ- किन श्रपनी मातृभाषा में पड़ेगा, उसका घरबार श्रीर सारी सम्पत्ति—यहाँ तक कि उसका शरीर श्रीर प्राण तक राज्य

श्रात्मसात् कर. सकेगा। भारत के ब्राह्मणों ने एक समय यह कानून प्रचलित किया था कि जो कोई शूद्ध वेदमन्त्र सुन लेगा उसके कानों में सीसा गर्म करके डाल दिया जायगा। ऐसी दशा में कीन निर्णय करे कि कल्याण किघर है किस काम में है। इस महत विरोध में उन्नति की परिभाषा करना कठिन क्या श्रासम्भव हो जाता है।

किसी को पराचीनता पर ही श्रटल विश्वास है, वह उसी
में मस्त रहकर सांसारिक उन्नति की जड़ देखता है, क्योंकि
जो वात चीज या पुस्तक पुरानी है वह श्रांख मूँदकर मान लेनी
चाहिये। पुरातन का सम्मान इसीलिए होना चाहिए कि वह
पुरातन है, पुरातन के सामने विवेक, बुद्धि श्रीर भावों की श्रवहेला करके भी सिर भुका देना पारिहत्य है। जवतक किसी वात
की पुष्टि में किसी पुरानी ब्रह्मा वावा की ब्रह्मी भाषा श्रीर लिपि
में लिखी हुई पुस्तक के दो-चार श्रवतरण खोजकर न निकाले
जास, हमारी वह वात सची श्रीर मान्य हो ही नहीं सकती।

कोई कहता है पुरानी वार्ते सारो की सारी रही के टोकरे को सींप देनी चाहिएं। नवीनता के आदर के लिए उसका नवीन होना ही पर्याप्त है। पुराने लोगों में अगर बुद्धि होती तो उनमें आजकल के रेल, तार, जहाज़, पनडुब्वे, हवाई जहाज़ आदि बनाने के सारे ही वैज्ञानिक चमत्कार मौजूद होते। पुराने लोग जङ्गली और नादान थे, उनकी लिखी पुस्तकों से अग्राज़ हम कीन सा लाम उठा सकते हैं?

परन्तु, नहीं। प्रत्यस्वादी कहता है —सत्य ही मान्य है। सत्य काल, दिशा थ्रीर पक्षात के वन्धन से श्रवाधित होता है। सत्य प्रकाश है। इसकी ज्योति हमें श्रन्थकार से निकाल कर सीधा मार्ग दिखलाती है और वास्तविक उन्नति के पथ पर ला छोड़ती है। श्रतः पुराने-नये का प्रश्न छोड़कर हमें सत्य का मार्ग प्रहण करना उचित है। वालक की समीचीन बात उतनी ही मान्य होती है जितनी किसी बृद्ध या पुरानी पुस्तक की समीचीन वात । श्रसत्य, श्रनहोनी, श्रप्राकृत वात नई हो या पुरानी त्याज्य ही होती है। हम नई होने के कारण किसी उपन्यास या किएत गलप की सचाई का दावा नहीं कर सकते श्रोर न नवीनता के कारण प्रत्यक्त विज्ञानुमीदित या येज्ञानिक कोज की इस उपेत्ता कर सकते हैं। इसी प्रकार इस पुरानी कथात्रों के श्रमुसार यह नहीं मान सकते कि घी, दूध, द्दी, मधु श्राद्दि के वड़े वड़े समुद्र धरामएडल पर विद्यमान हैं, श्रमुक देवता का शरीर ३५० या ५०० धनुप ऊँचा था। हमें जैन तत्वार्थ सूत्रों में या श्रीमद्भागवत के वतलाये हुए इति-हास श्रीर भूगोल पर केवल उनकी प्राचीनता के कारण विश्वास नर्दी करना चाहिए। क्या श्राज हम श्राचार्य्य जगदीशचन्द्र बोस की वार्तों को इसलिये श्रमान्य कर सकते हैं कि वे नई हैं।

मर्साद की छुठी शताच्दी में एक इंसाई साधु महोद्य ने-जिनका नाम कोसमास (Cosmos) या—भागवतकार महा-राय की विचारशैकी के श्रनुसार अपना एक नया भूगोल रचा। इस भूगोल के अनुसार धरती एक गोल चपटी मही का दुकड़ा है इसके चारों श्रोर समुद्र हैं। इस मिट्टी के दुकड़े को श्रावेष्टित करनेवाली जल-रेला के चारों श्रोर फिर एक श्रोर चपटी धरती की गोल रेला है जो जल को चारों तरफ़ से घरती है। इसी दूसरी धरती पर नूह के तूफान के पहले पुरानी दुनिया यसती थी। तूफान श्राने पर नूह मियाँ ने मनुष्यों को वहाँसे भगाकर इस नई दुनिया में ला बसाया। वाहरी घरती पर जहाँ तूफान श्रायो था एक पहाड़ है, उसी के चारों श्रीर चन्द्र श्रोर सूर्य परिक्रमा किया करते हैं। यह बात १४०० वर्ष की पुरानी श्रीर कुरानी गण्य की जननी है। क्या इसे हम पुरानी होने के कारण सत्य मान लें?

यदि हम अपने मित्रों के कथनानुसार मान भी लें कि सभी
पुरानी वार्ते समीचीन होती हैं अतः उन्हें हम आँखें वन्द करके
सत्य मान लें, तो भी यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्राचीनता
आर नवीनता के बीच को विभाजक रेखा कौनसी है कितने
दिनों की वात को पुरानी समर्भे और कवतक किसी वात
को नई मानते रहें वितमान तो खगातार भूत में परिणत
होता रहता है । क्या हमारी भावी सन्तान आजकल
की गल्पों और कहानियों को सक्ष मान लेगी किया
हम अलिफ़लैला और कादम्बरी आदि की वातों को सत्य
मान लें ?

श्रादम से ख़ुदाने सुरियानी भाषा में वात-चीत की, मृसा ते इवरानी में, मुहम्मद् श्रे श्रवींमें, प्रहाद से संस्कृत में, नामदेव से हिन्दी या डिंगल में, यह तो लोगों ने समक ही रखा है, लेकिन इजरत 'ऐएडी कम्प' ने श्रपनी पुस्तक में जो १५६६ ई० में प्रकाशित हुई है, कहा है कि ख़ुदा ने श्रादम के साथ स्वीडिश भाषा में वातचीत की, क्योंकि स्वर्ग की भाषा स्वीडिश है। हमारे देश के स्वर्ग के दावीदार कहते हैं कि स्वर्ग की भाषा संस्कृत या प्राकृत है। गणाधरों की भाषा का पता लगाना दुस्तर हो रहा है। हमारे जैन-तीर्थंकरों की भाषा केवल गणधर ( तीर्थंकरों के द्विभाषिये ) ही समक्ष सकते थे। यद्यपि श्रन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी को हुए श्रभी २५०० वर्ष ही हुए हैं। यह गणधर महाशय जो वोलते थे उसे देश-देशान्तरके सब लोग श्रपनी-श्रपनी भाषा में ही सुन श्रीर समक्ष लेते थे। यह सब प्राचीन प्रन्थों की लीजा श्रीर हमारा श्रन्ध विश्वास है।

श्रन्त में प्रत्यत्तवादी की दृष्टि में उन्नति का मार्ग वही है जो मनुष्य जाति में से शारीरिक श्रीर मानसिक गुलामी को विदूरत फरने का साधन हो; पूर्ण शारीरिक श्रीर मानसिक स्वतन्त्रता ही समुन्नति है। संसार में सब प्रकृति-प्रदत्त पदार्थों को बिना रोक-टोक मनुष्य खा-पी श्रीर भाग सके, इसीमें कल्याण है, इसीमें मुक्ति श्रीर इसी में सुख श्रीर श्रानन्द है।

यह छंग सरीज में फलयुगी 'चारवाक् के नाम से मन् '१९३० में छपा या ।



अक्षेत्र अध्यय या उधर किधर थिह प्रश्न मेरे मन में अध्या किधर थिहा प्रश्न मेरे मन में अध्या किधर थिहा प्रश्न हैं पिदा होता है, क्यों कि मैं प्रत्यत्न देख रहा हैं कि संसार में दो मार्ग हैं—सोकिक श्रीर श्रक्तिक श्रीर श्रक्तिक या नैसर्गिक श्रीर कारुपनिक।

नैसिंगिक, स्वाभाविक, प्राकृतिक या लौकिक मार्ग तो वह वास्तविक मार्ग है जो हमें प्रत्यक्त प्रेरणा करता है कि हम संसार के हितार्थ जियें, मरें; अपने दिल और दिमाग से काम लें, प्राकृतिक शक्तियों को खोजें और आविष्कारों में संलग्न हों और इन कामों का यह फल दिखलायें कि हम सुखी मनुष्य हैं और हम सबको खाने को यथेष्ट अन्न, पहनने को पर्याप्त कपड़ा और रहने को समुचित स्थान प्राप्त है। इन शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ हमारा काम हो कि हम अपनी मानसिक चुधा-निवृत्ति के लिये कला और विज्ञान को अपने मनोरङजन को सुरम्य वाटिका समभें। ्वता मार्ग यह है कि काल्पनिक जगत् में श्रांख बन्द निये फिरें, परलोक की जिन्ता में इस लोक का खून करें, खनान का पक्ष लेकर झात का तिरस्कार करें, विकान, कला-फीशन श्रीर बुद्धि को छोड़. कर प्रार्थना श्रीर मन्त्र श्रादि के जप से श्रपने लारे कामों को श्रनायास ही बना लेने के उद्योग में नर्जे।

पहला मार्ग है—सोचना, विचारना, देखना, श्रनुभव से याम लेना, विवेक के प्रकाश के पीछे चलना। दूसरा रास्ता है, विना जानी-वृक्षी बात पर विश्वास कर लेना, मान लेना, उसीका श्रनुकरण करना श्रोर श्रवनी झानेन्द्रियों तथा मन श्रोर बुद्धि का श्रविश्वास करना। जो लोग जानकार वनकर हमारे खामने श्रावें उनके सामने तिर सुका देना, सत्यातत्य के गिर्णय से मुँह मोड़ना श्रीर श्रांखों से श्रधिक कानों का भरोता करना।

पत पहा हमें कहता है कि तुम मनुष्य हो। तुम्हें मनुष्यजाति के उपकार के लिये जीना-मरना चाहिये। तुम्हारा धर्म
है कि अपने वाल-बचों, दृष्ट मित्रों का जीवन सुखी वनाओं और
सक्तार में सुप्य से रहों। हो सके तो प्राणी मात्र को नहीं तो
मनुष्यमात्र को—स्त्री हो या पुरुष—दुःश्रों से बचाओं। दूसरा
पद्म कहना है, तुम संसार में भूत-प्रेतों, देवनाओं और फरिस्तों
की सेवा के लिये अपना जीवन समर्पण कर दो। इनके प्रताष
से तुम्हें दूसरे लोक में, मरने के बाद, बड़े-बड़े सुख निर्तृगें।

पक श्रोर हमें विवेक को सिंहासनासीन करके इतिवृत्तियों को श्रपना विश्वासपात्र श्रामात्य बनाने की प्रेरणा हो रही है श्रोर दूसरी श्रोर विश्वासपरता के राज्य में श्रांख बन्द करके केवल विश्वास के भरोसे जीवन श्रतिवाहित करने की शिला मिलती है।

पक मार्ग है, अपने भीतरी और वाहरी प्रकाश के सहारे आँख खोलकर चलना, अपने ज्ञानेन्द्रियों पर भरोसा और विश्वास करना। दूसरा मार्ग है, आँख वन्द करके दूसरों का अनुकरण करना।

पक पज्ञ कहता है, धार्मिक, श्रीर ईमानदार वनो; अपने विवेक श्रीर सद्विचार से दूसरों को सन्मार्ग पर लाने के लिए उन्हें प्रेम-पुरस्सर श्रपने विचारों को दो, सीधे श्रीर निर्भय खड़े हो, धोकों, छलावों श्रीर नरकों का ख़्याल छोड़ो।

- दूसरा पद्म कहता है कि भयभीत रहो, भुक जात्रो, श्रपनी श्रान्तरात्मा को घोका दो, दूसरों की मानसिक और शारीरिक स्वतन्त्रता छीनने में सहायक बनो श्रीर श्रपनी प्राकृत स्वतन्त्रता का भी उपभोग भूल जाश्रो।
- एक दल हमें वतलाता है, श्रितशाहत वार्ती पर विश्वास करो, रोजे-नमाज, प्रार्थना और उपासना में लगे रहो। तुम्हारा कल्याण इसी में है। इसीसे वर्षा होगी, धूप होगी, खेती श्रच्छी होगी और तुम श्रारोग्य और दीर्घायु होगे। तुम्हारा धर्मा है कि तुम राजा और राजनियमों (कानृनों)

ने डरते रहो। राजा की प्रसन्नता से तुम्हारा भला होगा। राजा ईश्वर का श्रंश है। उसके प्रति श्रात्मसमर्पण कर देना रावसे श्रञ्झा काम है।

दूसरा दल कहता है, इस वातपर मत विश्वास करों कि कोई शक्ति प्रकृति की प्रगति को रोक या वदल सकती है। भंभा, तृफान, वृष्टि, सावन श्रीर भूकम्प सारे प्रकृति के खेल हैं। प्राकृत नियमों के श्रमुसार होते रहें हैं श्रीर होते रहेंगे। कोई भी मनुष्य किसी राजा, वादशाह, हाकिम या किसी धर्मयाजक की गुलामी के लिए पैदा नहीं हुआ। सबके शरी, मन श्रीर बुद्धि है। प्रकृति सब के उपभोग के लिए बनी है। इसलिए बीर बनो श्रीर बसुन्धरा पर निर्मय श्रपने प्राकृतिक श्रिधकारों को लेकर विचरो।

कुछ भोले-भाले या भुलानेवाले पण्डित कहते हैं कि श्रादिम मनुष्य जंगली श्रीर नालायक पशु थे। वह श्रलग्धिल छोटे-छोटे कुटुम्ब लंकर रहते थे श्रीर श्रपने भोजन श्रीर वस्त्र के लिए एक-दूसरे के साथ लड़ते-कटते श्रीर मरते थे, स्त्रियों के लिए भगड़े करने थे। किसी द्यालु पुरुष ने जन्म लिया श्रीर उसने उनमें शान्ति की स्थापना की। पाश्चार य देश के बिहान 'इपसले' महाशय ने भी 'होबीस' महाशय के सर में न्यर मिलाया श्रीर १==५ में लिख डाला कि श्रारम्भ यान में मनुष्य लड़ाई-भिड़ाई परके जीवन व्यतीन करने थे, नित्य श्रापस में भगड़े ठाने रहते थे। तब कुछ उधकोटि के

लोग पैदा हुए श्रीर उन्होंने पहलेपहल संमाज की बुनियाद डाली। इन महाशय का "जीवन-संग्राम" ('Struggle for Existence) नामक सिद्धान्त वहुत प्रसिद्ध है। पाठक चाहें तो उसे पढ़ें श्रीर विचारें।

कहाँ तक कहें, दादा डारविन के चेले-चाँटे भी कह उठे कि समाज मनुष्य की कृति है। यदि कहीं विद्वान् शिरोमण् 'प्राउढन' का तर्क इनके दिमागों में पैदा हुआ होता, और उन्होंने प्रकृति का निरीक्षण कुछ और गहरी दृष्टि से किया होता तो अनायास ही इनकी समक्त में आजाता कि समाज मनुष्य का आविष्कार नहीं है, समाज मनुष्य की उत्पत्ति से यहुत पहले ही धरामण्डल पर वर्तमान प्राणियों में मौजूद था। मनुष्य-द्वारा समाज की आविष्कृति की गाथा धर्मा-चाय्यों के दिमागों की अनोखी कल्पना है। इन्हों की दृर देखने वाली बुद्धि ने राजा का आविष्कार किया। इन्हीं नादानों ने राजछल और धर्मकैतव को संसार में फैलाकर मनुष्य जाति को धूल में मिलाया।

श्राज भी हमारे शिल्क, श्रध्यापक श्रीर श्राचार्य पाठ-शालाश्रों, महाविद्यालयों, गुरुकुलों श्रीर विश्वविद्यालयों में हमें सिखलाते रहते हैं कि मनुष्यों के ऊपर एक वलवत्तम शिक्त की स्थापना की श्रावश्यकता है। ये महापुरुष समाज में उन नैतिक नियमों को जो उन्होंने श्रपनी चालवाज़ी से गढ़कर िल होड़े हैं, तोड़नेवाले को विविध प्रकार के दएड देकर ध्रपने नैतिक भाव के पौदे को हरा-भरा रखने की शिक्षा दिया धरते हैं। इसे वे राष्ट्र के जीवित रहने के लिए श्रनिवार्य धतलाते हैं। यह सब इसलिए किया जाता है, कि कहीं लोग सावधान हो गये तो इन महापुरुषों की, जो दुसरों की सरलता श्रीर नादानी से संसार के सारे सुख विना परिश्रम भोग रहे हैं, दाल न गलेगी।

धमें उन लोगों से तनिक भी घृणा नहीं, जो उन्टे रास्तेपर भटक कर चले गये हैं। हम उन्हें यह बताना चाहते हैं कि दमारे पूर्व पुरुषों ने, जो कुछ उनसे बना, बहुत किया । उन्होंने श्रली किक शक्ति की पूजा श्रीर श्रर्चना में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनकी समक्त में परमातमा सारे विश्व का एक स्वेच्छा-चारी एक मुखी-सत्ताधारी राजा है। वह सब कुछ अपनी मनमानी करना है। क्योंकि उसमें शक्ति है। वह हमें इस लोक में भी सुसी रखता है श्रीर परलोक में भी। इसपर मी जब उन्हें हुल मिलने। लगा तो वद एक श्रासुरी शक्ति को मानने लग गये। इस शक्ति का भी श्रातद्व उनके मनों में ईश्वर-शक्ति के समान ही दें उगया। यह दूसरी श्रासुरी या कितानी शक्ति इन्हें इंश्वर से भी अधिक चालाक नज़र आई, क्योंकि वह ईर्वर की प्रार्थना श्रीर उपासना करते रहने पर भी श्रपना हाथ बढ़ाने लगी। इस तरह वैचारे चकी के दी पार्टी के बीच मूँग की तरह दले जाने लगे। इमारे पूर्व पुरुषों को न इंश्वरी शक्ति

से प्रेम था न आसुरी-प्रक्ति से घृणा थी। लेकिन इनमें दोनों का ही पूरा-पूरा भय समा गया था। वे अपने पेहिक और पारलौकिक सुखों की खोज में कभी इधर भुकते और कभी उधर।

जब पूर्वकाल में मानव-समाज इस चक्कर में पड़ा तब कुछ विचारशील लोग उत्पन्न हुए। इन्होंने श्रनुभव किया, सोचा विचारा श्रौर श्रपने श्रनुभवों श्रौर विचारों को लिपिवद्ध करना श्रारम्भ किया। धीरे-धीरे इन्हें मालूम होने लगा कि किसी-किसी समय श्रमुक-श्रमुक निर्दिए काग्णों से चन्द्रग्रह्ण श्रौर सूर्यप्रहण हुन्ना ही करते हैं श्रीर इनका होना हम पहले से वतला भी सकते हैं, इसलिए इनका मनुष्य के सुकर्म श्रीर दुष्कर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता, न इनका होना, न होना किसी दैवी या श्रासरी शक्ति के हाथ का खेल है। इसी प्रकार विचार करने सं इन्हें भूकम्पों, तूफानों श्रादि के भी कारण जान पड़े तव तो इन लोगों ने देंवी श्रीर ईश्वरीय शक्ति की सत्ता में भी सन्देह करना शुरू किया और भूगोल, खगोल, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान श्रादि सम्वन्धिनी श्रगणित वार्ते सोच डाली। जिसे इम श्राज पर्यन्त भी लगातार सोचते जा रहे हैं। हवा, वगैरह सभी पर हम श्रपने पुरुषार्थ से विजयी हो रहे हैं। श्रव हम नज्ञा, ग्रहीं, उपग्रहीं के श्राकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई श्रीर दूरी जानते हैं। हमें ज्ञात है कि कितने ही प्रह पृथ्वी सं कहीं ज्यादा बड़े हैं। हम पर कर्पों के विकाश,

चतस्यतियों की बृद्धि श्रीर प्रसार, पहाड़ों श्रीर टायुं श्रीता बनावर श्रीर उत्यक्ति के कारण, जल, बायु श्रीर प्रश्नि की शक्ति श्रीर काम के बहुत से भेद खुल गये। सीर्यक्रम में पृथ्वी का स्थान निर्णय करके जीवां श्रीर प्रद्वों के सम्बन्ध को हमने हुँद्ध निकाला। खोज श्रीर प्रयोगों ने हमें रसायनशास्त्र के श्राणित गृह रहस्यों को बतला दिया। छापे की श्राविण्यति, घटनाश्रों के संरक्तण, वितरण श्रीर विश्लेषण, खिद्धान्तों श्रीर विचारों के योग से श्रन्थ विश्वास के जड़ोर की सहस्रों कड़ियां हट कर गिर गई। हम प्रकाश में श्राये श्रीर श्राविज्यति का भएडा-फोड़ होने लगा। ज्यां-ज्यां वैद्यानिक मनावृत्ति की घृद्धि होतो जाता है, त्यां-त्यां प्रकृति के रहस्य एस्तामलक होते जा रहे हैं। श्रव बहुत सी पुरानी वे सिर्पर की गाथाएं हमें बेहदा जैवती है श्रीर श्रालीकिकता हमारे पेरिक कामों में श्रव बहुत बाधा नहीं डालती।

म्कृल खुलते जाते हैं, लड़कों को हमारे पूर्व अनुभव के पाठ पड़ाये जाते हैं। पुस्तकें छुपती हैं और विचारशीलों की संग्या यह रही है। अब अति प्राइत या अलोकिक बातों की सुंद छिपा कर भागना पड़ता है। प्राइत बातों के भीतर अभा- एतिक धानों का लय होना जाता है। धमें के पर बिलरते देख धमें-याजकगण बैजानिक और विचार-शीलों को अपना शत्रु मममने हैं, पर कुछ बदा नहीं चलता। हो, कभी-कभी ये स्वतन्त्र विचार्यालों को धमें-होही, नाह्तिक, नारकीय आहि

गालियाँ देकर सन्तुष्ट ज़रूर हो तते हैं। हमें इनसे शत्रुता नहीं, हम तो चाहते हैं कि यह भो ज्ञान के प्रकाश में जल्दी आ जायँ। इनका च्रिजिक स्वार्थ इन्हें प्रकाश में नहीं आने देता। जो भी हो, एक दिन सारा संसार विज्ञान-भानु के प्रकाश में आयेगा और अज्ञानान्यकार का नाश होगा। वह दिन अव दूर नहीं है।

हज़ारों वर्ष से जीवन के दो दार्शनिक सिद्धान्त रहे हैं। पक कहता है, वासनाश्रों को निर्मृत कर डालो, इच्छाश्रों को कम करो और किसी चिलप्रतर श्रीर उच्चतर शक्ति का श्राश्रय लो। दूसरा वासनाश्रों को उचित संतृति, इच्छाश्रों श्रीर कामनाश्रों की वृद्धि तथा उनकी उद्योग, चातुर्य्य, श्रन्वेपण, श्राविष्कार श्रीर श्रपने वाहुबल द्वारा पूर्ति का पत्तपाती है। डायोजिनीस (मसीइ से ४१२ वर्ष पूर्व हुन्ना) हाइरेपोलिस का 'पिकटेटस' (जो मसीह की पहली सदी में हुआ) सुकरात (जो मसीह से ४६८ वर्ष पूर्व हुन्ना) बुद्द, शंकर, मसीह महावीर श्रादि श्रनेक विचारक पहली कोटि के लोगों में थे। श्राज महात्मा गांधी भी एक सीमा तक इन्हीं के अनुयायी हैं। इन्हें पेश-श्राराम से नफ़रत है, यह कला-कौशल, गान-बाद्य के विरोधी हैं, इन्हें श्रच्छे खाने, कपड़े श्रीर वेश-भूवा की ज़रूरंत नहीं मालूम होती । यह दिख्ता, मैले-कुंचैले चीथड़ी, श्रंज्ञान श्रीर विश्वास के प्रेमी, श्राशिकेजार हैं। इनकी श्रांकों के सामने संसार दुःखमय, कराटकाकीर्श स्रातः त्याज्य दिखलाई देता है श्रीर दूसरे लोक के काल्पनिक सुख श्रीर महत्व श्रांकों के सामने गाचा करते हैं। मसीह कहता है कि सुई के छेद से केंद्र का निकल जाना चाहे सम्भव हो; परन्तु सम्पन्नों को स्वगं में जाना श्रासम्भव है। "राम नाम के कारने सब धन डाग कोय। मूख जाने नए भी दिन दिन दूना होय॥" यह किसी हिन्दू-साधु का यचन है।

इस इस्तंस्कार पूर्ण दर्शन का दिन दिन लोग हो रहा है।
प्रय जनता इस लोक में सुखी रहना चाहती है। प्राज हम
समभने लगे हैं कि पिछले जनम के अपराधों के कारण हम
ग्रीय नहीं है, न इस जन्म में दुख भोगने से अगले जन्म में
सुकी होंगे। हमारे सुखी और दुखी होने के, हमारी सम्पन्नता
और विपन्नता के कारण दूसरे ही हैं और उनका इसी लोक से
सम्याध है। हम में इन कारणों को विद्रित करने का सामर्थ
है। आज हम लोगों को जीवन में सुखी होने की चाह है। हम
अच्छा अन्न, अच्छा कपड़ा और समुचित धर की ज़रूरत है।
हमें पुस्तक और तसवीर चाहिए। हमें आराम और अवकाश
दरकार है। हम चाहते हैं कि हमारे दिमाग समुन्नत और बनी
हों जिसमें हम प्रहात की शक्तियों को आपनी दासी बनाकर
सैन की बंशी बनाएँ।

श्राज सममदार नर-नारी त्यागियों की शिक्षा, संस्थासियों वैरागियों के दार्शनिक उपदेशों को हैंस कर दुकरा देते हैं। हाँ, मारन श्रमचत्ता श्रमी तक श्रद्धं जागृत श्रयस्था में पड़ा हुआ इन पाखराड़ों के हाथ में नाचता है। लेकिन इसकी मोह-निद्रा हूटने में भी श्रव बहुत देर नहीं है। इस देखते हैं कि कलकत्ता के मारवाड़ी जो पुरोहितों के हाथ में कठपुतली की तरह नाचते थे, जिन्होंने १६० में, जब सुधारक समुदाय की गर्दन पर पुरोहितों की तलवार रखी गई थी, पुरोहितों के भय से 'सत्य सनातन धर्म' को छिपकर सहायता देते थे, वही मारवाड़ी नवयुवक श्राज पूरीहितों को बन्दर की तरह नचाते हैं। सुधार के कट्टर विरोधियों की गली की कंकड़ी से अधिक प्रतिष्ठा नहीं करते। यह बात हम भारत के अन्य प्रान्तों में भी देख रहे हैं। पक समय था कि वैश्य महासभा में राय केदारनाथ साहब सदश स्थारकों ने सर गङ्गाराम के विधवा-विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध किया था। सभा के अनेक सज्जन मेरी और यह कदकर श्रङ्गुली उठाते थे कि मैं सर गंगाराम के साथ सह-मत था। त्राज वैश्यों में विधवा विवाह हो रहे हैं, हिन्दू मात्र इसकी श्रावश्यकता को देख श्रोर समभ रहा है। श्रव बावा वाक्यं प्रमाणम् का काम नहीं है । यह सत्य का युग, विज्ञान का युग, स्वाधीनता का युग है,-प्रत्यत्तवाद का ज़माना है। कीन ऐसा भासमभ होगा जो उपवास श्रौर श्रात्मसन्ताप में विश्वास करेगा। यह संसार त्यागभूमि नहीं भोग भूमि है। नरक की यातनाएं, स्वर्ग के आनन्द, पित्र-लोक आदि के पर्वांडे पञ्चतन्त्र की कहानियों से श्रधिक महस्व नहीं : रखते ..। कार्य-कारण-सम्बन्ध से : फल होते हैं । कार्य-

कारस-सम्बन्ध को समभाना श्रीर बात है, गपोड़ कया दूसरी चीज़ है।

हम खोज से, जाँच पड़ताल से, तर्क से, बुद्धि से, विचार शीलता से जान सकते हैं कि सुखों के कारण क्या हैं श्रीर दुनी के हेतु कीन से हैं श्रीर फिर उन्हीं कारणों के प्रतिवन्यों के अनुकूल रहकर सुख पा सकते हैं श्रीर प्रतिकृत रहकर दुसाँ की ट्रूर कर सकते हैं। यह धूर्तता या बाजीगरी कि हमारे क्में से ब्रह्ण लगते हैं और भूकम्प आते हैं, अब नहीं काम देगी। हम किसी श्रासमानी या ज़मीनी राजा के गुलाम वनना नापसन्द करने लगे हैं। क्योंकि हम विवेकवान जन्तु हैं। हम कर्मयोग, दर्शन श्रीर विद्वान को पढ़कर पण्डित हो गीये हैं। श्रव इमारी श्राँखों में धूल भोंकना सरल काम नहीं हैं । एक श्रोर एसेम्बली में विल पेश होता है, दूसरी श्रार जनता सरकार की सारी शरारत और विचारी हुई कूट-नीतियों को खोलकर मैदान में विखेर देती है। राजकैतव श्रीर पुरोहित दाव-पेंचूंके दिन बहकर अतलान्तक महासागर में विलीन हो गये हैं। अहै इम जान श्रीर विवेक से युराइयों को इराते हैं। श्राने मस्तिक्र की समुन्नति में श्रवना फल्याण देखते हैं। नवीन युग के नवीन विद्यालय हमारे धर्म-मन्दिर हैं। विश्वव्यापक बान हमारा गुरु है, श्रीर विज्ञान हमारा उवास्यदेव---नत्यनारायण है।

पूर्वकाल में सरकारों की दो उपपत्तियाँ थीं, एक पारमा-पिक दूसरी पेहिक। दोनों के मूल में एक ही अम था। उस लोक में ईश्वर इस लोक में राजा। राजा ईश्वर का श्रवतार या प्रतिनिधि कहा जाता था । इसलिए मनुष्य का कर्तव्य था कि पुरोहितों की गढ़ी हुई ईश्वराहा श्रीर छुलियों की वनाई हुई राजाहा को शिरोधार्य्य करें। श्रव धारिंमक शासन लोगों को अञ्जा नहीं लगता। इसे तो यह एक तरह से ठुकरा चुके। लेकिन उसके स्थान में राजशासन जोरों पर है। इंगलैएड में पार्तियामेंट 'गाड' ( ईश्वर ) है, श्रमेरिका श्रोर फ्राँस श्रादि प्रजासत्तात्मक राजों में प्रतिनिधि सभा ख़ुदा है, भारत में गवर्नर जनरत्न श्रीर सैकेटेरी-श्राफ्-स्टेट् खुदा श्रीर परमात्मा के स्थानापन्न हैं। ईश्वर का सब जगह से बहिण्कार हो चुका है। उसके स्थान पर वैठी हुई राजसत्ताएँ साम्यवाद के भय से काँप रही हैं। इनके भी वहिष्कार किये जाने का समय पास है, यह सब ग्रन्ही तरह जान चुके हैं। फ्राँस के लुई, जर्मनी के 'विक्रियम' और रूस के निकोला जो समभते थे कि जनता पर शासन करने का हमें ईश्वर-प्रदत्त श्रधिकार है. श्रधीवन्द्र लाकर विदा हुए। जो कुछ प्राचीन वेहृदगी का चिह संसार में श्रवशेष है वह निश्शेष होनेवाला है। श्रव देखना है कि हम किधर जायँ. इधर या उधर ?

हम जान गये हैं, मनुष्य श्रपना शासन श्राप कर सकता है। एक मनुष्य का दूसरे पर शासन करना श्रप्राकृतिक है। हमें पुरोहितों, पएडों, पोपों, पोटिफों, विजयों, निवयों, रिव्वयों, तीर्थं क्करों श्रीर गणधरों की ज़रूरत नहीं है। हम उनके बिना ध्ययम काम वसूची चला सकते हैं। इसी तरह हमें यह मी निश्चय धी गया है कि समें राजाओं और क़ानुन के वोधों की भी ज़रूरत नहीं, हम इन वेह्नद्गियों के दिना ही ज़्यादा सुस्नी रह सकते हैं।

भारत में धर्म के व्यवसायियों का चक्र श्रव भी चल रहा है। यह भी श्रवने 'वॉटीफिक्त थोन' महन्ती सिंहासन के श्रिभमान में किसीको राजिंग, किसीको देवी वनाते फिरते हैं। चाहे इन गुवरीलों की तरह नित्यप्रति पैदा होनेवाले श्राचायों को कोई कौड़ी को न पूछे फिर भी इन्हें किसी न किसी उल्लू को पटाकर जेय भरने . का ग्रवसर मिल ही जाता है। जो दुराचारी, दुष्ट, नरघातक, पापिष्टी इन्हें ऊँचा वैठाकर रुपयों की थैली भेंटकर देता है उसीको नर-पुंगव की उपाधि मिल जाती है, वही राजिं वन जाता है। इसी तरह सरकार भी साल में दो वार लोगों को अगिएत उपाधियों से विभूषित कर श्रवने मायाजाल में फँसा लेती है। श्रव इन राजकीय श्रीर पुरोहिती उपाधियों का मूल्य घट गया है। केनेडाने तो श्राज से दस-बारह वर्ष पूर्व, सम्भवतः सन् १८१७ में इङ्गलैएड को दी हुई उपाधियों को सदा के लिए नमस्कार कर दिया और अब नये दिन श्रौर इंगलैएडेश्वर के जन्म दिन पर इन उपाधियों का ख्वाञ्चा केनेडा नहीं जाता। किन्तु भारत में ऐसे श्रन्नाहारी सींग-पूँछ वालों की कमी नहीं है जो अपनी दुम में नमदा , वँघाकर श्राह्वादित श्रीर प्रफुल्लित होते हैं।

## दूसरी तरंग

( सामाजिक )

## स्त्री-मानस

नुष्य जाति की मानसिक उद्यता महत्ता. उसकी दया, धर्म श्रीर दूसरे सद्गुणीं पर जब इम विचार करते हैं तो हमें पुरुषों से स्त्रियों का स्थान कहीं ऊँचा नज़र श्राता है। साधारण नर जीवन में हमें पद-पद पर व्यक्तिगत स्वार्थ की भलक मालुम होती है। इसके विरुद्ध नारी जीवन स्वभाव से ही कोमल, सरल श्रीर परोपकार निरत् पाया जाता है। संस्कृति, के निर्माण श्रीर विकास में यदि हम नारी को प्रकृति का दाहिना हाथ कहें, तो तनिक भी ऋत्युक्ति न होगी; लेकिन -इसके विरुद्ध नर विद्यातक श्रोर संहारक है । देखिये दौनी में कितना अन्तर है। प्राणिशास्त्रहों ने भी इस वात की पुष्टि की है। जीवायु के दो भेद किये गये हैं श्रयुलोम परिणामी श्रौर प्रतिलोम परिणामी । वह निर्माण-क्रिया तत्पर शक्ति है श्रीर यह विभ्वंस कारी वल। विभ्वंस का काम वस्तु ( 348 )

के प्रस्तुत हो जाने पर सम्भव है, इसीसे कहना पड़ेगा कि नारी नर से पहले उत्पन्न हुई। नर नारी का श्रमुन्नत रूप है।

प्राणिशास्त्र का एक ब्राचार्थ्य कहता है :--

"all facts point to the feminine as the primary and fundamental basis of existence. most recent biological studies have also shown that the masculine is secondary."

अर्थात् सब बातें इसकी साली दे रही हैं कि जीवन सत्ता का प्रधान आधार नारी है। प्राणिशास्त्र के नवीन अनुसन्धान भी कहते हैं कि नर का स्थान गीण है।

इतिहास की भही घटनाओं से भ्रष्ट पृष्टों को पढ़ कर न्याय-परायग सत्यशील व्यक्तियों के हृद्य काँप उठते हैं, क्योंकि पुरुष ने मातृ-शक्ति के साथ लगातार श्रक्तम्य श्रपराध किया है श्रीर वह श्रव भी ऐसा ही कर रहा है। जिस जाति में स्त्रियों की जैसी दयनीय, जितनी गहिंत, जितनी पिततावस्था पुरुषों के हाथों से हुई है, उसका पता उसी जाति के पुरुषों के पतन से लग सकता है। यह सम्भव नहीं कि कोई जाति मातृ-शक्ति के प्रति श्रत्याचार करके स्वयं नीच श्रीर पितत न हो।

हमने स्त्रियों को कीड़ा का चोत्र, खेल-तमाशे की चीज़ श्रीर श्रपनी चालवाज़ी का शिकार वनाया, इसलिये कि वे भोली हैं, उनमें दया श्रिधिक है, वे प्रेम की मूर्ति हैं, वे संसार को बनाने वाली हैं, वे स्वयं भूखी रहकर दूसरों का पालन पोपण करती हैं। क्या यह कृत्रव्रता नहीं है ! छल हो हो हो छल हो हो हो छल हो हो हो छल हो हो छल है छल हो छल हो छल हो छल हो छल हो छल हो छल है छल हो छल है छल है छल है छल है छल हो छल है छल है

पक बहुत बड़े पाश्चात्य विद्वान ने लिखा है कि समस्त मनुष्य-जाति के इतिहास से सिद्ध है कि पुरुषों ने स्त्रियों के साथ बहुत बुरे भेद-भाव किये। नीति, धर्म, कानून, रीति-रिवाज, साहित्य श्रीर लोकमत में जहाँ देखें तहाँ पुरुषों की स्वार्थपरता श्रीर शरारत श्राँखों के सामने नाचती नज़र श्राती है। श्रगर पुरुषों का स्त्रियों के साथ श्रत्याचार न होता श्राता, तो निस्सन्देह श्राज जगत् जितना समुन्नत है, उससे बीस गुणा श्रधिक सभ्य, समुन्नत श्रीर विकसित होता। पुरुषों ने श्रज्ञानवश यह समक्ष लिया कि मनुष्य-जाति के विकास का नर ही एक प्रधान कारण है, श्रीर नारी श्रंग का इस काम में कोई हाथ ही नहीं है, यहाँ तक कि मानो वह है ही नहीं; श्रगर है भी तो पुरुषों की दासता के लिये, न कि बरावरी श्रीर सहकारिता के लिय। पुरुषों ने जन्मते ही श्रसंख्य लड़िकयों के गते घोट डाले, अगिष्त स्त्रियों को धर्म के नाम पर जला दिया। जो कहीं माताएँ भी जन्मते ही नारी-विरोधी नर-सन्तित का गला घोट डाला करतीं और पुरुषों को बलात् स्वर्ग-सुख भोगने के लिये भेजती रहतीं, तो आज हमारो क्या दशा होती ? लेकिन मातृ-शक्ति दयालु और बनानेवाली है, पुरुष बिगाड़ने वाला निर्दंय, और स्वार्थान्ध है।

श्राज पुरुष श्रपनी बुद्धि, विद्या, न्यायपरता पर श्रिमान करते हैं, श्रपने मुंह मियां मिट्टू वनते हैं, श्रपनी भलाई का ढोल पीटते हैं। इन्हें इतना ज्ञान नहीं कि इनमें जो कुछ सर- लता, भलमनसाहत श्रीर दया है, वह नारी के ही कारण है। मैं तो कहूँगा कि स्त्री खुदा है, तो पुरुष शैतान। हम स्त्रियों को खुदा के कपड़े वरतन के समान समसते हैं। हम उन्हें श्रपने भीग का पदार्थमात्र मानकर उन्हें पदें में पुतलियों की तरह सजाते हैं। हम श्रपने लिये वेश्याश्रों के वाज़ार स्थापित करते हैं। एक पुरुष श्रनेक स्त्रियों के साथ विवाह करता है। हम श्रसंख्य विधवाश्रों की रचना करके उन्हें ब्रह्मचर्य की श्रित्ता देकर धर्म श्रीर ब्रह्मचर्य का उपहास करते हैं—कैसी शर्म की बात है ? क्या इससे हमारा पतन निश्चित नहीं ?

स्त्री प्रेम का रूप है, स्नेह का जीता-जागता कानून है श्रीर द्या एवं धर्म की प्रति मूर्ति है। रूस के नवीन इतिहास में ,प्रोवेस्का' श्रादि श्रनेक देवियों ने जो काम किये, उनके लिए रूस के पुरुषों को उनका चिर-ऋषी रहना होगा; लेकिन ये देवियाँ पुरुषों की गुलामी के वन्यन से मुक्त थीं । यह मातृ-शक्ति की जीती-जागती ज्योति थीं, इसलिये इन्होंने पुरुषों का पथ-पदर्शन किया। पर्दे के अंदर की पुतलियाँ केवल घर में घुस वैठने की तथा कायरता और नीचता की ही शिला दे सकती हैं, पर इसमें इनका दोप नहीं। इन्हें पुरुष ने अपने श्राप ज़वरदस्ती जैसा वनाया वैसा वनीं। क्षियाँ बुरी नहीं होतीं, पुरुप इनके साथ बुराई करके इन्हें बुरा बनाते हैं, और अपने कृत्य का दुष्परिखाम भोगते हैं।

स्त्रियों की निर्वलता पर पुरुष हँसते हैं। इन वेचारों की पता नहीं कि यह प्रेम और जावन की खान हैं, इनके हाथ वनाने के लिये हैं, विगाड़ने के लिय नहीं। इन्हीं के कोमल श्रद्धों में नवजात शिशुश्रों का पालन सम्भव है। कठोर, क्रोधी पुरुषों में इन वच्चों की सेवा श्रीर लालन-पालन की शिक्त कहाँ शिश्रयों की कोमलता ही उनका एक बड़ा भारी वल है।

प्रकृति का गत इतिहास हमें वतलाता है कि नारी में श्राश्चर्य जनक संयमशीलता होती है। वह सदा से हमें श्रपने सद्गुण, श्रपने व्यवहार द्वारा सिखलाती श्रा रही है। स्वार्थ-त्याग, सहृद्या, सन्तोष, द्या श्रीर प्रेम की शिल्किका नारी ही है। प्रम्परा, जनश्रुति, इतिहास के वैज्ञानिक श्रटल नियम भी यही कहते हैं कि संसार के भावी महत् विकास के लिये रित्रयों का उख्वासनासीन होना वहुत ज़करी है। धर्म श्रीर नीति की जितनी गहरी छाप नारी-हृद्य पर पड़ी है श्रीर पड़ती है, उतनी पुरुषों पर नहीं पड़ती। कर्तन्य-परायणता का भाव, सरसता, मानसिक वेग श्रीर प्रेरणा का प्रावस्य नारियों में श्रीधक विद्यमान है। सामाजिक जीवन की जड़, खजा, सतीत्व, सदाचार, श्रीर विश्वसनीयता में नारी ने श्रपने को वहुत प्राचीनकाल से श्रादर्श बना रखा है। नशेचाज़ी, चोरी श्रादि हुर्गुणों में जितने पुरुष फँसते हैं, नारियाँ नहीं फँसतीं।

थोड़ी सी गम्भीर दृष्टि डालकर देखें तो हमें अपना निजका अनुभव वतलावेगा कि ख्रियाँ अपनी सहज समक्त से ही अपने स्वत्वों और दायित्वों को विचार कर जितने बड़े-बड़े काम कर डालती हैं, उतना ही यदि पुरुपों को करना पड़े, तो सेकड़ों अगर-मगर वाधक हो जायँ। क्षियों में अन्तरात्मा के आदेश बड़े प्रवल होते हैं, पुरुपों में काम के समय तर्क का प्रावल्य पाया जाता है। मुसीधत में जितनी जल्दी पुरुष धवड़ाते और वन्धन तुड़ाकर भागना चाहते हैं, स्त्रियाँ उतना नहीं धवड़ातीं। कर्तन्य-पालन में वे आनंद मानती हैं, पुरुप वोक समक्तकर कर्तन्य का पालन करते हैं। काम करने के समय हमारी नज़र वदले अर्थात् प्रतिफल पर रहती हैं, उनकी दृष्टि में काम को अन्छी तरह कर देने में ही आनन्द

का श्रनुभव होता है। मिलों श्रीर कारखानों में जाकर देखें, तो स्त्रियाँ श्रधिक श्रीर श्रन्छा काम करके देती हैं श्रीर कम वेतन पर संतुष्ट पाई जाती हैं। पुरुषों में यह बात नहीं होती। यह बात हमने मनोविज्ञान की दृष्टि से जिखी है, श्रीर बहुत श्रंशों में यह गुण उत्तम भी है। ज़रा सी भूल होने पर स्त्रियाँ स्वतः बहुत लिज्जत श्रीर दुःखी हो जाती हैं, किन्तु पुरुष श्रपनी भूलों को जल्दी स्वीकार करने से डरता है, उलटा उनका समर्थन करने की चेध्टा करने लगता है।

जितने भी बड़े आदमी देश-देशान्तरों में हुए हैं प्रायः सवों ने ही स्वीकार किया है कि उनकी समुन्ति में उनकी माताओं का हाथ प्रधान था। प्रवन्ध-शक्ति, संगठनशीलता और राष्ट्र निर्माण की अनुपम योग्यता माताओं से—घरों के प्रवंध में ही—वालक अञ्जी तरह सीख सकते हैं। स्त्रियाँ घरों में जिस तरह कपड़ों, वर्तनों और दूसरी चीज़ों को सम्हाल कर उचित स्थानों पर एक कम के साथ रखती हैं, उसी तरह वच्चों को भी अपनी चीज़ों के रखने की शिला देती रहती हैं। प्रत्यन्त में ही हम देखते हैं कि जिन वालकों की माताएँ लड़कपन में मर जाती हैं और दूसरी कोई कहनेवाली वृद्धा नहीं होती, उनमें सुज्यवस्थित-कप से रहने का गुण वहुत कम पाया जाता है। स्त्री घर की रानी है, हम उससे राज्य करना, हर एक काम की सुज्यवस्था करना और यथा-योग्य वर्ताव करना घर में ही सीख सकते हैं।

हमारी शिक्ता स्वभावतः माता की गोद से ही श्रारम्म होती है।

शोपेनहार जैसे विद्वान मनुष्य ने भी, जो स्त्रियों के प्रति दुर्भाव रखता था, कहा है कि "Intellectual qualities are transmitted to the offspring by the mother"— अर्थात् "माता ही संतित में प्रतिभा सम्बन्धी गुणों को फूँ कतो है।" इसिलिए माता का स्थान पिता से बहुत ऊँचा है। हिन्दुओं में तो यह बात बचा-बचा कहता है कि पिता के ऋणों से मुक्त हो सकते हैं, पर माता के ऋणों से कभी मुक्त नहीं हो सकते।

यह कौन कह सकता है कि जड़कियाँ जड़कों से श्रधिक चतुर श्रौर मनोहारिग्णी नहीं होतीं ? बुद्धि में वालिक।एँ बालकों से जल्दी प्रौढ़ होती हैं। नर-नारी-मनोविज्ञान का वड़ा भारी ज्ञाता श्रौर लेखक हैवलाक एलिस भी यही कहता है—

"Girls are more Precocious than boys" पुनः डी खूने कहता है:—"Among Children under the age of twelve teachers in mixed Schools find that girls are cleverer than boys."

मैं बहुत से विद्वानों के वाक्य उद्घृत करना श्रनावश्यक समभता हूँ, क्योंकि हाथ कंगन को श्रारसी क्या है। जो चाहे प्रत्यव श्रद्भभव कर सकता है। केवल एक उद्धरण, जो नीचे दिया जाता है, काफ़ी है:— When children of both sexes are educated to gether, it is the girls who are at the top during the first years, it is at that time above all, a question of the receiving impressions and Keeping them. we see every day that women by the vivacity of their impressions and their memory are superior to men who surround them.

## P. Lafitte

श्रर्थात्—"जव लड़के श्रीर लड़कियाँ साथ पढ़ती हैं, तो देखा जाता है कि पहले वर्षी में लड़िकयों का स्थान ऊँचा रहता है। वह बात को जल्दी हृद्यंगम करती श्रीर याद रखती हैं। हम प्रत्यक्त श्रनुभव करते हैं कि स्त्रियाँ श्रपनी स्मरण-शक्ति श्रीर सजग श्रहण शीलता के कारण श्रपने श्रास-पास के पुरुषों से श्रेस्टतर होती हैं।"

जो मित्र अमेरिका से होकर आये हैं, वे कहते हैं कि वहाँ लड़कों और लड़कियों को एक ही स्कूल में पढ़ाया जाता है। इसका फल यह हुआ है कि वहाँ योग्य अध्यापिकाएं बहुत पाई जाती हैं; और अध्यापिकाओं में शिला देने की योग्यता भी अध्यापकों से कहीं ज्यादा होती है। अमेरिका के स्कूलों में अध्यापिकाएँ ही अधिक हैं, और शिला का परिणाम भी उत्तम है। क्षियों का दिमाग पुरुषों से हेय या हलका नहीं होता। श्रिश्वापक 'वुशनर' ने विश्लेषण करके देखा श्रीर श्रसली श्राकार श्रीर शरीर के श्रमुणतामुसार श्राकार—दोनों ही का पुरुषों के दिमाग से मुकावला किया है। दोनों जाति के दिमाग शरीर के वोक्ष के हैंग से हैं तक होते हैं। श्रीर भी किसी दृष्टि से वह दिमाग में पुरुषों से पीछे नहीं हैं। ये वचीं के मानस को जितना समक्षती हैं, पुरुष उतना नहीं समक्षते। जिक सरलता, सुन्दरता श्रीर शीध्रता से किसी वात को वालकों के गले यह उतार सकती हैं, पुरुष के लिए वहुत दुस्तर है।

नारियों में नीतिमत्ता का भाव वहुत प्रवल श्रीर पुष्ट होता है। वे पुरुषों की तरह श्रमुचित हत्यों के लिए धर्म-शास्त्र का वहाना नहीं निकालतीं, पुरुष ही श्रपने दोषों के छिपाने के लिए ऐसा करते हैं। वेश्याश्रों का वाज़ार श्रीर स्त्रियों के श्रंदर फैला हुश्रा दुराचार पुरुषों की पापिष्ट श्राकां ज्ञाओं का फल है। श्रगर स्त्रियों की प्रवल काम-वासना से पुरुषों में बुराई फैली होती, तो स्त्रियों की सुविधा के लिए पुरुषों का वाज़ार होता, पर ऐसा संसार में कहीं नहीं है। इससे रूपष्ट है कि स्त्रियों की श्रपेला पुरुष ज्यादः नीच श्रीर पतित हैं।

जेलों में भी स्त्रियों से पुरुष की संख्या वड़ी-वड़ी मिलती है। श्रात्मधात करने की बीमारी भी पुरुष में ही , ज्यादा पाई जाती है, श्रोर पुरुषों में भो जो पढ़े-लिखे सममदार हैं वे ही श्रिधिक श्रात्मधात-स्पी वीमारों के शिकार होते हैं। यह वात पार्वात्य देशों के श्रंकों से स्वयंसिद्ध है, किन्तु ख़ास भारत के सम्यंध में निश्चय के साथ पेना कहने के लिए मेरे पास कोई श्राधार नहीं है। फिर भी में यह देखता हूँ कि स्त्रियाँ दूसरों से श्रत्यंत सताई जाने पर या दूसरों के हित के लिए कभी-कभी श्रात्मधात कर लेती हैं। ये पुरुषों की तरह सट्टा, जुशा चोरी, नशेवाज़ी से नष्ट-भ्रष्ट होकर धनाभाव के कारण श्रात्मधात नहीं करतीं। फिर पुरुषों में ६६ प्रति सो धर्मश्वजो होते हैं। यती, पुजारी, साधु, फ़कीर, खादिम—सारे के सारे धर्म के नाम पर धंधा करनेवाले मिलेंगे। किन्तु स्त्रियों में विश्वास मिलेगा, पैसा पुजाकर लेनेवाली स्त्रियाँ भी मिलेंगी, एर इनकी संख्या बहुत कम है, श्रोर पुरुषों के समान टिंगनी नहीं हैं।

एक बात निर्विवाद है कि ख्रियाँ जब हठ पर तुल जाती हैं, कोध या श्रावेश में श्रा जाती हैं, तो वे मानवी श्रभद्रता को भी पराकाष्टा तक पहुँचा देती हैं। फिर वह भय, लजा, विवेक, विचार, धर्म, कर्म सबको भूल जाती हैं, यह स्त्री-जाति के विचार की दृढ़ता के कारण होता है। वे पुरुषों की भाँति ढांले-ढाले इधर-उधर लुढ़कने-वाले स्वभाव की नहीं होतीं। पुरुषों के श्रत्याचार से पीड़ित स्त्री-जाति श्रव जगने लगी है इसलिए कभी-कभी उसे चंडी का सा भीषण रूप धारण करना ही पड़ता है। विलायत की स्त्रियों को राज-सभा के चुनाव में मत देने का, वकील, वैरिस्टर श्रीर जज श्रादि के पद पर श्रारूढ़ हो सकने का श्राधिकार तभी मिला, जब स्त्रियों ने उम्र रूप धारण किया। श्राज भारत में विध-वाश्रों की जो चुरी दशा है, उसको दूर करने के लिए उन्हें भी बहुत जल्द चामुएडा का उम्रतम रूप धारण करना पड़ेगा।

लेकिन प्रसंदता लियों में स्वभाव से ही नहीं होती, जैसा में ऊपर कह चुका हूँ। इनमें पुरुषों की भाँति पैदाइशी अपराध-प्रियता का अभाव होता है। एक विद्वान कहता है— "Congenital criminals are more frequently male than female, though women form the large proportion of the population they contribute but comparatively very small number to the prison, pauper and imbecile class of the community all over the world."

पुराने जमाने के विद्वानों ने स्त्रियों के कितने ही स्वभाविक दोष वतलाये हैं, लेकिन जब हम विचार-पूर्वक तह में जाकर देखते हैं, तो सारे ही मिथ्या और वनावटी प्रतीत होते हैं। यह कहना कि स्त्रियाँ कंजूस होती हैं, नितांत असत्य है। वे बड़ी उदार और त्याग-तत्पर होती हैं। उनके पास धन होता ही नहीं, वे पुरुषों के हाथ का दिया हुआ थोड़ा सा पैसा पाती हैं, तव उदारता पूर्वक ख़र्च करना कैसे सम्भव है? जहाँ स्त्रियाँ धन उपीजन करती हैं, वहाँ वे पुरुषों के समान ख़र्च भी करती हैं। गुलाम, मजूर, दरिद्री निश्चय ही कंजूस होता है, चाहे स्त्री हो या पुरुष।

निर्दयना का दोष भी भारतीय नीतिज्ञता का दम भरने वालों ने इन दयामूर्ति देवियों पर लगाया है, लेकिन मैं ऊपर वतलाचुका हूँ कि पुरुष स्त्रियों को जला सकते हैं, लड़िकयों को मार सकते हैं, पर स्त्रियों ने पेसा कभी नहीं किया। फिर निर्दय कीन है ?

कहते हैं स्त्रियाँ मूद्र श्रीर श्रज्ञान होती हैं। ठीक, श्रगर श्रद्धों श्रीर स्त्रियों को पढ़ाना लिखाना वन्द करके पौथी लिखने वाले उन पर श्रज्ञानता का दोष लगावें, तो श्रपराधी कौन ? पंडित लोग।

जव कभी स्त्रियों को श्रवसर मिला है, उन्होंने दिखला दिया है कि वे पुरुष की शिक्तिका श्रीर गुरु वन सकती हैं। संसार के किसी भी काम में स्त्रियाँ श्रपनी नैसर्गिक निर्वलता के कारण पीछे नहीं रह सकतीं, श्रगर पुरुषों का श्रत्याचार इन पर नहीं। जेल में रहने से जैसे मनुष्य दुराचारियों का गुरु घएटाल बन जाता है, उसी तरह स्त्रियों को भी पुरुषों के बन्धन में रहने से श्रनेक दुराइयाँ श्रा घेरती हैं, फिर भी ये पुरुषों से हज़ार घार श्रच्छी हैं।

जिन स्त्रियों को वाहर खेतों श्रादि में काम करने का श्रवसर मिलता रहता है, वे शारीरिक वल में कम नहीं होतीं। हम उन्हें घरों में वन्द करके श्रवला बनाते हैं। जिन्हें शिला के मैदान में दौड़ने का मौक़ा मिलता है, वे हमें फिसड़ी बना छोड़ती हैं। इसी तरह श्रीर वातों में भी श्रवसर मिलने पर वे पुरुषों से श्रागे वढ़ सकती हैं। जिस तरह शरीर की समुन्नति के लिप उसके श्रंगों के वृद्धि के साधन होते हैं, वैसे ही मिन्तक के भी। हम भारत में स्त्रियों को शारीरिक श्रीर मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति से श्रेनक गुणा श्रेष्ठ है। स्त्रियों में जो चृटियाँ देखी जाती हैं, ये नैसर्गिक या स्वाभाविक नहीं, किन्तु बनावटी हैं, श्रीर इन सब के जिम्मेदार परुष हैं, न कि स्त्रियाँ।

<sup>(</sup>यह लेख सितम्बर १९२९ के विशाल भारत में छपा था। इस सिल्फिले का एक लेख भीर था पर प्राप्त न हो सका)





सार के विश्वस्त इतिहास के जन्म-काल से आज-पर्यन्त के मनुष्य-जीवन और मानव-समाज की श्राता-पर्यन्त के मनुष्य-जीवन और मानव-समाज की उच्च वनाने वाली महा-शक्ति है। वेटी, विहन या पत्नी के रूप में स्त्री ने समाज का न इतना उपकार किया, न उस पर इतना प्रभाव उाला जितना, माता वन कर। इसीलिए माता का स्थान सबसे, यहाँ तक कि पिता, राजा और गुरु से भी, ऊँचा माना गया है। श्रार्यनीति-कारों ने श्रनेक स्थलों पर स्पष्ट कहा है कि माता का ऋण मनुष्य कभी नहीं चुका सकतो। कुपुत्र बहुत होते हैं, पर कुमाता नहीं होती। मातृ-मिहमा की वावत एक स्थल पर श्रीव सादी कहता है:—

श्राँ कुन कि रिजाय मादरानस्त । फिरदौस ज़ेर कफ़े पाय मादरानस्त । (१७३) श्रर्थात्—वही काम करो जो माताश्रों की श्राज्ञानुसार हो, क्योंकि माताश्रों के पैर के तलुश्रों के तले स्वर्ग है।

मनुष्य-जाति ने सदा माताओं की पूजा और प्रतिष्टा की है, भिक्तपूर्वक मनुष्य ने श्रादिकाल से ही माताओं के श्रागे सर भुकाया है। पत्नी के रूप में जहाँ स्त्री सेवा करती रही है, वहाँ वह माता के रूप में शासन करती चली श्राती है। पत्नी श्राज्ञा मानने वाली होती है श्रीर माता श्राज्ञा देने वाली। मातृत्व का सम्बन्ध ही वच्चों को उनकी साहजिक वुद्धि के श्रनुसार प्रतिष्ठा करने को वाध्य करता है।

सव कर्णों और युगों में माता ही धारण व पालन करने वाली धर्म का कपान्तर पाई जाती है, वहीं संरित्तका और मनुष्य जाित की ग्रादिम शिक्तिका है। मनुष्य-जाित के ऐतिहासिक रङ्ग-मञ्ज पर माता का ग्राभनय श्रात्यन्त क्मरणीय श्रार महत्वपूर्ण पाया जाता है। माता के ही हाथ समाजिकता को श्रारम्भ करने वाले हाथ हैं, माता पालने पर हमें सुला कर उसे हिलाते हुए, सभ्यता के पथ पर श्रग्रसर करती है, माता ही भाई-विहनों को परस्पर प्रेम करने की शिला देती है, गान गाकर, सिखाकर भागु-भाव उत्पन्न करती है। माता ही युवा लड़कों श्रीर लड़कियों को दाम्पत्य प्रेम श्रीर जीवन की ज्यावहारिक शिला देती है—सार यह कि माता ही सामाजिक सम्बन्धों की निर्मात्री शक्ति है, सामाजिकता की

जन्मदात्री है। वचपन के सुख, जवानी के श्रानन्द, नैतिक श्रीर समाजिक योग्यताएँ माता के हो द्वारा प्राप्त होती हैं। माता ही हमें सभ्य वनाती, हमारा जङ्गलीपन छुड़ाती है—नास्ति माता समोगुरुः।

सावयवीय (Organic) प्रकृति का एक महदुद्देश्य माताओं को रचना था। सब से बड़ा काम जो प्रकृति ने किया यही है, इसमें तिनक भी सन्देह नहीं। यह दायित्व माता को पदे-पदे सावधान करता रहता है श्रीर बचों के हृदय में माता के प्रति तित्य नई श्राद्धा उत्पन्न करता है। प्रकृति के उच्च मन्तव्य में इस बात का नया विश्वास उत्पन्न होता है कि समस्त उद्भिज श्रीर पिएडज-जगत् में उसका श्रीममत एक ऐसे कुल का उत्पन्न करना था, जिसे बचा देनेवाला प्राणी कहते हैं। समस्त प्राणियों को माता के गर्भ में निवास करना श्रीर माता के श्राक्षित रह कर श्रपने भावी जीवन के लिए शिक्षा प्रहण करनी पड़तो है। माता के प्रेम छोटे-वड़े सभी प्राणियों में प्रकट दीखता है। कीड़े-मकोड़े भी श्रपने श्रित लघु जीवन में श्रपने बच्चों के भावी सुख श्रीर खान-पान के लिए परिवेष्टित परिकर श्रीर वातावरण के श्रजुसार उचित प्रवन्ध में नहीं चूकते।

इसी प्रकार मकोड़ों, चिड़ियों श्रादि का परियावेचण करते हुए हम क्रमशः मनुष्य-श्रेणी पर पहुँचते हैं, तो हमें मानृत्व की महत्ता कहीं श्रधिक ऊँची नज़र श्राने लगती है। कोल,

भील, नागा, परिया जिन्हें महात्र्यविद्या-ग्रस्त जङ्गली समभा जाता है, उनकी मताएँ भो जव श्रपने प्रथम नवजात वच्चे को गोद में लेकर खेलाती श्रौर प्यार करती हैं तो उनके विचार, उनकी भावन।एँ श्रीर उनकी परिकल्पनाएँ न जाने कितने उच लोक तक उड़ान मारती हैं। माता श्रपने को भूल कर, श्रपने परिकर श्रीर परिकोटे की परवा न कर के निर्वत श्रीर निस्त-हाय वच्चे की रक्षा के लिए सर्वथा द्यां से पिछली रहती है। श्रपने बेटे-वेटी के लिए ही नहीं किन्तु प्रत्येक प्राणी के लिए, क्योंकि माता बनते ही उसका हृद्य दिग्दिगन्तव्यापी करुणा श्रीर श्रनुकम्पा से छलक उठता है। माताश्रों के ही कष्ट-सहन से मनुष्यता का जन्म होता है श्रीर यह मनुष्यता उसके स्वभाव को दिन-दिन श्रिधिक प्रेममयी, उच्च श्रौर कृपालु बनाती रहती है। माता इतनी कोमल-हृत्, दयालु, प्रेम-परिपूर्ण होते हुए भी श्रपने वच्चे की रत्ना के समय प्रवत्त हिंसक प्राणी के सामने श्रपने में श्रमोघ श्रीर श्रतुल चातुरी श्रीर बल का श्रनुभव करती है, श्रौर प्राण-विसर्जन करने को प्रस्तुत हो जाती है। माता ऋपने वच्चों की रज्ञा के समय जो वीरता, प्रचएडता श्रीर उन्नता घारण करती है, वह त्रातुल, श्रनुपम श्रौर श्रादर्श होती है।

संसार के सारे प्रेमों में बच्चों के प्रति माता का प्रेम सब श्रवस्था में श्रत्यन्त हुड़, श्रमिट, प्रभावशाली श्रीर निस्स्वार्थ होता है। इतनी उत्कृष्ट प्रेम की प्रतिमा संसार में श्रन्यत्र कहीं नहीं देखी जाती। माता मनुष्य जाति की श्रिधिष्ठत्री श्रीर स्री-पुरुष दोनों की समान सम्पत्ति है, दोनों के लिए श्रादर्श श्रीर पूजाई है।

माता का श्रादर्श पृथ्वी-माता में भी मिलता है, वह हमारा पालन करती है, हमें गोद में सँभाले रहती है, हमें खाने को देती है, हमारी सान्त्वना करती है, हममें नित्य श्रभिनव जीवन, प्राण श्रीर शक्ति सञ्चार करतो है, श्रीर मरने के पश्चात् शान्ति के साथ हमें थके हुए वालक के समान श्रपनी पवित्र गोद में सुला लेती है।

हम देखते हैं कि सारे भूमएडल में उत्कृष्ट शक्तियों के नाम श्रीर रूप सब स्नो के ही हैं। सरस्वती, विद्या, बीरता, चतुरता इत्यादि हिन्दुश्रों में, श्रक्क, दानिश, श्रुजाश्रत इत्याहि ईरान श्रीर श्ररव वालों में, जस्टिस, इकेलिटी, लिवर्टी श्रादि यूरोप में इत्यादि-इत्यादि।

प्रकट है संसार में किसी ने भी मातृ-शक्ति की श्रवज्ञा नहीं की, उसे श्रपराध नहीं लगाया, न उसे भूला। श्रादर्श माता की सब जगह पुजा होती है; प्रतिष्ठा श्रीर शीति व परतीत होती है। कल्पान्तर में माता ने वर्तमान पूर्णता प्राप्त की है श्रीर दिन-दिन वह मातृत्व ज्ञान के मार्ग पर श्रग्रसर होती जा रही है। माता हमेशा यहो सोचती, चाहतो श्रीर विश्वास करती है कि मेरा पुत्र देवमूर्ति, सर्व-गुण-सम्पन्न होगा। श्रत्यन्त कुमार्गी पुत्रों में भी पूर्ण-स्नेह रखते हुए, माता यही विश्वास करतो है कि समय पाकर यह श्रव्हा हो जायगा। जब पुत्र हिम्मत हार कर, दुखी होकर, कष्ट के समय हतप्रतिभ होकर घर में वैठ जाता है तो माता उसे हुँस कर प्रोत्साहन देती है। माता स्वयम् वीरों की तरह कष्ट सहन करने को तैयार रहती है श्रीर समय पड़ने पर वच्चों को काठनाइयाँ को निर्भीकता के साथ सामना करने के लिए तैयार करती है। भारत के इतिहास-गत वीर-गथाश्रों में हमारे कथन का जीता-जागता प्रमाण हज़ारों स्थल पर मिलेगा।

माता को वच्चे को जन्म देने में अत्यन्त कप्ट का सामना करना पड़ता है, फिर भी वह वच्चों को जन्म देना अपने वड़े लोभाग्य की वात समभातो है। हिन्दू माताएँ अपनी वधुओं को नमस्तार के उत्तर में जो आशीर्वाद देती हैं, उससे उनके हार्दिक भाव का ख़ूब पता लगता है। जब कोई वधू आकर किसी बुद्धा के पार्वों को स्पर्श करती है तो बुद्धा कहती हैं—'शीलवती सौभाग्यवती, पुत्रवती रही' अर्थात्—'तुम पिट अनुरक्ता, सौभाग्यवती और पुत्रवती रहो।' इन वाक्यों में हमारो पाचीन आर्थ-सभ्यता का एक छोटा सा इतिहास भरा है, जिस पर प्रत्येक हिन्दू वालक को अभिमान होना स्वामाविक है। मुसलमानों की सभ्यता भी मातृ-प्रेम और

शार्य से ख़ाली नहीं है, हमें अरव का इतिहास इस बात की साित देता है।

िल्लयों की क्या यह कम वहादुरी है कि मनुष्य-जाति को नए न होने देने के लिए, उसे संसार में बनाए रखने के निमित्त, निर्वल होते हुए, जान-बूभ कर अपने प्राणों को सङ्कट में डाल देती है। यह मातु-श्रक्ति को महिमा है, उसका असीम स्नेह है। सच तो यह है कि माता ही के द्वारा, मनुष्य-भक्ति का सच्चा पाठ, मनुष्य पढ़ सकता है, प्रत्यक्त सीख सकता है और संस्तृत के कल्याण के लिए कप्ट उठाने की हिम्मत कर सकता है।

विज्ञान की क्रमशः उन्नित के साथ-साथ हमारा सामाजिक ज्ञान, कर्तव्य-ज्ञान श्रीर पवित्र श्रमिलापाएँ भी बढ़ती जाती हैं। ज्ञान श्रीर ज्ञातव्य के वीच में नई-नई संयोग-श्रक्कला उत्पन्न होती रहती हैं। मन का शरीर पर, शरीर का। मन पर, इसी तरह पक्ष श्रद्ध को दूसरे श्रद्ध पर, जो प्रभाव पड़ता रहता है, उनसे प्रत्यद्धों की पारस्परिक समवेदना का पता चलता है। इसलिए समुचित नर-नारी की उत्पत्ति के लिए मातृत्व की पवित्र श्रवस्था पर भी हमारा विचार रहना ज़करी है। श्रादमी वैसा ही बनता है, जैसा उन्हें माताएँ बनाती हैं। इसलिए माताश्रों की ज़िम्मेदारी वहुत बड़ी है। हुमाता का श्रसीम प्रेम स्वाभाविक है, किन्तु मनुष्य-जाति के इतिहास के ज्ञान के साथ उन्हें देखना होगा कि वह प्यार सन्तित में

मनुष्यता उत्पादन करने के लिए काम में लाने की श्रावश्यकता है। माताएँ वचों को मनुष्य बनाएँ, उन्हें साँप, विच्छू श्रीर भेड़िए न वनाएँ। हाँ, उनमें इतनी शक्ति श्रवश्य उत्पन्न कर दें! कि वह साँप, विच्छू श्रीर भेड़ियों को समय पर नाश करने में श्रसमर्थ न रहें।

विज्ञान की वृद्धि और वर्तमान जगत् के अनुभव के लाध-साध हम देखने लगे हैं कि आजकल मानव जगत् में नियम, श्टिल्ला और विचार-शीलता जो समाज को हितकारी हैं, थोथे आनन्द के लिए ध्यान से हटा दिये जाते हैं। इसीलिए मनुष्य-समाज के विद्वान चाहते हैं कि वश्चे कम उत्पन्न हों तो चिन्ता नहीं किन्तु जो हो वह निरोग, सुयोग्य, मानवं-कुल-भूषण हों।

हम श्रपने श्रभागे भारत में देखते हैं कि मात। एँ देश की जनसंख्या की वृद्धि बड़े कष्ट सहन करके सीमातीत करती जा रही हैं। यह नहीं देखतीं श्रीर समभतीं की इनके वच्चे हाँ हरास, हमरा, केनिया, यूगेएडा, ट्रान्सवाल, श्रासाम श्रादि स्थानों में कुली का काम करते हैं, श्रथवा विदेशियों का मुँद १५)-२०) रुपये मासिक की नौकरियों के लिए ताकते रहते हैं। माताश्रों को जान लेना चाहिए, उनका धर्म है कि शेर, श्रूर, बीर, ज्ञानी, मनुष्य-कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले वच्चों को जनम देना, न कि गीदड़ों से देश को भरना। भीख माँगने वाले, विना घर-वार सड़कों पर दिन-रात विताने वाले, दूसरों

के लिए रात-दिन श्रम करके भूखे सोने के लिए वाध्य मनुष्य नारी हो या नर, न श्रपना मुँह उडडवल करता है न श्रपने माता-पिता का, न श्रपनी जाति, श्रपने देश श्रीर मनुष्य-समाज का।

पक नीतिकार कहता है कि-

गुणिगण गणनारम्भे न पतित कठिनी यस्यसम्ब्रमः। तस्य माता यदि सुतनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम।

त्रर्थात्—"गुणियों में जिसका नाम पहले न त्राया उस की माता भी पुत्रवती कहलाती है तो फिर वन्ध्या कौन सी है ?" यहाँ किव न्यक्ष के साथ कहता है कि गुण, हीन, गीदड़ को जो माता जन्म देती है, वह वन्ध्या के समान है। मातु-शिक चाहे तो देश की इस बुराई को हटा सकती है। हमें श्राशा है कि भावी श्रीर वर्तमान मातायँ इस श्रोर ध्यान देंगी। बहुत वच्चों के जन्म से देश का महत्व नहीं बढ़ता, किन्तु मनुष्य-समाज-हितकारी वच्चों की उत्पत्ति से देश पूष्प श्रीर प्रतिष्ठित होता है। सुस्थ माता-पिता सुस्थ वच्चों को जन्म दें, उन्हें मनुष्योचित स्वाभिमान, देशाभिमान, सांसारिक ज्ञान से परिपूर्ण करें। इसके विपरीत श्राचरण से देश को निकम्मे श्रादमियों से भरनापाप है।

माता को उचित है कि एक सन्तान होने के बाद पाँच वर्ष पर्यन्त, विक सात वर्ष तक दूसरी सन्तित को जन्म देने का कप्ट न उठावें। नर-नारी का विवाह-संयोग तभी होना उचित है, जब वह उत्तम सन्तान पैदा करने की कामना करें। हमारी समक्ष में सन्तान-निग्रह के उचित उपाय बुरे नहीं हैं। हम कभी दूसरे लेख में इस विषय पर तर्क करेंगे। क्योंकि वहुत समय तक वलात् ब्रह्मचर्य रखने से नर-नारी दोनों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, यह विज्ञान सिद्ध वात है। श्रयुर्वेद इस विषय में बहुत सी ज्ञातब्य वातें वतलाता है।

प्रत्येक द्रम्पित को सावधान किया जाता है कि गर्भस्थित के वाद काम-वासना की तृति के लिए उनका मिलना गर्भाशय को ज़राव करता है, गर्भस्थ प्राणी श्रीर उसकी माता को बहुत हानि पहुँचाता है।

पक श्रद्भरेज़ हम पशिया-निवासियों पर न्यद्भ करता है
श्रीर कहता है कि "चीनी श्रीर हिन्दुस्तानी श्रधिक सन्तान
खत्पन्न करने वाली जाँतियाँ हैं, इस मामले में इनसे बढ़ी-चढ़ी
श्रीर कोई जाति नहीं है। लेकिन किसी जाति का बड़प्पन मोल
से होता है तोल से नहीं। श्रयांत् गुण से जाति पुजती है,
घहुत श्रादमी होने से नहीं। बहुत से कपूत किसी काम के
नहीं, थोड़े से सप्त सब कुछ होते हैं। एक मज़बूत ऐंक्रलो
सेक्शन करोड़ों की संख्या वाले दस निर्वल से लोहा ले
सकता है।" क्या यह वात पशिया वालों के विचार करने की
नहीं है ? इसलिए हमने कहा है कि श्रगर हम शेर पैदा कर
सकते हैं तो करें, श्रीर गीदड़ों का पैदा करना वन्द कर हैं।

श्रार्य विद्वानों श्रीर जर्मनी के शास्त्रज्ञों का मत है कि-

१—पुरुषों को २५ वर्ष की श्रवस्था के पहले विवाह न करना चाहिए। श्रगर करेंगे तो उनके बच्चे सुरुथ श्रीर शक्ति-शाली न होंगे।

२—कोई स्त्री जो तीस वर्ष से कम श्रवस्था की हो, ३०-३५ वर्ष की श्रवस्था तक हो, उसे चाहिए कि ५० वर्ष से श्रिधिक श्रवस्था वाले पुरुष के साथ विवाह न करे। हाँ, यदि वह निर्वल श्रीर रोगी सन्तान उत्हन्न करना चाहती हो तो दूसरी बात है।

३—जब तक सारे श्रङ्ग परिपक्ष व परिपुष्ट न हो जायँ, स्त्रियों को सन्तानोत्पत्ति की श्रोर ध्यान न देना चाहिए। श्रष्ट्या हो जो २५ वर्ष की श्रवस्था तक स्त्रियाँ माता बनने की चेष्टा न करें।

इक्ष्लैग्ड में भी ५,०००,६,००० स्वियाँ प्रस्तिका-गृह में
प्राण विसर्जन कर देती हैं। भारत में इस तरह की मरने वाले
लड़िक्यों की संख्या और भी अधिक है। इससे स्पष्ट है कि
इस सम्बन्ध में सामाजिक सुधार की वड़ी ज़करत है। अन्य
देश की महिलाओं ने इस पर भ्यान दिया है, परन्तु भारत के
कहर हिन्दू मुसलमान अभी आँखें बन्द करके गढ़े में
उतरने को तैयार देखे जाते हैं। आजकल भी शारदा-ऐक्ट
के विरोध में मौलवी साहव और पिउत महाराज ज़मीन
और आकाश हिलाये डालते हैं।

पक विद्वान् कहता है कि स्त्री-पुरुष संयोग सन्तानीति के लिए है। जब किसी पुरुष श्रीर स्त्री में सन्तानीत्पत्ति की योग्यता पैदा हो जाय—नर को नारी की श्रीर नारी को नर की श्रावस्थकता प्रतीत होने लगे, तो दोनों मिलकर सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। बलात् ब्रह्मचर्य रखने से स्त्री हो या पुरुप सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता खो वैठता है। इसलिए बलात् ब्रह्मचर्य का बन्धन श्रीर श्रवस्था व्यवस्था का भगड़ा सब पर न लगाना चाहिए। श्रावश्यकता होने से सन्तान-नित्रह के साधन काम में लाए जा सकते हैं। लेकिन हम यहाँ इस विद्वान् के मत पर सविस्तर लिखना नहीं चाहते।

पक मूर्ष वमएडी ऐहलों सेक्शन कहता है कि श्रहरेज़ों को श्रपना शाही एक शुद्ध रखने के लिए रङ्ग वाली स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न न करनी चाहिए। माँश्रों को चाहिए कि श्रपने पुत्रों को समस्राया करें, ताकि वह ऐसा निषद्ध काम न करें। इस वेचारे को स्वतन्त्रता, प्रेम-स्वातन्त्र्य मनुष्य-जाति मात्र के वन्धुत्व का क्या पता श्रयह तो श्रपने जातीय प्रेम श्रीर विजातियों के प्रति होह के नशे में चूर है। इसी नीच मनोवृत्ति को श्रद्धरेज़ी में Chauvinism (शोविनिज़म) कहते हैं। जो हो, श्रव २० वीं सदी में यह वेहदगी नहीं चल सकती। श्रव तो मनुष्य मात्र की एक जाति होगी। मनुष्य का वधा किसी लनुष्य की ही बधी के साथ विवाह करता

है तो उसमें पाप नहीं; परन्तु विवाह सन्छन्द प्रेम से हो, श्रन्य किसी कारणवश नहीं।

लेकिन एक वात अवश्य ही संयुक्त होने वाले लड़के और लड़की को समक रखना चाहिए कि सन्तित में माता-पिता के गुणों, दोषों और स्वभाव का प्रायः प्रभाव देखा जाता है, जिसे अक्तरेज़ी में Heredity (हिरेडिटी) कहते हैं। माताएँ अपना अधिक प्रभाव सन्तान पर डालती हैं, इसलिए अगर वह चाहें तो अपने शरीर को सुस्थ रख कर अपने वच्चों को अच्छा वना सकती हैं। वहुधा यह भी देखा गया है कि माताएँ अपने सद्भाव, सद्विचार और प्रेम से वच्चों को जीत लेती हैं और उनमें पिता के अवगुण जो आते हैं उन को मिटा देती हैं।



यह लेख भविष्य वर्ष २ खएड १ सं० १ में सत्य वीर के .नाम से मैंने लिखा था।



हतों का यह कहना है श्रीर वहुत वडी हह तक ठीक भी है कि स्त्रियों की भिन्न प्रधांत नीची परिस्थित का कारण उनके लिंग की विशेषता है। स्त्रियों को स्त्री होने के ही कारण उन्हें पुरुषों पर निर्भर होना पड़ा। लेकिन यह वात इम आजकल की अवस्था और व्यवस्था को देखकर कह सकते हैं, वहुत प्राचीनकाल में यह वात न थी। क्योंकि मनुष्य पशुता से उन्नत होकर मनुष्यता तक पहुँचा है। पशुत्रों में लिंग भेदं के कारण नर मादा को छोटा नहीं समभता, न मादा नर से निर्वल ही होती है। इससे स्पष्ट है कि स्रारम्भ में मनुष्य में ऐसा भाव नहीं था जिसकी इस लेख के श्रारम में चर्चा की गई है। श्रफ़्रीका, श्रास्ट्रेलिया श्रीर एशिया की श्रनेक जातियों में जिनको सभ्यता का रोग श्रभी तक नहीं चिमटा, हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। स्त्री और श्रम' (Woman and labour) नाम की पुस्तक में 'Olive

schreiner' ने स्त्रियों के क्रमशः पराधीन होने का युक्ति-युक्त वर्णन किया है। वेविल Bebel प्रभृति श्रौर भी श्रनेक लेखकों ने इस विषय पर जो प्रकाश डाला है वह समीचीन प्रतीत होता है। धनस्त्रा की वृद्धि के साध-साथ भोग-विसाल की भी वृद्धि हुई। इस किया में नैसिंगकता श्रौर प्रेम के स्थान को कृत्रिमता श्रौर हीन वासनाश्रों ने श्रात्मसात् कर लिया। तब एक श्रात्मवल श्रौर साधन का बहाना निकला, मानों निसर्ग को मध्यगामी वनाये रखने के लिए स्वाभाविक वासना के विरुद्ध काम का नाश करनेवाला दुधारा तैयार किया गया।

कितने ही श्रिभमानी, पाणिडत्य श्रीर चातुर्थं के श्रजीणें से पीड़ित बहक उठते हैं कि 'स्वाभायिक' कामेच्छा (जिसे हमने कामवासना कहा है) नर नारी वश में कर सकते हैं। काम की सन्तृत्त कोई ऐसी श्रावश्यकता नहीं है जिसकी उपेता न की जा सके। हमारे देश के नये श्रीर पुराने सभी महात्माश्रों में, इस मामले का नहीं तक सम्बन्ध है, बुद्धि-श्रजीणिंगेण पाया जाता है। क्योंकि इनकी राय में जो मनुष्य विना श्राहार, वायु श्रीर प्रकाश के नहीं जो सकता, वह श्रपनी भूख, प्यास श्रीर शङ्काशों को विलक्जल रोकने में श्रसमर्थ है किन्तु नैसर्गिक मैथुन की इच्छा को वह श्रनायास ही रोक सकता है। काम संतृत्ति कोई श्रावश्यकीय वात नहीं है।

नोट—हीन काम वासना-धन को बीच में डालकर तृप्त की जाती है।

सुतरां इस संतृष्ति के कारण जो पराधीनता होंती है उससे हम सहज ही वच सकते हैं।

श्रव पाठक सुकसे खुनें कि संसार की नैसर्गिक प्रगति हमें क्या प्रत्यज्ञ कराती है। कोई विरत्ना मनुष्य ऐसा वाल्य-काल से अभ्यस्त हो गया हो जो नामदों की तरह अपना जीवन सुखेन व्यतीत कर दे तो उसका होना श्रसम्भव नहीं कहा जा सकता। लेकिन याद रहे कि निसर्ग के इस नियम के तोड़ने का दग्ड उसे पूरा-पूरा उठाना पड़ता है। क्योंकि निसर्ग ने प्राणियों के जोड़े सुध्ट में उसके वंश को स्थिर रखने के हेतु बनाये हैं, इसीलिए प्राणी मैथुन की छोड़ नहीं सकता। एक दो निसर्ग के विरुद्ध चलने वाले श्रति ज्ञानी प्रकृति के नियम को नहीं वदल सकते । जैन तीर्थंक्कर, वुद्धदेव, महातमा मसीह श्रीर महातमा गांधी सारे संसार को नितान्त शान्तिशील वनाने में श्रपनी हार मान कर मैदान से हट गये, तो श्रव वह कौन सी शक्ति है जो संसार के नर-नारियों को शाण-हीन, केवल कान, वनाकर शान्ति की मूर्ति स्थापित कर सकता है । मैंने इन महात्मात्रों के नाम इसलिए गिनाये हैं कि यह सब चाहते थे कि लोग मैयुन छोड़ दें श्रौर सीधे श्रानन्दलोक में जा वसें। सिवा महात्मा गांधी के सब एकाकी तपस्त्री थे। महात्माजी श्रमी वर्तमान हैं इसलिए उनके श्राश्रम श्रीर शिद्धा के फल पर विशेष लिखने की श्रावश्यकता नहीं जो चार्दे उनके समीप रह कर देख सकते हैं। सारांश यह

कि कोई इक्का दुका न्यक्ति ऐसी सामजिक परिस्थिति को नहीं वदल सकता जो मनुष्य में स्वाभाविक है। इसलिए जो जवाव महात्मा लोग देते हैं वह ऊपरी श्रीर निस्सार है।

इस विषय में मार्टिन लूथर की उक्ति ठीक जँचती है। यह कहते हैं कि "जो स्वाभाविक मानसिक श्रमुरोध या प्रगति का विरोध करता है श्रीर प्रकृति के काम में वाधा डालता, है, उसे श्रपना काम करने के लिए स्वतन्त्र नहीं छोड़ता, वह निःसन्देह यही चाहता है कि प्रकृति न रहे। श्राग से जलाने का, पानी से भिगोने का काम छुड़ा दिया जाय श्रीर मनुष्य का खाना, पीना, सोना श्रादि वन्द कर दिया जाय।" हाँ, एक वात मनु वावाकी श्रवश्य सारगर्भित मालूम पड़ती है श्रीर वह यह है कि एक स्त्रों के साथ पुरुष श्रमुगामी रह कर जीवन न्यतीत करें तो वह श्रह्मचारी ही है।

वासनाएँ शारीरिक हो श्रथवा मानसिक, श्रनर्थं बरावर करती हैं।

स्त्री पुरुषों का संयोग एक प्राकृतिक पवित्र नियम है, जो मनुष्य को सुखी, सुस्थ, प्रसन्न श्रौर नियमानुसार जीवित रखता है। जो शरीर के किसी भी श्रवयव को उसके नैसर्गिक काम से रोकेगा वह उसे श्रौर उसके सारे शरीर को निकम्मा वना डालेगा। नैसर्गिक वासनाश्रों की संतृप्ति से इन्कार करना भूल है। जो श्रवयव जिस काम के लिए बना है वह उस काम को श्रवश्य करे। यदि ऐसा न होगा तो उसका

चह श्रवयव जो श्रपने काम से रोका जायगा, जुझा श्रीर वेकार हो जायगा। यहाँ तक कि सारा शरीर एक प्रकार से दृषित होकर रहेगा। मनोविज्ञान का श्रप्रययन करके जैसे मानसिक कियाश्रों को उपयोगी बनाने की चेष्टा करते रहते हैं उसी तरह हमें शरीर के सम्बन्ध में भी करना चाहिए। विना शारीरिक सुस्थता के मानसिक सुस्थता श्रीर विन मानसिक सुस्थता के शारीरिक सुस्थता का स्थिर रहना श्रसम्भव है। शारीरिक या पाशविक वासनाश्रों श्रीर मानसिक वासनाश्रों का दर्जा वरावर है। एक का दूसरे पर परस्पर प्रभाव पड़ता है।

स्त्री श्रीर पुरुष को मिलाकर हिंदू शास्त्रों ने पूरा शरीर भाना है, इसी से स्त्री पुरुष की अर्द्धक़नी कही गई है। इसी को जर्मनी के दार्शनिक शिरोमणि "कांट" ने भी माना है। "स्त्रो श्रीर पुरुष संयुक्त होकर एक पूर्ण प्राणी का प्रतिष्ठान करते हैं, एक दूसरे की अपूर्णता को दूर करके पूर्ण बनाते हैं। शांपेनहार श्रीर मेनलाएडर के सिवा भगवान् बुद्धि कहते हैं कि कन्दर्ण का वाण हाथी को वशवतीं करने वाले श्रंकुश से कहीं श्रधिक तीक्ष्ण है। यह श्रिप्त ज्वाला से श्रधिक तम होता है, यह वह वाण है जो शरीर को नहीं किन्तु मनुष्य के हदय (दिल) को वेधता है। क्या यह निसर्ग का काम व्यर्थ है दिसका विरोध प्राणी कर सकता है है संयम दूसरी चीज़ है श्रीर यावर्क्षावन ज़बरदस्ती श्रद्धन ब्रह्मचर्थ के रखने की

घोर श्रनधंकारी वात दूसरी है। यह वात स्त्री श्रोर पुरुष दोनों पर एक समान घटतो है। विधवा श्रोर वृद्ध विवाह की रोक श्रनर्थ के हेतु होते हैं। यह हम भारतवासी प्रत्यक्ष देख रहे हैं। हां धन, वल या छुल से श्रनमेल विवाह हो यह समाज के लिये श्रहितकर।

यह वात कुछ जँवती है कि स्त्रो हो या पुरुष यदि धार्मिक भावना से ब्रह्मचर्य रखे तो श्रच्छा ही है। लेकिन मेरा वैयक्तिक श्रमुभव इस सिद्धान्त के विरुद्ध जाता है। मेरी स्त्रो का देहान्त सन् १८६४ में हुशा, जब कि मैं केवल २० वर्ष का युवक था। मेरे घराने में विधवा विवाह की प्रधा नहीं थी। मेरे पिता ने मुक्ते विधवा-विवाह करने से रोका। श्रतः मैंने प्रतिद्या कर ली कि मेरे मरने पर जिस प्रकार मेरी स्त्री वैधव्य की यातनाएँ भोगती, मैं भी उसके मरने पर वही कप्ट उठा-काँगा। इसका फल यह हुशा कि मुक्ते ध्वजमंग रोग हो गया। किर मैंने एक पुस्तक में जिसका नाम Elements of Social Science है पढ़ा कि वलात् ब्रह्मचर्य रखने से ध्वजभङ्ग ही नहीं वरन् श्रीर भी श्रनेकाँ रोग हो सकते हैं। मेरे एक सम्बन्धी की पुत्री १८ वर्ष की श्रवस्था में विध्या हुई श्रीर २५ वर्ष की श्रायु में पागल होकर मर गई। इसका कारण वलात् ब्रह्मचर्य ही था।

इसी विषय में डाक्टर हेगरिश मालयस के जन संख्या सिद्धान्त के श्रनुवादक लिखते हैं कि—

'Although I agree with malthus as to the value of virtuous abstinence, the sad conviction is forced upon me as a physician, that the chaste morality of women, which though it is certainly a high virtue in our modern state, is none the less a crime against nature, not unfrequently revenges itself by the cruellest sort of disease. It it as certain that the virtuous abstinence of women is no rare cause of morbid processes in the breasts, the ovaries and the uterus as it is childish to fear the effects of continece or of natural self help in men. In as much as these diseases do not attack vital organs, they are a greater source of torment to their unhappy victims than almost any others.....

"यद्यपि धर्मपूर्वंक कामवासना के निरोध की श्रव्हाई के सम्बन्ध में में तो मालयस साहव के साथ सहमत हूँ, तथापि मेरा डाक्टरी का श्रनुभव मुक्ते बतालाता है कि नारी जाति का कामवासना को रोकने का उज्जल चरित्र वर्तमान युग में एक सर्वोच्च गुण माना जाने पर भी एक प्राकृतिक पाप है जिसका दगड चुरे-चुरे रोगों द्वारा मिलता है। यह भी श्रनुभव फुछ बहुत कम नहीं है कि स्त्रियों के इस धर्मगुक्त निरोध से . उनकी द्वाती गुहोन्द्रिय श्रीर जननेन्द्रिय में ख्रावियाँ पैदा हो जाती हैं। इसी निरोध से पुरुषों में भी हानि की सम्भावना कम नहीं होती। यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार के रोगों का पुष्ट इन्द्रियों पर बहुन ज्यादा प्रभाव नहीं पडता। परन्तु यह रोग श्रभागे रोगियों को श्रीर किसी भी रोग की श्रपेदाा श्रधिक कर देते हैं।

वलात् ब्रह्मचर्य का जो फल नर नारी पर होता है उसका पता देश देशान्तर के श्रंकों से मिलता है।

सार यह है कि वह समाज वड़ा श्रभागा श्रीर पापिष्ठ है जो किसी पुरुप या स्त्री को वलात् ब्रह्मचर्य रखने के लिये वाध्य, प्रेरित या प्रलोभित करता है। ऐसे समाज की शक्ति घट जाती है, स्वास्थ्य विगड़ जाता है। हिन्दुश्रों की ,गुलामी के श्रनेक कारणों में से एक यह भी है।

लोग कहते हैं गृहस्थ जीवन की जड़ है श्रीर कुटुम्ब का श्राधार विवाह है श्रीर कुटुम्ब समाज का संविधायक है। इसिलये विवाह सम्बन्धी रीति रिवाजों पर वार करोगे तो समाज का, देश का, जाति का, धर्म का सर्वनाश हो जायगा। ठीक है; महाशय, मैं भी विवाह का दुश्मन नहीं हूँ किन्तु तनिक सोचना चाहिये कि विवाह कैसा हो किस हंग से हो। श्राज कल भारत में गुड़ियों श्रीर गुड़ों के विवाह होते हैं, विवाह में वर कन्या का हाथ कुछ नहीं होता । माता-पिता विवाह का ढकोसला करते हैं, नाई ब्राह्मण पैसे के लिये वेहयाई श्रीर निर्द्यता से काम लेते हैं । विवाह का श्रर्थ है, एक दासी लाकर घर में विठाना श्रीर उस पर मनमानी हक्स्मत करना। क्या यह सब घोर श्रत्याचार की वात नहीं हैं ? दुःख है कि हिन्दू धर्मशास्त्र भो इस गुलामी को उचित श्रीर जायज़ वतला कर इसके जोवित रहने में सहायक हो रहे हैं।



## 

सार के सभी देशों में लोगों का ऐसा ख़याल है कि समस्त सामाजिक, राजनैतिक श्रीर धार्मिक रोगों की एक मात्र महीपधि कानून है। जिस तरह वचों को खिलोंने टेकर उनके माता पिता या श्रिमभावक बहुलाया करते हैं उस्तो प्रकार राज्य श्रिधिकारीगण भी जनता को उद्वित्र श्रीर उत्तेजित देख कर एक न एक कानून या कसीशन का खिलौना देकर उसे वहला देते हैं। इतने में उत्तेजना समय पाकर स्वयम् शान्त हो जाती है। दुःख इस वात का होता है कि सरकार जिस काम को छल से थोका देने के लिए किया करती है, उसीको जनता के लोग, लीडरगण, गुद्ध हृद्य से जनता की भलाई समभकर सरकार से कराने का आग्रह किया करते हैं। यह अपनी पटु मुढ़ता से निश्चय किये बैठे हैं कि सारी बुराइयों का इलाज कानून है। जिस दीप को इम स्वतः दूर कर सकते हैं, उसे दूर करने के लिये, दूपित प्रधाको उठाने या वदलने के लिए, हम सरकार के सामने एक नये कानून की माँग पेश करते हैं। यह

तमाशा इम इर रोज कोंसिलों की कार्रवाई में प्रत्यव देख

यह हमारी श्रन्तस्तल में वैठी हुई गुलामी का कुफल है कि इम से राह चलते किसी पुलिस के नौकर ने, या किसी पविलक विविडक्ष में जाते हुये उसके दरवानने श्रभद्रता का व्यवहार किया तो हम कहने लगते हैं कि इस प्रकार के दुर्व्य-वहार को रोकने के लिए कानृन होना चाहिये। अगर आम की सड़क ख़राव रहती है, तां कामृन वनना चाहिये। खेती वारी, पशुपालन, व्यापार श्रादि में कोई श्रङ्चन नजर श्राई िक नपे कानृन की श्रवश्यकता की पुकार मची। जहां कारखाने वालाँ ने मजदूरों को मजदूरी घटाई या नियत से श्रधिक काम लेने की व्यवस्था की, कि मजदूरों का कानून को जरूरत पड़ो; श्रीर मजदूरों ने एड़ताल की तो धनिकों ने तुरन्त उनके विरुद्ध कानृन दनवाया। पानी की कठिनाई, फसल की खराबी, मुहरुले में कुत्तों की वृद्धि, दुर्मिच्च-सभी को माना कानून दूर कर सकता है। इस लिये हम लोग वात वात पर नये कामून बनवाने के पीछे पड़े रहते हैं। हमारा पिछता श्रतुभव बतलाना है कि कानृत क्या है, इसनं स्पा होसकता है श्रीर इसका उपयोग कुंसे होता है।

श्रमीरों की यान जाने दीजिये क्योंकि सरकार उनके ही दलभुक्त लोगों की वनी होती है। श्रमीरों की श्रपनी सुविधा के लिए नया कानून बना कर या बिना कानून ही श्रपना श्रयं सिद्ध करना साधारण बात है। पर साधारण जनता को इतना ज्ञान नहीं कि प्रत्येक कानून जो व्यवस्थापिका सभाश्रों के, कारखाने में ढलता है, चाहे किसी वहाने, किसी श्रमिपाय से स्थां न तैयार किया जाय गरीवों को पीसने के लिए सरकारी, नौकरों के हाथ में एक नई चक्की का काम देता है, जनता को च्यूर्ण करने के लिये नया स्टीम रॉलर बन जाता है।

हर समय, हर जगह, हर काम के लिए हमें कानून की जरूरत नहीं होती। कुले बिल्ली के लिये कानून, माँग संवारने के लिये कानून, स्त्रियों के महीन कपड़े पहिनने के लिए कानून, बीड़ी सिगरेट पीने के लिए कानून, सार यह कि प्रत्येक मानवीय निवंतता, मूर्खता श्रीर कायरता के लिये कानून का माँगना वड़ी हँसी की बात है। श्रावश्यकता है कि हम में श्रात्मशक्ति हो श्रीर बुराइयों को दूर करने की दूढ़ इच्छा हो; जिससे हममें बुराइयों के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस, तेज श्रीर उत्तेजना उत्पन्न हो।

ं वावा, कानून का मुल श्रज्ञान है। एक फ्राँसीसी विद्वान जो खयम् कानून वनानेवाला और कानून को बड़े श्रादर श्रीर श्रद्धा की दृष्टि से देखनेवाला था श्रपने एक कानूनी संग्रह में लिखता है:—

When ignorance reigns in society and disorder in the minds of men, laws are multiplied, legislature is expected to do every thing and each freshlaw being a fresh miscalculation, men are continually led to demand from it which can only proceed from themselves, from their own education and their own morality.

श्रधीत्—"जव समाज में मुर्खता श्रीर लोगों के मनों में दुर्व्यवस्था का साम्राज्य हो जाता है, तब कानृन दिन दूने बढ़ने लगते हैं। लोग समक्षते हैं कि कानृन सब कुछ कर देगा। परन्तु हर एक नया कानृन एक नया भ्रम या श्रविचार सिद्ध होता है। फिर भी लोग लगातार उससे बही चीज माँगा करते हैं जिसे वह स्वयम् श्रपनी शिक्षा श्रीर नीतिमत्ता से कर सकते हैं।"

लेकिन हम को वाल्यकाल से ही ऐसी शिक्षा मिलती हैं जिससे हम पथम्रष्ट हो जाते हैं; जो हम में से विरोध और विद्रांह की शक्ति हर लेती है। और जबरदस्त के अँगूठे के तले सर भुकाकर चुप रह जाने का कुभाव उत्पन्न कर देती हैं। उसके फल से हम स्वयम् खुशी खुशी कानून और सरकार का दुधारा अपने सर पर लटका लेते हैं। सहस्रों वर्ष सं हमारे कान में लगातार यह ध्विन होती आ रही है कि 'कानून की प्रतिष्टा करों 'अधिकारियों की आजा का पालन करों'। यही हमारे माता पिता गोद में हमें बतलाते, यही पाठशालाओं में हमारे शिक्षक सिखाते और पढ़ाते हैं। गंदी, अशुद्ध और खालाकी सं भरी हुई बातें हमारे शिरों में राजनीति दर्शन और

राजनोतिक विज्ञान के नाम से दूंस कर हमारे मनों को दासंता की वेड़ी से जकड़ दिया जाता है।

सरकारी गुलामी की तरह धर्म की गुलामी भी कुछ वने हुए महापुरुष किसी न किसी नाम श्रीर रूप से हमारे गले बाँध देते हैं। धर्मशिह्ना हमें राजा की गुलामी करना श्रपना एक श्रंग वतलाती है, उधर सरकार भी देश के प्रचलित धर्म को मानना वडी श्रावश्यक वात ठहराती है। इस तरह 'मन तुरा हाजी बुगोयम तू मरा हाजी बुगो' की मसल चरितार्थ होकर मनुष्यों की प्राकृत स्वतंत्रता का खून हुआ और रोज होता जा रहा है। धर्म पुस्तकें, इतिहास, राजनीतिक विज्ञान श्रीर दर्शन सारे का सारा साहित्य इसी विष से भरा पड़ा है। विशुद्ध विज्ञान से भी इन्हीं विषाक्त ग्रंथों के मुहाबरे, इन्हीं की परिभाषाएँ हमारे मनों को कलुषित करती हैं। हमारा जीवन कानून के शिकक्षे में पेसी बुरी तरह कस दिया गया है कि हम पराये निर्दिष्ट मार्ग को छोडकर श्रपने कल्याण का मार्ग स्वतः बना ही नहीं सकते। जैसे कल से निकला हुश्रा पानी निर्दिष्ट नलों में निर्दिष्ट परिमाण में चलता है, हम भी उसी तरह पराधीनता के हाथ में पड़ दिन काटते हैं, कानून बनानेवाले वाजीगरों के हाथों में पुतली की तरह नाचते हैं। हमारे जीवन का प्रत्येक घटना कानून सं वँधी होती है, हम दूसरों के द्वारा पशुकी भाँति हांके जाते हैं। हमारा जन्म हमारी शिक्षा, हमारी उन्नति, हमारा प्रेम, हमारा खान-पान. उठना-बैठना, सोना-जागना-सभी राजनियमों या

धर्मगुरुश्रों की श्रज्ञाश्रों के श्रधोन हो रहे हैं। इस दशाने हम
म ने विचार शक्ति श्रौर किसी नये काम के करने की योग्यता
हरली है। कुछ दिन श्रौर यही बात रही तो हम विलक्कल
गूंगे वहरे पशु बनकर रहना होगा।

हमारी समाज ने मानों इस बात को मान लिया है, कि हम जैसे विना हवा श्रार पानी जिन्दा नहीं रह सकते वैसे ही विना कानून जीना श्रसम्भव है। हमें प्रतिनिधि सरकार, जो थोड़े से शासकों से संचालित होती है, श्रनिवार्य रूप से जावन यात्रा के लिए द्रकार है। यह भाव इतना दूढ़ हो गया है कि जब किसी देश के निवासी कान्ति के वल से गुलामी की जंजीरें तोड़ते हैं तो तुरन्त दूसरी सरकार बनाने के पीछें पड़जात हैं।।पूर्ण स्वतंत्रता का जीवन एक दिन मुशकिल से ठहरता है।

कानून की गुलामी हमारे जिये एक धर्म का काम वन गई है। सम्बाद्यत्र भी रातदिन गला फाड़ फाड़ कर हमें कानून की श्रीतृष्टा का ही उपदेश देते रहते हैं श्रीर साथ ही नित्य प्रति कानून की निर्वलता, निस्तारता श्रीर दुर्व्यवहार की शिकायत भी करते जाते हैं। कानून पेशा लोग—वकोल श्रीर वैरिस्टर जब श्रवलर श्रीर श्रीधकार पाते हैं तो उसी कानून-पृष्टि के दुष्ट सिद्धान्त के समर्थन में श्रयनो सारी शिक को लगा देते हैं। ये एक श्रीर जनता के पूर्ण श्रिधकारों की दुहाई देते हैं,

श्रीर मानते हैं कि जनता श्रपनी समाज के सञ्चालन की नीति स्वयम् स्थिर करने की श्रिविकारी है। दूसरी श्रीर यही लोग एक व्यक्ति को श्रिविकार देते हैं कि वह जनता के प्रतिनिधियों के मन्तव्य को जब चाहे ठुकरा दे श्रीर श्रपने मनमानी बात को प्रधानता दे। क्या इसे कोई बुद्धिमान पुरुष ठीक मान सकता है शक्या इन दोनों में सामञ्जस्य है शपर नहीं, वर्तमान शासन पद्धित में, प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य में भी, प्रतिनिधि बनने वालों का काम स्वार्थ साधन ही होता है। संसार के सभी देशों की यही गित है। हमारे देश के श्रिधिकार प्राप्त लोग भी यही चाहते हैं कि गोरी नौकरशाही के स्थान में काली नौकरशाही हो जाय तो हमारे श्रीर हमारे उत्ताधिकारियों के पौवारह हों।

निर्वाचन श्रिषकारों में भी हम देखते हैं कि न्यायाभिमानी कामृत, न्याय की जड़ पर, समता के सिंद्धन्त पर कुल्हाड़ा मारते हैं। जिनके पास ३ रुपया या १५ रुपया मासिक भाड़ा देने को नहीं है वह न प्रतिनिधि बन सकते हैं न चुनने में सम्मति दे सकते हैं। क्या इसका साफ़ मतलब यह नहीं है कि जिनका खून चूस कर श्रिषकार सम्पन्न लोगों ने फेंक। दिया है, उनको समाज की श्रवस्था श्रीर व्यवस्था में बोलने का श्रिषकार नहीं। हमारा विवेक कहता है कि यह न्याय नहीं है, समता नहीं है, नोति नहीं है, स्वतंत्रता नहीं है-पर कामृन जकर है। हम को स्वयम् श्रांख खोल कर देखना

चाहिये कि हम कानून श्रौर सरकार को कितने दिन तक श्रपनी छाती पर पत्थर की तरह रखा रहने देंगे।

## [ २ ]

पहिले लेख में बतलाया जा चुका है कि बहुकाल व्यापो दासनाने मनुष्यों को इतना जड़ बना दिया है कि वह रोटी खाने के लिये भी धर्मशास्त्र की श्राज्ञा हुँढता है श्रीर जानना चाहता है कि में क्या खाऊँ, कैसे खाऊँ श्वात-चीत करने के समय वह श्रावश्यक समभता है कि एक बार इस बात को जान ले कि देश के दगड संग्रह में शिष्ट श्रीर श्रिशिष्ट की क्या परिभाषा है, श्लील श्रीर श्रश्लील में क्या श्रंतर रखा गया है।

कानून बनाने वालों के दिसाग की वारीकी और भी हमारी बुद्धि को चफ्कर में डाल देती है। किसी स्त्री या पुरुष का नय चित्र खींचा जाय तो वह अश्लील और धोर असम्यता फैलाने वाला समस्ता जाता है; लेकिन तभी तक जब तक कि चित्र के नर नारी विभाजक अधान चिन्हों की किमी फूल या पत्ती या और किमी छुल में छिपा न दिया जाय। जहां जग सी हित्रमता में ये अक्क छिपा दिये गये कि सारी अश्लीलता, श्लीलता में परिग्रन हो जाती है। इस नग्छ फला-कीशल के सर पर भी कानून का ठँगा हर दम मीज्द नज़र श्राना है। कितने ही लोग इन्हीं येसिर पैंग, तर्क श्रीर युक्तिहीन कानूनी वारीकियों में श्रपना जीवन नष्ट कर देने के कारण बड़े नामी डाक्टग, वैरिस्टर वकील, पंडित श्रीर मीलाना के उच्चिनगदी नामों से संसार में विद्योपित हो रहे हैं। यह लोग जहाँ एक श्रीर लम्बी चौड़ी वक्तृताश्रों से कानून की व्याख्या करते श्रीर उसका महाव स्थापित करते रहते हैं, वहाँ दूसरी तग्फ़ थोड़े से विद्रोही हृदय भी पाये जाते हैं जो श्रांख बन्द करके कानूनों का सत्कार करना बुरा समभते हैं। ये लोग जानना चाहते हैं कि यह श्रमुशासन या कानून कहाँ से श्राया, किसने बनाया, क्यों बनाया, इससे लाभ क्या, हम इसे क्यों माने, क्यों हम इसके मानने के लिये बाध्य हैं, इसकी प्रतिष्ठा हमारे लिये क्यों लाजिमी है।

श्राज कल तो लोग समाज की जड़ की पडताल में लगे हैं, उसी की तीव्रतर श्रालोचना करते हैं। जिन वातों को लोग धर्मां श्रीर पवित्र नियम समसे बैठे हैं, उन्हों को वह उखाड़ फेंकने में मनुष्य जाति का कल्याण समसते हैं, कानून विचारा क्या है। संसार में जड़ मूल से क्रांति की श्रावश्यकता है, कानून का मृत तो एक श्रोर रहा।

यह समालोचक समृद निर्भान्त रूप से जान चुका है, वर्तमान सामाजिक प्रथा या समाज शास्त्र में धर्म श्रोर राज नीति की समाविष्ट करनेवाले खूव सममते हैं; विश्लेषण करके देख चुके हैं कि क़ानून के उद्दगम स्थान दो ही हैं—एक तो ईश्वर जिसका मिथ्या भय दिखाकर पुरोहित मएडल ने जनता को भरमाया श्रीर हर बात में श्रलौकिकता की भूंति मूलक टांग श्रड़ाई। संसार को श्रन्धविश्वास के गर्त में डालने वालों ने धर्मशास्त्रों की रचना की श्रीर जनता को श्रलौकिक शिक के कोप से भयभीत करके खूव उलटे छुरे से मूंडा श्रीर धार्मिक कानूनों का जाल विद्याकर सदा के लिये इन्हें श्रपने पिंजरे का पद्मी वना कर रखना चाहा।

कानून का दूसरा स्रोत श्रीन श्रीर लोहे के वल से रक्तपात करके निर्वलों श्रीर शान्त हृद्यों पर विजयी होने वाले लोग है। इन थोड़े से लोगों ने सर्वत्र श्रपना प्रभुत्व जमाया श्रीर उसी की रज्ञा के लिए कानून बनाये। इसका फल यह हुश्रा कि श्राज हमारी सारी की सारी धार्मिक ऐतिहासिक, न्यय-हारिक, न्यायसम्बन्धों श्रीर सामाजिक शिज्ञा ऐसे भावों से भर दी गई है कि लोग समभने लगे हैं कि यदि मनुष्यों को कानून की बेड़ियों से मुक्त कर दिया जायगा तो वे फिर श्रपनी श्रादिम जंगलो श्रवस्था में लौट कर पहुँच जायँगे। बिना कानून श्रीर सरकार के एक श्रादमी दूसरे को निगल जायगा। इसका कारण यही है कि हम पीलिया के रोगो की तरह सर्वत्र मनुष्य जाति में पश्रता का ही साम्राज्य देखते हैं, मानो बुद्धि का उपादान श्रीर निमत्त कारण कानून श्रीर सरकार ही है।

श्रनेक ऐसे लागों का भी जिन्हें हम विचारशील, विद्वान, श्रीर वस्तु स्थिति का घाता समसते हैं, खयाल है कि जनता विनष्ट हो जाय श्रगर उसके सिर पर कुछ चुने-चुने लोग पुरो-हित श्रौर शासक (जज मजिस्ट्रेट) श्रपने पुलिस श्रौर जेल रूपी दोनों पर फैलाये चील की तरह न मंडराते रहें। वह जनपद से कहते हैं—"हम तुम्हारे रखवाले हैं; तुम सवको श्रापस में लड़कर मर जाने से बचाते हैं, तुम क़ानून की पूजा श्रौर प्रतिष्ठा करो श्रौर श्राहापालन करना सांखो, फिर जेलखानों श्रौर फाँसी के स्तम्भों की ज़रूरत न रहेगी।"

सन् १ = ४ = में जब फ्रांस ने जुई फिलिए को अर्द्धचन्द्र देकर निकाला तो वह फ्रांसीसी जनता से कहने लगा—"मेरी प्रजा, तू मेरे विना नष्ट हो जायगी, इस बात का मुक्ते बड़ा दुःख है। किनी मजे की बात है, भेड़िये के न होने से भेड़ों का सर्वनाश हो जायगा। अङ्गरेज़ भी यहो कहते हैं कि 'हम खुदा की खोई हुई भेड़ों की श्रीलाद हैं, ईसा के नाम लेवा श्रीर धर्म तथा सभ्यता के अवतार हैं। हमारा कर्तव्य है कि अपने से दुर्वल जातियों पर सुन्दर शासन स्थापित करें श्रीर संसार को शांति श्रीर सभ्यता का पाठ पढ़ावें।"

हम लोग प्रत्यत् में धर्म की महत्ता श्रौर सुन्दर शासन का परिगाम क्या देखते हैं ? इससे जनता के विकाश में वाधा पड़तो है; थोड़े से लोग सारी जनता की रोटी छीन कर श्रात्मसात् कर बैठते हैं; उन्नति की गति ककती है; पगड़े पुजारी पुरोहित साधू हरामखोर बनकर मस्त फिरते हैं; मिहनती किसान मजदूर रोटो के दुकड़ों को तरसाते फिरते हैं। एक तरफ नरक, जाति से वहिण्कार श्रीर सामाजिक दंड का मय दिखा कर पुराहित पोसते हैं, दूसरां श्रीर जेज, देश निकाला श्रीर फाँसी का तख्ता हाथ में लिये हुये शासक हमारी श्रीर क्रूरता सं देखते रहते हैं। श्रपनी नींद सोना श्रपनी भृष खाना जनता के लिये हराम हो रहा है। एक मौलाना साहव कीए की शागिदीं स्वीकार करते हुये कहते हैं कि, इज-रते इंसान ने कीए से श्रपने मुरदों का दफन करना सीखा। इसका ममाण खास श्रल्लाह मियाँ की ज़वानी कुरान शरीफ है। दूसरो श्रीर क़ानून कहता है—"मेरे श्रीचित्य श्रनीचित्य का विचार करोगे तो जेल जाश्रोगे। में सरकार का संरक्षक हाँ। जेलर श्रीर गुप्तचर मैंने शिकारी कुत्तों की तरह इसीलिये छोड़ रखे हैं कि वह फ़ानून की प्रतिष्ठा श्रीर सरकार की सुन्दरता को स्थिर रखें।"

पक पद्म कहता है। कानून के आगे लर कुकाओ; दूसरा पद्म कहता है कानून के विरुद्ध बगावत का अगुडा ऊँचा करो। एमें विचार करके दंग्यना चाहिये कि किसकी बात ठीक है; किसका साथ दें, किस राह पर चलने में हमाग कल्याण है!

सच प्छिये तो कानृन तुलनात्मक दृष्टि से नवीन वस्तु है! प्राचीन काल में कानृन के गट्टर नहीं होते थे। श्राज भी भू-मएडल पर सभी देशों में बिबित कानृन का दौर-दीरा नहीं । है पुरोहित-मंडल-प्रधान शासन काल में भी धार्मिक श्रीर सामाजिक क़ानूनों की लिपिवद पोधियाँ न थीं। प्रथा, श्राचार, न्यवहार, स्वभाव, सुविधा श्रीर श्रावश्यकता के श्रनु-सार समाज श्रपनी गित विधिका निश्चय करता था। लोग जैसे रोटी खाना, पानी पीना, खेती करना, कपड़ा बनाना परम्परा की रीत को देखकर सीख लेते थे, वैसे ही वचपन से श्रन्य रीतियों श्रीर रिवाज़ों को भी सीख लेते थे। प्रत्येक श्राम या जनसमुदाय में श्रलग २ रीति, माँति, श्राचार, व्यवहार के नियम होते थे। बहुत वातों में पांत भर के नियम एक से होते थे। इन्हीं नियमों के सहारे लोग प्रेम पूर्वक सुख के साथ रहते थे।

कुछ यामों में जाकर हम आज भी देख सकते हैं कि विना किसी कानून की खोज ख़बर के सब लोग अपना जीवन पुरानी रीति नीति के ही आधार पर सुख पूर्वक व्यतीत करते हैं। कानून की महामारी का ज़ोर सबसे अधिक बड़े-बड़े नगरों में देखा जाता है, उससे कम कस्वों में और उसके बाद उन प्रामों में जो नगरों और कस्वों के पास ही बसे होते हैं। यह बात भी भारतवर्ष में सन् १८५७ के गदर के बाद ही ज़्यादा फैली है। हाँ धर्मान्धता जनित पुरोहिती खड़ग अवश्य जनता का रक्त आज से भी कहीं ज्यादा पिया करती थी। ठगी, सती, हिजड़ा समाज, काशी का आरा, दरगाहों, मन्दिरों, घाट बाट का लुटेरापन सभी बार्ते धर्म पर आधार रखती थीं। यह बार्ते न केवल भारत पर वरन सभी देशों पर प्रक समान घटित होती हैं। योरोप के इतिहास को देखें तो धर्म के नाम पर वर्दा जो लुज्ञापन होना था वह पिशया से कहीं बढ़-जढ़ कर था। सार यह कि कुछ लोग ईश्वर या उसके प्रतिनिधि राजा के नाम पर कानून बनाकर प्रागपेतिहासिक काल से ही जनना की ग्राँखों में धृल भोंक कर श्रपना उल्लू सीधा करते जले श्राये हैं। लेकिन इस रक्त-शोपक समुदाय की उत्पति के पूर्व समस्त मनुष्य जाति बिना कानून के थी श्रीर सुखी तथा स्वतंत्र थी, इसमें संदेह नहीं। यह बात श्रव भी जंगली श्रीर सभ्य कहीं जानेवालो जातियों का श्रंतर देख कर जानी जा नकती है। हमारे पास ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण है जिनको विद्यानों ने स्वीकार किया है श्रोर जो हमारे कथन की पृष्टि दरते हैं।

स्राहिम श्रवस्था के लोगों को रांति नीति को विश्तेषण करके देखते हैं तो दो प्रकार की स्रष्ट रीतियाँ मिलती हैं। एक तो वह है जो समाज वह होकर रहने की श्रावश्यकता श्रीर इच्हा से स्वामाविक समभ द्वारा उत्पन्न होती हैं। इससे समाज की रता श्रीर वंश की वृद्धि श्रभीष्ट होती है। विना कुल नियमित रीतियों के सामाजिक जीवन कठिन प्रतीत होता है। एर इन रीतियों का संस्थापक कानून नहीं होता। यह तो कानून के जन्म से बहुत पहिले की हैं। न धर्म (मज़हब) ही इनका संस्थापक होता है, क्योंकि इनके उत्पत्ति-काल में धर्मी का भी पता न था। ऐसी श्रनेक रीतियाँ समाज-वद्ध होकर रहनेवाले पशुश्रों में भी देखी जाती हैं, क्योंकि उनका जीवन विना समाज के कठिन हो जाता है। समाज में रहने के लिये कुछ सर्वमान्य नियम ज़रूर होते हैं जो समानता के द्योतक होते हैं। पर ये सब स्वासाविक समक (Instinct) से पैदा होते हैं। पर ये सब स्वासाविक समक (Instinct) से पैदा होते हैं। ये सब वातें प्राणी में श्रावश्यकता के श्रमुसार स्वयं प्रसुदित होकर धीरे-धीरे काल के परिवर्तन के श्रमुसार विक-सित होती श्रीर बुद्धि प्राप्त करती रहती हैं। जङ्गली लोग एक दूसरे को खा नहीं जाते, श्रपने श्राहार श्रीर बस्नों के लिये खेती-बारी श्रादि करते हैं। क्या उनके पास कोई कानून का संग्रह लिखा हुआ रखा रहतो है। इस जमाने में भी उनके पास कोई कानून न मिलेगा; जिसका जी चाहे श्रास्ट्रेलिया, श्रपरीका या पश्चिया के जंगलों में जाकर देख ले। भील, भरिया, संथाल श्रादि लोगों में कानूनों कोड़े का कहीं नाम निशान न मिलेगा।

## [ ३ ]

हमें पर्यटकों के वृतान्तों से मालूम होता है कि बहुत से स्थानों के निवासी विना कानून श्रौर विना राजा या सरदार के बड़े चैन से रहते हैं। न एक दूसरे को जान से मार डालते हैं, न वलात्कार करते हैं, न श्रापस में छीना अपटी श्रौर मारपीट ही करते हैं, जैसा कि सभ्यता का श्रिममान करने वाली जातियों में प्राय: देखने में श्राता है। उन लोगों में प्रेम है, भाई बन्दी है, स्वार्थी का एक्य श्रौर साम्य है। यदि कभी कोई भगड़ा श्रापस में किसी बात पर हो भी गया तो वह तीसरे श्रादमी के पास जाकर पाँच मिनट में निपटारा करा लेते हैं। वकील वैरिस्टर रूपी जॉक श्रीर सरकारो श्रधिकारी रूपी खटमल उनका खून नहीं चूसते। उनमें भी श्रितिथ सरकार; शिष्ट व्यवहार; रोगियाँ, श्रीर निर्वलों पर दया का भाव देखा जाता है। उनमें भी पारस्परिक सहायता; दया; श्रादान प्रदान; हिम्मत श्रादि गुण काफी मात्रा में पाये जाते हैं। वे भी दूसरों की रहा के लिये श्रपनी जान तक दे देते हैं। यही सामाजिक भाव है जो इन वेचारे सीधेसादे जंगलियों में विना कानून के पोथों के, विना वेद, पुराण, कुरान, वाइविल श्रादि गाडियों धर्म पुस्तकों के श्रपना सीधा सन्ना काम करता रहा है श्रीर करता रहेगा।

हाँ एक बात ज़रूर है कि उनमें सभ्य बननेवाली जातियाँ की सी डकेंती, चोरी, व्यभिचार, बलात्कार, श्रप्राञ्चिक कामवालना, पल्लात श्रीर लाखों प्रकार की बदमाशियाँ नहीं होतीं। उनकी द्या सभ्य जातियों की सी बनावटी द्या नहीं है, कि सड़क पर पड़े बीमार भिनुक को श्रम्पताल में राल कर द्या करें श्रीर श्राराम हो जाने पर फिर उसे भूखों मर कर बीमार हो जाने के लिए खड़क पर छोड़ हैं। उनके यहाँ कोर्र भीरा नहीं मांगता, कोर्ड भूखों नहीं मरता। वे कं्डी द्या दिसा कर मनुष्य को घुल गुल कर मरने का उपाय नहीं करते। यया जो लोग गरीकों के लिये श्रीपधालय बनाते

हैं, वे चंगे होने के बाद उनके खाने पीने का भी प्रवन्ध करते हैं। ग्राज लाखों स्त्री-पुरुष छुधा की उवाला से जल कर मरे जाते हैं क्या इनके वचाने का कोई उपाय किया जाता है ? ग्रगणित लोगों को भोजनों की कमी से ही वीमारी होती है, इन्हें श्रज बस्त्र मिले तो ये वीमार क्यों हो ? कहा जा सकता है कि ये हरामखोर हैं, काम नहीं करना चाहते। पर यह इलजाम भूंठा है, हजारों में १०,२० हरामखोर भी होंगे, वाको लोगों को तो काम ही नहीं मिलता या काम भी मिलता है तो दिन भर पिसने पर भी महीने में पंद्रह वीस उपये मिलते हैं जिससे श्राज कल पूरे कुंद्रव का तो क्या एक श्रादमी का भी गुजारा मुशकिल से चल सकता है।

श्रव हम श्रपने विषय की श्रोर सुकते हैं। वात यह है कि जहाँ एक श्रोर सामाजिक जीवन की श्रावश्यकता श्रीर वंश की रक्षा की स्वामाविक समस से रिवाजों का स्वतः श्राहुर्मांव हुश्रा, वहाँ दूसरी श्रोर दुसरी इच्छा, वासनायें श्रोर कामनायें भी उत्पन्न हो उठी इन्हीं के कारण दूसरी श्रादतें श्रोर दूसरी रिवाजों वनीं। दूसरों पर श्रधिकार जमाने की इच्छा, श्रपने मन के श्रमुसार दूसरों को चलाने की कामना, दूसरों के श्रम के फल से स्वयं सुख पाने की वोसना, हरामखोरो की प्रवृत्ति श्रादि वार्ते कुछ वलवानों श्रीर धोकेबाज वार्त्नों में पैदा हो उठीं। स्वार्थपरता वढी श्रीर इससे प्ररोहिती श्रीर सिपा-हीगीरी का जन्म हुश्रा। कुछ महापुरुषों ने भूत पिशाचों के

भय को और अनेक दूसरे अम्धिवश्वासों को स्वयं मिध्य समक्ष लिया, पर दूसरों में इन्हीं मुर्खवाओं का बीज इस लिये बोया और पाला पोसा कि इनकी हॉडी विना हाथ पैर हिलाये गर्म होती रहे। वलवानों ने निर्वलों का अन्न बस लूट-लूट कर अपने पास रख लिया और चैन से खाने लगे। जो विचारे लूटे गये वे भूखे रह रह कर फिर कुछ पैदा करने का प्रयत्न करने लगे। इस तरह पुरोहितों, धर्मयाजकों का मण्डल और साथ साथ अधिकार प्राप्त शिकशाली लोगों का एक समुदाय स्थापित हो गया।

श्राम्विश्वासी नवीनता से उरा करते हैं। श्रपनी वर्तमान दशा, रहन सहन में परिवर्तन करना इन्हें भयानक नजर श्राता है। यह सारी परानी वार्तों की प्रतिष्ठा विना विचारे केवल इन लिये करने हैं कि वह पुरानी हैं। जब कोई नवयुवक समाज के किसी श्रंग में नोई हेर फेर करने को उद्यत होता है तो बुड्ढे कह उठते हैं कि "यह तो हमारी परम्परा है, हमारे पूर्वज भो ऐसा ही करते रहे थे श्रीर सुखी रहते थे; तुम्हें भी इस रीति को बदलना न चाहिये। तुम प्रचलित प्रथमें गड़बड़ी मजाश्रोगे तो भारी हु:ख का शिकार होना पड़ेगा; श्रादि श्रादि।" इनलोगों को श्रज्ञात भाविष्य से मय लगता है, ये लकीर के फकीर वने रहने में ही श्रपना कल्याण समक्षते हैं। जितना ज्यादा श्रादमी गुलामी परवशता श्रीर मुसीबत में फँसा होता है उतना ही श्रधिक वह नवीनता से

हरता है; उसकी आशा पर एक दम पानी फिर जाता है उसका दौसला पस्त दो जाता है। कितने ही श्रशानी मुखं प्रामीण तो मरना पसंद कर लेते हैं किन्तु किसी प्रानी राति में परिवर्तन नहीं चाहते। हाल में ही कई जातियाँ स्वतंत्र होकर प्रजासत्तात्मक शासन कायम कर रही हैं, किन्तु उनमें कहुतेरे श्रव भी एक्सुखी सत्ता [ मोनार्की ] का श्रभिनंदन करने को तैयार ही नहीं वरन् उसकी स्थापना के लिए सिरतोड कोशिशें कर रहे हैं। कहते हैं कि जब गुलामो की प्रथा योरोप से उठाई गई तो बहुतेरे गुलामी ने श्रपनी गुलामी की दशा को ही अञ्जा समभ कर स्वतंत्रता का विरोध किया। श्राज भी हमारे श्रभागे भारत में ऐसे कितने ही पढ़े लिखे माडरेट श्रीर लिवरल नाम धारी लोग हैं जो गुलामी की जंजीर को एक दम तोड़ना नहीं चाहते। कितने ही महामहोपाध्याय, शास्त्री, पंडित ऐसे हैं जो समाज का सर्वनाश होते देखकर भी श्रपनी पुरानी नादानियों से एक तिल हटना भी पाप सममते हैं। कितने ही पुराने प्रमाणों की स्रोज में जीवन खपा देते हैं। कितने ही परिवर्तन के पद्मपाती सधारक होते हुए भी केवल किसी न किसी बीते हुए काल की नकल करना ही पसंद करते हैं।

याद रहे कि अभ्यासमृतक नित्यक्तिया और पैरों से पिटी हुई पगड़ेंदी को न छोड़ने की श्रादत श्रीर नवीन कल्याणकारी मार्ग पर चलने का साहस न होने का कारण श्रंधविश्वास, जडता, कायरता, सुस्ती, श्रीर उद्यमहीनता ही है । ये ही हमारे दुखों का मृत हैं, इन्हीं के कारण हमको श्रत्याचार सहते रहना पड़ता है। धर्मशास्त्र श्रीर कानून, पुरोहित श्रीर सरकार हमारी ही इन कमज़ोरियाँ से लाभ उठाते श्राये हैं। प्रचलित रुढियाँ सं सरकार श्रोर पुरोहित मएडल के सिवा श्रीर किसी को लाभ नहीं होता। इसी लिए ये दोनों मिल कर रुढियां की दुशहं दिया करते हैं श्रीर जनता को उनका दास वनाये रखना चाहते हैं। एक कहता है कि विधवा विवाह हिन्दुश्रों के योग्य नहीं है तो दूसरा कहता है कि प्रजा श्रधिकार युक्त शासन भाग्त के लिए श्रमुण्युक्त है क्योंकि वह प्राचीन प्रथा के विरुद्ध है। पर इस प्रकार की कढियाँ को तोड़ देना ही जनता को सुन्ती बना सकता है हम में दिम्मत हो और पूरा उत्साह हो जिससे हम राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक नामवाली सभी रुद्रियों को एक वार जड़ से उलाड़ फैंके श्रोर उनकी जगह समयानुकुल, श्राय-श्यकतानुमार समाजिक संगठन करें तो हमारे दुःख श्राज दूर हो सकते हैं। हमारे यदाँ को कितनी ही धार्मिक संस्थार्थी स्त्रीर समात सुधारक मंडलों का यह एक नियम होता है कि उनकी राजनीति से कुछ सरोकार न होगा। इस प्रकार राजनीतिक संस्थाएँ कहती हैं कि धर्म में एस्तदोष करना हमारा काम नहीं। यद यहां नानायकी, कमजोरी श्रीर श्राहरदर्शिना की बात है। गतनीति, गीति, धर्म, समाज जीवन के हुदा सुदा श्रंग नहीं हैं, चब ही समाज शास्त्र के अन्तर्गत था जाते हैं। या

इस तरह कहना चाहिये कि सभी 'धर्म' शब्द की परिभाषा में समाविष्ट हैं। समाज-सुधार का अर्थ है समाज का समूल सुधार। जहाँ कहीं और जिस बात के सुधार की जरूरत हो सब की खबर एक साथ ही ली जाय।

श्राज कल मनुष्य जाति मंं केवल दो ही प्रतिद्वनदी दल हैं - एक सवल; श्रधिकार प्राप्त; जवर्दस्त लोगों का श्रोर दूसरा निर्वल, जीवन श्रधिकार रहित; सीधे सादे लोगों का । कानून, सरकार, धर्म शास्त्र श्रौर पुरोहित केवल जवर्दस्तों के पृष्ठपोपक होते हैं दीनों श्रीर दुखियों के नहीं—यह हमारा नित्य प्रति का श्रद्धभव है। कानून के व्यवस्थापकों ने-क्या सरकार क्या पुर-हित मगडल—एक पंथ में दो काम सिद्ध किये हैं। श्रपनी सुविधा श्रीर महत्ता स्थापित रखने के लिये वनाये हुए दएड-विधान (कानूनों के संग्रह) में उपर्युक्त दोनों मालाश्रों को एक में मिला-कर पिरोया है। श्रर्थात् समाजिक जीवन की रत्ना के लिए श्रावश्यक खयम्भूत रीतियों के साथ श्रपनी हकूमत कायम रखने वाली श्रपनी ही वनाई हुई श्राज्ञाश्रों श्रौर श्रनुशासनों को शामिल कर दिया है। पहिली वात के द्वारा कमजोरों में समता की दिखायट रहती है श्रौर दूसरी से श्रमीगं श्रौर गरीवों में विषमता पैदा की जाती है। श्रर्थात् शासक—मंडली साधारण सामाजिक नियम में श्रपना लट्ट पुजवाने वाली श्राष्ठाएँ भी मिलां देती हैं।

इसके लिए कानून के दो चार प्रत्यत उदाहरणों पर विचार करना ज़रूरी है। कानून कहता है—"डाका डालना बुरा है" ताथ ही कहता है—"राजा कर की बस्ती के लिए चाहे जितने सरास्त्र सिपाही किसी भी गाँव में भेज नकता है।" एक तरफ कहा जाता है—"किसी के साथ जबदेंस्ती मत करो" पर साथही—"राजा श्रोर उसके कर्मचारी वेगार ले सकते हें"—यह नियम भी मौजूद है। धर्म शास्त्र कहते हें—"श्रपनी कमाई पर संतोप करो"—पर साथ ही पुरोहिन जी को जीवन भर समुंद्रिय हराम में जाना देते रहने की व्यवस्था भी उसमें मौजूद है। कानून में कहा जाता है—"किसी मनुष्य की हत्या मन करो"—पर राजा को श्रधिकार है कि—"जो राजा के श्रामम् स त् श्रधिकारों को कम करने के लिए, मरकारी श्रपराधों को उधानने के लिये मुँह जोले, या कलम उठाये उसे धागी कर कर फार्मी पर खड़ा दो।" "जोरी मत करो"—यह कानून का स्पष्ट श्राहेश है, लेकिन "जो सरकार को करन दे उसका हाथ काट लो, जेल में डाल दो श्रीर उसे नाना प्रकार के दुश्व हो।"

करौ नक विनायें। कानूनों को जिनना छानोगे उतना ही मैन कुड़ा परकट निकलना जायगा। जिन बंधनों को समाइ। ने अपना जीवन खुकी यनाने के लिये उत्पन्न किया था उन भवको उग्लंघन फरने का अधिकार पुगैदिन—मण्डली और सरकार को है। इन्हीं अधिकारों, अत्याचारों, को औचित्य देनेवाले ऐसी का नाम कानून है।

जनना में समस्त हो श्रीर साहत य उरसह हो नो यह कानून श्रीर मनदर्श कायदी का महाफोड़ करदे। निश्चय ही उनमें इतनी गंदगी निकलेगी कि उन सब का सदा के लिये श्रंत कर देने में ही मनुष्य जाति का कल्याण नजर श्रायेगा।

(8)

जो लोग कानून श्रोर सरकार का समर्थन करते हैं, मानों इस वात की घोषणा करते हैं कि हम नालायक पशु हैं, श्रीर हम श्रवश्य ही वदमाशी-श्रमानुपी कृत्य करेंगे। इसलिए दो-चार श्रादमियों का डंडा लेकर श्रपने सिर पर खडाकर देना जरूरी है कि जब हम बदमाशी दर्रे तो वे हमारी पीठ पर तडातड लगाना आरम्भ कर दें। किर इन डंडा लगाने वाली को, यदि कभी उनकी इच्छा हो ऋथि, तो इस वात का भी श्रविकार हो जाता है कि श्रपनी मरजी से मनमानें डंडे लगायें श्रीर नाच नचार्ये। इस विचार के लोगों को, समक्र में नहीं श्राता, कि किस श्रेणी में रखा जाय। पश्च पत्नी भी नहीं चाहते कि वे अपने ऊपर हाकिम या जज या पुलिस या जैजर तैनात करें। जंगली मनुष्य जातियां भी उस तरह के काम की विरोधिनी नजर श्राती हैं। हमारा तो खयाल है कि सिवा इन विचित्र जंतुत्रों के दूसरा कोई भी प्राणी सरकार श्रीर कानून का स्वगत करने को तैयार न होगा। ऐसे ही नादान लोगों की भूल से जब एक बार अधिकारियों की सृष्टि हो जाती है तो फिर सदा के लिए सरकार श्रीर कानून हमारे क्र पर श्रत्याचार करने का इक कायम कर लेते हैं। संसार के श्रनेक राज घरानों की सृष्टि इसी प्रकार हुई है। राजपूताने का एक वड़ा भारी भूभाग जारों का था। यह गोरारे जार कहलाते थे। इन्होंने एक वार श्रपनी इच्छा से श्री० वीकोर्जा को श्रपना राजा मान लिया तो श्राज तक वीकानेर का राज्य स्थापित है श्रीर जारों के श्रधिकार का कहीं नाम निशान भी नहीं है। (देखो टाड राजस्थान)।

पूँजी के जनम का इतिहास हम देखते हैं तो जान पड़ना है कि यह भी युद्ध, लूट श्रीर दासना से ही पैदा हुई है। इन, दगा श्रीर लूट खसोट ही पूंजी की जननी है। पूंजी ने कैमं श्रमियों के रक्त से श्रपना भरण पोपण किया श्रीर कैमें धीरे धीरे सारी दुनिया को जीत लिया इसके लिए साम्यवादियों का लिया पूंजी के जनम का इतिहास पढ़ना चाहिए। इसी प्रकार हमें कानून के जनम का इतिहास भी जानने की ज़करत है।

लूट, खलांट, छीन अपट, दासता के फल की रहा का धीड़ा उठाने के गुन में कानृन भी पूंजी का ही सगा भार मनीत होता है। यह दांना पारस्परिक सहायता से ही यह श्रीर समुझन हुए। कानृना का समर्थन पूंजी करती है श्रीर पूंजी। धन ) की रहा। कानृन करना है। ऊँटों के विवाह में गंधे गान करने गये श्रीर परस्पर एक दूनरे की सराहना करने लगे। गंधों ने कहा बाह, श्रापका कैसा सुस्दर रूप है। ऊँटों ने उत्तर दिया, धन्य धन्य श्रापका कैसी सुरीजी श्राचान है। बल- यान श्रीर धनवान ग्रिस्त हमा स्वाहन अपहरण करने

हैं। यह सच है कि कि की किशो बलवानों श्रीर धनवानों को संघर्ष भी होता है; कभी-कभी जनता श्रपने बल को पहचान लेती है तो वह इनकी मिली भगत में वाधा डालती है। पर श्रभी तक धन श्रीर कानून का ही हाथ ऊपर रहा है।

जनता को निद्धित रखने के लिये, उसे सदा के लिए श्रवेत यनीये रखने को धन श्रीर वल ने मिलकर पुरोहिती (मज़हव) का एक फंदा तैयार किया। तब धर्म शास्त्रों के नाम से पहिले पहल कानून बने। इन कानूनों के बनाने श्रीर व्यवहार में लाने वाले पुरोहितगण हुये। इन्होंने हमको श्रद्धश्य स्वर्ग का प्रलोभन देकर, ऐहिक सुख की सामग्री के प्रति घृणा उत्पन्न कराई श्रीर श्रपना श्रीर श्रपने सहायक धनवानों तथा बलवानों का काम बनाया। संसार के सारे धर्मों का इतिहास श्राद्योपान्त हमें इसी पड़यंत्र की सुचना दे रहा है।

इस तरह लट्ट श्रीर छल के द्वारा बनाये हुए कानूनों का प्रभुत्व धीरे धीरे वढ़ा इनके श्रिधकार का वृत्त श्रार वल जब . खूव बढ़ गया, तब इन्होंने कर वस्त करने में कड़ाई की, लोगों को दराह देने का विधान किया श्रीर लट्टके वल श्रपना मतलब सिद्ध करने लगे। श्राज इन्हीं श्रत्याचार पूर्ण कानूनों का संग्रह धर्मशास्त्र के नाम से या राजदराह के नाम से इम श्रपने ऊपर चक्र की तरह सिर काटने को मँडराता देख रहे हैं। इस दुधारी तलवार (मज़हवी कायदे श्रीर राजकीय कानून) से काला बचता है न कबरा। लोहार, चमार, जुलाहे,

धुनिया, किसान, कारीगर श्रादि सभी अमजीवी इस कानृन रूपी कोल्हु में रात दिन पिसते चले जाते हैं। एक श्रोर स्वर्ग की चाह में लोग अपना और अपने वाल बच्चों का पेट काटते हैं; श्रोर मक्के, मदीने, बद्दोनाय, जगन्नाथ की यात्रा; साधु पंडे, पुरोहित, मुला, मौलवी फ़कीर, दरवेश श्रादि की आवश्यकताओं की पूर्ति में पंडे पुजारियों के पेर भरने में, मंदिर श्रीर मलजिद के बनाने श्रीर उनको रहा में सारा संचित धन लुटा देते हैं। किसान भूखा मरता है, पर श्रपनी श्राय का तीन चौथाई से श्रधिक राजा, जमींदार श्रीर साहकार को चुप चाप साँप देता है, क्योंकि यह कानृन की श्राहा है। वेचारा न दे तो जिन्दा नहीं रह सकता। एक तरफ़ क़ेंद्र, कुर्की, नीलाम का डर है श्रीर दुसरी तरफ़ वदनामी श्रीर नरफ श्रादि को भय मारे डालता है। इन चकी के दो पार्टी के बीच में धन की, श्रमल में, कमानेवाली प्रजा रात दिन विसी चली जोती है, पर उपा नहीं कर सकती। इन्हीं कानूनों की प्रतिष्ठा करना रात दिन हमें निखलाया जाता है। कानृत, शांति श्रीर नियम के गाम पर, जनना की रहा। के बहाने से मानव जानिका रात दिन रक्त शोषण करना है। कर, लुमांना श्लीर दक्षिणा का विग्रज हमें रान दिन छेदना ही रहना है। हराम खोर संजेड़ी रम बात को साफ़ कह देते हैं- "आतो दमादम, कमार्चे मियट उराष्ट्र ग्यांय हम ।"

श्रिष्ठिकांश राजकीय कान्न तो सम्पत्ति की रहा के लिये ही होते हैं। धनवानों की मोटरों की 'मों मों ' सुन कर निर्धन पैदल चलने वाले पशुश्रों की तरह इधर उधर भाग कर जान बचाते हैं। जो कुचले जाते हैं उनके बदले भी मोटर हांकने बाला गरीब ही दंड पाता है। मानों धनवानों के सिवा गरीबों के लिये सड़क हैं ही नहीं। इसी तरह मंदिरों, मसजिदों, गिरजों में भी श्रमीरों का खास खयाल रखा जाता है। क्योंकि स्वर्ग की कुंजी श्रधीत् धन जिनके पास नहीं है वह स्वर्ग के श्रिध-कारी कैसे हो सकते हैं। यह हैं कानून श्रीर यह लीला है धर्म शास्त्र श्रीर दंड संग्रह की।

श्रव इस कानृनों की श्रालोचना जरा श्रधिक गंभीरता से करना चाइते हैं। वाचक धृंद । जल जल कानृन जो मनुष्य को नियमपूर्वक चलाने के लिए मौजूद हैं, इनको गहरी दृष्टि से बर्गीकरण पूर्वक देखें तो वे तीन प्रकार के पाये जायँगे:—

१—संपत्ति की रत्ना के लिये।

२-सरकार की रज्ञा के लिये।

३-व्यक्तियों की रत्ता के लिये।

विचार कर देखते हैं तो तीनों ही निस्सार श्रोर जनता को पीड़ा पहुँचाने वाले यंत्र मात्र हैं। फिर भी हम इन पर जरा नहरी नजर डालते हैं।

साँपत्तिक रत्ना संवन्धी कानून का अर्थ यह है कि कोई ज्यक्ति या समष्टि अपने अम का धन आप न खा सके। किसान, मज़दूर श्रीर कारीगर जो उत्पन्न करें उसकी लूट कर दूसरे लोगों की, जो निकम्मे, निठले श्रीर हराम खोर हैं, पहुँचाया जाय। श्रगर लाला करोड़ी मल कानून की क से किसी हवेली के मालिक हैं, तो इसका मतलव यह नहीं है कि उस: मकान को लाला करोडी मल ने स्वयं श्रथवा श्रपने इप्ट मित्रों वा घरवाली की सहायता से बना कर तैयार किया है, जैसे कि जंगलों में त्रामीण लोग त्रपने भौंपड़े तैयार करते हैं। लाला करोड़ीमल तो दूसरों से मकान वनवाते हैं श्रीर उनको उनके काम के पूरे दाम तक नहीं देते। इसका मूल्य तो सामाजिक है क्योंकि-श्रकेले तो वे इसे बना नहीं सकते थे। इस तरह श्रनेकों के श्रम के फल को एक की वैयक्तिक सम्पति बना देना भूल है। वह चस्तु जिसे समाज ने मिल कर बनाई या पैदा की वह तो समाज की सम्पति हुई। इसी प्रकार सारे ही नगर, पुर, ग्राम विद्यालय, प्रयोग शाजाएँ, रेल तार, सड़क जो भी हम देखते हैं सब को गरीव मनुष्यों ने मिल कर बनाया है, तब वह एक की सम्पति कैसे हो सकती है। इस लिए किसी मकान का स्वामी लाला करोड़ीमल को मानना श्रन्याय है। प्रन्तु कानून एक सार्वजनिक चीज़ का स्वामित्व एक को सौंप देता है। यही ढेरों कानूनी पुस्तकों का सारांश है। इसी कानून की रत्ता के लिये पुलिस, फौज, जज, मजिस्ट्रेंट श्रीर श्रमलों के अल्ड हमारी श्रांखों के सामने फिरते हैं।

सारे संसार के कानूनों में आधे से अधिक दीवांनी कानून हैं जिनका काम है कि जनता की सम्पति छीन, कर कुछ खास ज्यक्तियों के हवाले कर दें। वहुत से फीजदारी कानून भी इसी अत्याचार की सहायता को बनाये गये हैं। मालिक और नौकर का भेद बना कर थोड़े से आदिमयों के लिये मानव समाज को खूटा जाता है। जो मकान बनाते हैं उनको ऋतु की कूरता से रहा पाने के लिए चार इँच भी जगह नहीं मिलती और थोड़े से लोग कानून की हिमायत से बड़े बड़े महलों में रहते हैं।

श्रपने द्दाथ से श्रम करके माल पैदा करने वालों श्रीर चीज़ों के वनाने वालों के स्वत्व्वों की रद्धा के लिये कोई भी कानून नजर नहीं श्राते। श्रगर कानूनों श्रीर सरकारों ने जरा भी ईमानदारी श्रीर इंसाफ से काम लिया द्दोता तो श्राज भूमएडल पर तीन चौथाई से कहीं श्रधिक मानवजाति इस कप्ट में न द्दोती जिसमें कि वह श्राज है। कानून श्रीर सरकार ने जो भो किया सव उत्त्वा हो काम किया। हम देख रहे हैं कि जवरदस्त लोग हाथ में तलवार लेकर खुने खजाने निर्वल, शाँतिश्रिय श्रमजीवियों को लूट रहे हैं। कभी कोई श्रमिक दूसरे के श्रम के फल को छीनने के लिये जान वूक कर कग़ड़ने नहीं जाता। जो कभी श्रमवश काई विवाद भी हुश्रा तो वहाँ ही तीसरा श्रादमी तय कर देता है। कानून की जकरत पड़ती है न सरकार की श्रावश्यकता। इन श्रमिकों की कमाई को सम्पत्ति धारी लोग लूटते हैं श्रीर उनकी कमाई का सब से वड़ा भाग

इन्हीं की जेय में जाता है। श्राज कल कानून विवाद को निपटाने के बदले स्वतः विवाद का कारण बना हुश्रा है।

समस्त सम्पत्ति सम्यन्धी कानुनों के बड़े बडे मीटे पोधे जिन से जजों की मेज शोभा पाती हैं, जिन्हें डाक्टर श्रॉफ ला, कौन्सिल, वैरिस्टर, वकील लोग लिये फिरते हैं; कुछ श्रर्थ नहीं रखते, सिवा इसके कि मानव जाति के श्रम के फल को छीन कर थोड़े से ठेकेदारों के हाथ में सींप दें। इन कानूनों वकीलों, ग्रौर जजों की तनिक भी ग्रावश्यकता हमें नहीं है। इनके अन्त होने से ही मनुष्य जाति को सुख हो सकता है। जिस दिन मनुष्य जाति कानून ग्रीर उनके भाष्यों को एकदम त्याग कर देगी उसके सुख का द्वार खुल जायगा, संसार में शांति फैलेगी श्रोर प्राकृतिक नियम पक सिरे से दूसरे सिरे तक अपना काम करने लगेंगे। जनता के लिये क़ानूनों का सदुपयोग यही है कि वह इन्हें प्रशान्त महासागर के पेट में सदा के लिये शान्ति पूर्वक बैठने का सीभाग्य प्रदान करे।

दूसरी प्रकार के कानून जो स्वयम् सरकार की रहा के लिये हैं, जनकी विचित्रता का तो कुछ कहना ही नहीं। सरकार कानून की रहा करती है और कानून सरकार की रहा करते हैं। पुलिस किसीको कितना भी और किसीको कितना भी और किसीको कितना भी और किसी तरह सतावे, उसे और उसकी निर्मात्री तथा भनी सरकार को नेकनियत कहकर छोड़ दिया जाता है।

लाखों में एक बार कभी किसी सरकारो नौकर को दगड होता होगा, सो भी उसके व्यक्तिगत श्रपराध के लिये। किन्तु पुलिस के विरुद्ध किसी ने मुँह खोला कि क़ानून का साग संग्रहा-लय श्रीर राज्य का सारा कोष इस विचारे फरियाटी को पीसने के लिये फौरन खोल दिया जाता है। सरकारी नौकर को, वह चाहे जज हो, सेना या पुलिस का श्रफसर हो, या श्रीर कोई कर्मचारी हो, उसके दोपो वा निर्दोषी होने का विचार किये विना ही, उसके बचाने की कोशिश करना क़ानून श्रीर सरकार का धर्म होता है। यही सरकार की रत्ना है। श्रगर कानून श्रौर सरकार की रत्ना के ढोंग के विषय में वाल की खाल निकाली जाय तो एक पोथा सहज ही में तैयार हो सकता है। दूसरों के रत्तण श्रौर भत्तण के लिये तो कानून की जरूरत पड़ती है किन्तु सरकार के संरक्षण और सरकार के विरुद्ध मुंह खोलने वालों के लिये किसी भी कानून श्रीर न्यायालय की जरूरत नहीं होती. सरकार के पास सरसे पैर तक श्रख्न शख्न से सुसज्जित भाड़े के श्रत्याचारी श्रीर घातक हरदम तैयार रहते हैं, इनको इशारा किया गया कि श्रादमी तुरन्त :पकड़ कर स्वर्ग भेज दिया जाता है, या जेल में श्रस्थिपंजर बनाया जाता है, या देश बाहर निकाला जाता है,या नजर बन्द के नाम से किसी कोने में सडाया जाता है। इस तरह सरकार, कानून, सरकारी प्रतिष्ठा श्रीर कानूनों की महत्ता की रत्ना का दृश्य हम भूमएडल के समस्त राष्ट्रों में देख रहे हैं। इद्दतिहास में भी इसका हाल पढ़ सकते

हैं। श्रीर कानूनी कितावों की व्याख्याश्री श्रीर मन्तव्यां में भी पा सकते हैं।

तीसरी वात व्यक्तियाँ या शरीगं की रक्ता की है, इसी की यावत एम थोड़े से शब्दों में कुछ लिखकर इस कानून के विभास चित्र पर पटाकेष करेंगे।

यह तीसरी जाति के कानून श्रपराघों श्रीर श्रपराधियों की खोज करते हैं, सुन्हों को दुष्टों से बचाने का दम भरते हैं। यह कानून बड़े ही महत्त्व पूर्ण समसे जाते हैं, इन्हीं के बहाने लोग खंले जाते हैं, इन्हीं से मोहित होकर कितने ही लोग सरकार श्रोर काजून के स्तव पाठ करते हैं, इन्हीं के श्राधार पर सम्पत्ति श्रीर सरकार की रत्ता के कानून भा पाले पोषे जाते हैं। इसमें बड़ा भारी केतव, छल श्रार रहस्य भरा पड़ा है। इसलिए पाठक इन्हीं कानूनों को विश्लेषण पूर्वक श्रायन क्यान के साथ पढ़ें श्रीर विचारें। हम भी इस श्रेणी के कानून का दिग्दर्शन यह कराये देते हैं। कहा जाता है कि बिना इस श्रेणी के ूनें के समाज न्या मर भी नहीं चल सकता।

यह कानून मानव गोष्टियों के उन लाभदायक रोतियों श्रोर रिवाजों की भित्ति पर बने हैं, जिन पर मुं का सच्चा सुख, स्वातन्त्र्य, भातृ भाव, प्रेम, द्या स्थिर र्थी श्रोर श्रव इन्हीं को श्रभिनव रीति से संस्कृत किया गरे हैं जिससे नवीन संस्कार कर्ताश्रों का लड्ड जोर से धूमे श्रोर रोक टोक पुजे।

इस श्रेणों के कानूनों के व्यापार को समभने में वड़े बड़े विद्वानों ने भी घोका खाया है। श्रत्यन्त गहरी जड़ पकड़े हुए पूर्व संस्कार श्रीर पद्मानुराग के कारण इन्होंने कानून के स्वाभाविक श्रीर किएत धम्मों में मेद करने का विचार ही नहीं किया। कोई कोई विद्वान एक श्रीर तो वैयक्तिक सम्पत्ति के दोष को विस्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं, लेकिन दूसरो श्रोर जब केन्द्रीभूत धन श्रीर कारखानों को छोड़ कर धरती का प्रश्न उठाते हैं तो श्रपने पूर्व तर्क को भूज जाते हैं। श्रपने प्राकृत विज्ञान में जिस बात को मुक्त कएठ से वर्णन करते हैं उसी को दूसरे प्रकरण में भुजा देते हैं। स्पेंसर ने मानव जाति प्रतिपद्म सरकार 'the man Versus the state' में जो प्रोशाम पेश किया उसी को वह 'सरकार' के रद्मण करने वाले श्रधिकार श्रीर व्यापार की व्याख्या करते हुए जीभ तले दाब गया।

स्पेंसर के सिवा श्रौर कई पाश्चात्य दार्शनिक ऐसे पाये जाते हैं जिन्होंने श्रादिम मनुष्य जाति को विना किसी पुष्ट प्रमाण के पश्चश्रों से भी बुरा चित्रित किया है। कहा है कि यह लोग जंगलों में श्राहार श्रौर स्त्रियों के छीनने के लिए परस्पर लड़ते रहते थे। इसी से शान्ति स्थापना के निमत्त तीसरी द्या मयी शक्ति शासिका वनकर इनके ऊपर बैठी। मैं तो कहता हूँ, भगवन ! श्रादिम मनुष्यों को वाबत तो यह कहना भूल है, क्योंकि उनके नम्ने श्राज भी भू-मएडल के

श्रनेक जन्नलों में पाये जाते हैं, कहीं ऐसा नहीं देखा जाता। पड़चर्ड कार्पेएटर एक श्रमुमनी लेखक ने 'सक्ष्यता का रोग, उसका कारण श्रोर इलाज' नाम की पुस्तक में कहा है कि 'जन हम श्रास्ट्रेलिया के जंगली जातियों को देखते हैं ते प्रश्न उठता है कि यह लोग विकाश की सीढ़ी में सभ्यता के डंडे से ऊपर चढ़ गये हैं या उसके नीचे हैं। यदि श्रमी नीचे हैं श्रोर सभ्यता की श्रोर चढ़कर श्राने वाले हैं तो मुरे इनकी दशा पर श्रमुकम्पा होती है क्योंकि यह सभ्य कहलां वालों से कहीं श्रिधक ईमानदार, सच्चे, निष्कपट श्रोः सुर्खी हैं।'

पर हो क्या, हक्सले ने श्रपने जीवन युद्ध (Struggle for existence) शीर्षक निवन्ध में होवीस (Hobbes की तरह श्रादिम मनुष्यों को युरी तरह से चित्रित किया है ऐसे ऐसे विद्वानों को यह न स्भा कि समाज मनुष्य ने बना! नहीं, यह नैसर्गिक है पशुश्रों में भी समाज का भाव मौजू है। लेकिन पूर्व संस्कार के प्रवाह में वड़े वड़े विद्वान में कभी कभी वह जाते हैं।

श्रव हम देख रहे हैं कि दौलत श्रीरश्रीरत, घरा श्रीर धाम छीनने के लिए सभ्यता श्रिभमानिनी जातियाँ वही काम क रही हैं जिनके करने का श्रपराध वह श्रादिम मनुष्य जातियों प लगाते हैं। धन कमाने के लिये ईसाई चीन को लट्ठ के बल है श्रफीमची बनाते रहे हैं, मुसलमान धन श्रीर स्त्रियों के लूटने को दूसरे देशों पर चढ़ाई करते हैं, श्राज भी कितने ही देश धन लोलुप सभ्य कहलाने बाली पाप परायण जातियों के श्रंगूठे तले दबे हुए दुख भोग रहे हैं। श्रादिम मानव गोष्ठियों में यह बात न थी।

श्रादिम गोष्ठियों के स्वाभाविक स्वयम्भूत क़ानूनों को श्राज कल के सभ्यता के दीवाने अर्थलीलुपों श्रीर वासना के दासों ने विगाड़ा है श्रीर ऐसे ढांचे में ढाल दिया है कि जिससे संसार दुखी हो रहा है। श्राज कल जितने इस तीसरी श्रेणी के, अपराध होते हैं डनमें से १०० में ७० दूसरों की दौलत छीनने के श्रिभिप्राय से होते हैं। यदि वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा उठ जाय तो यह अपराध स्वतः निर्मुल हो जायँ, कारण के मिट जाने से कार्य स्वतः मिट जाता है।

कुछ अपराध स्त्रियों के लगाव से होते हैं। इसका कारण भी धन-पात्रों की धन के ज़ोर से अनुचित काम वासना सन्तृति ही होती है। कुछ निर्धन भी इन्हीं विगड़े धनवानों का अनुकरण करने लगते हैं। संसार में भोग लोलुपता बढ़ाने का कारण सम्पत्ति का व्यक्तियों के पास इकट्ठा होना है। वैयक्तिक सम्पत्तिकी प्रधा के उठने के साथ यह बातें भी नष्ट हो जायँगी। विशुद्ध प्रेम व्यवहार नर और नारियों में अपना काम करेगा। कहा जाता है कि समाज में कुछ ऐसे दुरातमा . ज रहेंगे जो ज़रा-ज़रा सी वात पर दूसरे ममुख्य का प्राण लें को तैयार होंगे; इसलिए ऐसे लोगों को दएड देने का ज़कर होना चाहिये। लेकिन हम तो देखते हैं कि चोरों े जेल में जाने से चोरी वन्द नहीं होती, हत्यारों को प्राण दएड देने से हत्यायों की संख्या हर वर्ष घटती तो नहीं वरन बढ़ती नज़र श्राती है।

चोरी, डकैती, इत्या, भूठ, छल, फरेब अन वस्न की कमी और आवश्यक वस्तुओं के अप्राप्ति के कारण होते हैं। जिनको खाने पीने को न मिलेगा वह अवश्य ही पड़ोसी की रोटियों में हिस्सा लेने का प्रयत्न करेंगे। यह स्वाभाविक बात है। जेलों में जाकर देखें और छान वीन करें तो मालूम होगा कि अन वस्न का अभाव ही सारे अपराधों की जड़ है। जिस साल देश में दुभिन्न पड़ता है जेलखाने खूब भर जाते हैं। जब फसल अञ्झी होती है, चीज़ों के दाम ठीक-ठिकाने रहते हैं तो अपराध भी कम होते हैं, लोग सरल जीवन ज्यतीत करने में ही प्रसन्न रहते हैं।

जिस दिन फाँसी के थम्मे उखाड़कर माड़ में भाँक दिये जायँगे, जेन खानों का नाम निशान मिटा दिया जायगा, जजाँ, पुलिस वालों, श्रमलों, चारों, इमचारों को नौकरी से पृथक् करके कानून के पोथों को नदी में प्रवाह कर दिया जायगा श्रीर

## ( २३१ )

वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा को उठकर शत प्रतिशत नर-नारियों को श्राहार श्रीर वस्त्र मिलने लगेगा। सारी कठिना-इयाँ दूर हो जायंगी। श्रपराधों के नाम तक न सुने जायँगे, कानूनों का नाम कहानियों में ही पढ़े जाया करेंगे। कानून श्रीर सरकार सारे पापों की जड़ है।

यह लेख माला बम्बई के भद्ध साप्ताहिक अणवीर में जनवरी १९२९ में छपी थी।



## तोसरी तरंग

(स्फुट)

## "न्याय, नीति, समता, श्रीर स्वातंत्र्य"

peak What thou Knowest without
fear and hatred. ( Proudhon )
अर्थात्, घृणा और भय छोड़ कर तू
जो—जानता है, सत्य सत्य कह दे।

श्राज वह समय है कि मनुष्य-वृद्धि केवल शुष्क इति-वृत्त, तथ्य श्रीर प्रमाण के ही सामने सिर भुकाती है।

कवि-करएना मनोरंजन चाहे करे, पर विश्वास का स्थान नहीं पा सकती। विज्ञान, मनुष्य-धर्म श्रीर प्राष्ट्रत नियम कहते हैं कि उनके श्रागे कला-कौशल का श्रतिरंजन श्रीर कविता की श्रसत्य करपना को उच्च स्थान नहीं मिल सकता। विज्ञान में मनुष्य श्रीर इतर प्रकृति दोनों ही शामिल हैं। सचाई के प्रकट होने का स्थान हर एक मनुष्य का हृद्य है। इसमें रंग, कप, देश, धर्म श्रीर जाति का कोई विवेक नहीं। हम श्रनन्त के मध्य में हैं, हमसे पहिले भी श्रनन्त श्रीर पीछे भी श्रनन्त का स्थान है। इस श्रनन्त में किसी हाणिक प्राणी की क्या हस्ती है? इसलिये मेरे छोटेपन को भूल जाश्रो। देखो, मैं जो कहता हूँ, वह कहाँ तक सत्य है ? देखो, स्वत्व श्रीर दायित्व क्या है ? न्याय ग्रीर नीति किसे कहते हैं ? स्वातंत्र्य तथा स्वाधीनता का रूप कैसा है ?

विद्वान लोग कहते हैं कि मनुष्य की नीतिमत्ता ही उसकी श्रीर पशुश्रों की बुद्धि के बीच की पृथक् करनेवाली रेखा है। मनुष्य में नीति मत्ता न होती, तो उसमें श्रीर पशु में श्रन्तर ही न होता। हमारा स्वाभाविक नैतिक ज्ञान ही न्याय की उत्पत्ति का प्रधान कारण है। कोई कोई कहते हैं कि दोनों एक ही चीज़ हैं। एक तीसरा विद्वान पशु-बुद्ध-श्रीर मनुष्य-बुद्धि का भेद यों करता है:—

'पगु-बुद्धि, स्वभाव श्रीर स्वार्थ पर श्राश्रित होती है;
मनुष्य-बुद्धि श्रपने शेप जगत के साथ के सम्बन्ध का भी
विचार करती है। यहीं से नीति का श्राविभाव होता है। यहाँ
प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य-बुद्धि श्रीर पशु-बुद्धि का
श्रान्तर किस तरह का है १ दोनों में तारतम्य-भेद है, या
जात्यन्तर १ सीधे शब्दों में, दोनों पृथक् पृथक् हैं या केवल गुणों
की ही कमी वेशी है १ इस प्रश्न का उत्तर हमें लोक श्रीर वेद
के ज्ञाता यही देते श्राते हैं कि दोनों पृथक् पदार्थ हैं। मनुष्य
की महत्ता का मुख्य कारण उसकी श्रन्तरात्मा है, जो उसे ही
मिली है। इसीसे वह न्याय श्रीर श्रन्याय, उचित, श्रीर श्रनुचित, भत्ने श्रीर बुरे की विवेत्रना कर संकता है। मनुष्य बुद्धि

सत्या सत्य को निर्णायक होती है; परन्तु पशु को नहीं। यह विवेक अन्तरात्म का परिचायक लक्षण है। यह मनुष्य का प्रतिष्ठित अधिकार है। मनुष्य ही अपनी ऐहिक इच्छा को रोक सकता है, भले वुरे का विचार कर सकता है, और अपनी स्वतंत्रता और न्याय परायणता के काग्ण ईश्वर-स्वरूप वन जाता है।' ये सव बातें सुनने में तो बहुत अच्छी लगती हैं, लेकिन जब विश्लेषण करके देखते हैं, तो थोथी ही नज़र आती हैं।

श्ररस्तू कहता है—"मनुष्य सज्ञान सामाजिक (पश्च) प्राणी है।" एक दूसरे चिद्वान्—"वोनेल्ड" की परिमाषा यह है:—

"इन्द्रियों श्रीर श्रंगों से सेवित वृद्धि ही मनुष्य है।" इस तरह श्रनेकों परिभाषाएँ इस विचित्र पशु (मनुष्य) की की गई हैं जिनमें सबसे श्रच्छी परिभाषा श्ररस्तू की है। इसिलये में उसी को मान कर विचार करता हूं। मनुष्य समाज में रहने वाला पशु है। जब सोचते हैं कि समाज क्या है, तो मालूम होता है कि "समाज" समस्त सम्बन्धों का योग है, इन संबन्धों की श्रद्धला या पद्धत्ति का श्राधार किसी न किसी प्रकार की शतें हैं। ये ही शतें मनुष्य समाज के क़ानून हैं। तब ये शतें श्रथांत् क़ानून क्या हैं। एक दूसरे के पार-स्प रक विचार से स्वरव क्या है। श्रीर न्याय किसे कहते हैं। श्रनेक दार्शनिकों के इस तरह कहने का कोई श्रर्थ नहीं कि "यह ईश्वर प्रदत्त समक्ष है" श्रविनाशी ईश्वरीय या स्वर्गीय श्रावाज़ है, प्रकृति-प्रदत्त पथ-प्रदर्शक, मनुष्य के संसार में श्राने पर उसके लिए ईश्वर का प्रकट किया हुश्रा एक प्रकाश है। यह एक कानून है, जो हमारे हृद्य-पटल पर श्रंकित किया गया है, श्रान्तरिक विवेक-जनित भाव श्रीर बुद्धि की श्रनुङ्का है" इत्यादि। देखने में ये वार्ते चाहे कितनी सच्ची श्रीर सुन्दर हों लेकिन इनका श्रर्थ कुछ नहीं। यह केवल श्रस्पष्ट शब्दाडम्बर मात्र हैं।

नीति के विषय में भी दर्शन कार लिखते हैं "यह स्वर्ग की लक्ष्मी है। संसार में श्रानेवाले हर एक श्रादमी को यह देदी-प्यमान कर देती है। इसी से मनुष्य श्रीर पशु का विवेक होता है।"

किन्तु इस उपवेश से नीति के वास्तिक रूप का पता नहीं चलता। श्ररस्तू कहता है,—न्याय जनता का हित है। यह भी शब्दों का उलट फेर ही है। यह कहना कि कानून बनाने वाले मण्डल का या व्यावस्थापिका समिति का उद्देश्य जनता की भलाई होनी चाहिये, वैसी ही बात है जैसी कि वैद्य का उद्देश्य वीमारों को चंगा करना या पुलिस का काम जनता की रत्ना करना।

श्रव जरा दुसरी तरफ़ से विचार करें। स्वस्व उन सिद्धान्तों का थोग है जिन से मनुष्य समाज चलाया जाता है। या चलता है। इन्हीं की प्रतिष्ठा करना और इन्हीं के अनुसार चलना मानवीय न्याय है। न्याय करना सामाजिक सहज बुद्धि या पशु-बुद्धि की अनुज्ञा का मानना ही है। यदि हम मनुष्यों के आचरण को देखें कि एक दूसरे के साथ जुदी जुदी हालतों में वह कैसा होता है तो हमें समाज को उपस्थिति और अनुपस्थित का अन्तर मालूम हो जायगा। श्रीर जिस नतीजे पर पहुँचेंगे उससे हम फिर तर्क से कामृन का पता लगावेंगे।

जो माता बच्चे की रहा करती है वह समाज की समभ में श्रच्छी माता है, जो ऐसा नहीं करती वह प्रकृति के विरुद्ध श्राचरण करने वाली दुए। है। जो बीमार की सेवा करता है, ढूवते को बचाता है, सवल से निर्वल की रहा। करता है, वह भला श्रादमी है, भाई श्रीर संगी है। जो सेवा नहीं करता निर्वय है, जो किसी के प्राण हरण का कारण होता है वह हत्यारा है। इसी तरह दानी श्रीर चोर, कमाऊ श्रीर हरामखार श्रादि की कल्पना होती है।

पर इस प्रकार के जितने काम देखे जाते हैं सभी में प्रत्यत्त दीख पड़ता है कि मनुष्य अपने सजािन या सहचर की श्रोर किसी श्रान्तरिक श्राकर्पण शिक से ही खिंचता है। मनुष्य में स्वभाव से ही एक श्रद्धात समवेदना पैदा होती है, जैनं प्यार, इत्तद्धता, सहानुभूति श्रादि। यदि मनुष्म चाहे कि वह ऐसा न करे तो उसे श्रपने मन से लड़ना पड़ता है; क्योंकि स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध चलने में उसे कष्ट प्रतीत होता है। यह सब बातें नैसर्गिक समक्ष से होती हैं। इनका कारण ज्ञान (Intelligence) नहीं है।

इस लिये ऊपर कही हुई वार्ती से मनुष्य श्रीर पश्च का कोई निश्चयात्मक श्रन्तर स्पष्ट नहीं होता। पश्च भी प्यार करते हैं। गाय श्रीर चन्द्ररिया श्रपने बच्चों को जब तक वे निर्वल रहते हैं प्राण से श्रधिक प्यार करती है। बहुधा माताएँ श्रपती जान को जोखिम में डाल कर श्रपने वच्चों को खतरे सं बचाती हैं। स्त्रियों को श्रपने बच्चे पर श्रत्याचार करते चाहे देखा भी हो पर पश्चश्रों को ऐसा करते नहीं देखा गया। ऐसे पश्चां की समता उन वीरों से ही हो सकती है जिन्होंने प्राणीं की बाज़ी लगाकर श्रपने देश को स्वतंत्र करने के लिये साहस दिखलाया हो। हरिगों में भी सामाजिक संगठन होता है। जब इनका भूंड चरता होता है तब उनमें से एक सर कँचा किये पहरा देता है-खतरे के समय सब की भागने के लिये सावधान कर देता है। श्रनेक शिकारी जानवर मिल कर शिकार करते हैं, एक दूसरे को बुलाते हैं, श्रहेर का पता वत-लाते हैं, खतरे में एक दूसरे का साथ देते हैं। एक बन्दर को श्राप मारें या उसके वचे को छीनलें फिर देखिये, सारे वन्दर किस तरह मिलकर आपका सामना करते हैं। जब कोई हाथी गढे में फँस जाता है तो दूसरा उसकी सहायता करके निकाल

ने को चेष्टा करता है। गार्ये जंगलों में ऋपने वच्चों को बीच में सुरित्तत रखकर चरती हैं, इस लिए कि उनके वचों को भेड़िया न लेजाने पावे। जो कदाचित भेड़िया पकड़ ही ले तो श्रपने सींग हिलाकर गार्ये बड़ी जोर से भेड़िये पर त्राक्रमण करतीं ग्रीर वच्चे को छुड़ा लेती हैं। घोड़े, गधे, शूकर सभी अपने सहचरी श्रीर सजातियों की मदद करते हैं। पशुत्रों में प्रेम सम्बन्ध भी वहुत प्रगाढ़ होता है। मनुष्यों का विवाह उनके सामने कोई दकीकत नहीं रखता। फिर भी पशु लड़ाई भगड़ों से वरी नहीं होते। इम यह वात मनुष्यों में भी देखते हैं। वे द्या, न्याय, नीति, दान, सहायता, सहानुभृति, सम्बेदना श्रादि सव कुछ रखते हुए भी जड़ाई भगड़ों, लूट खसोट, छीना-भएटी में पशुश्रों से अधिक श्रागे वढ जाते हैं। यहाँ तक कि कुत्तों को भी श्रपने स्वभाव से लिजित कर देते हैं, इसीसे मानना पड़ता है कि इन सब वातों से पशु श्रौर मनुष्य का श्रन्तर विस्पष्ट नहीं होता।

सामाजिक बुद्धि मनुष्य में चाहे पशु से कुछ श्रधिक हो, यह तारतम्य दूसरी वात है, परन्तु प्रकृति दोनों की एक है। मनुष्य संग साथ की ज्यादः परवा करता है, पशु एकाकी रह कर भी समय व्यतीत कर जेते हैं। मनुष्य में सामाजिक श्रावश्यकताएँ श्रधिक श्रनिवार्य्य श्रीर ऐचीदः होती हैं; वैसे ही उनके साधन भी होते हैं; पशुश्रों की जरूरतें कम, ढोली श्रीर निर्वल होती हैं। इस लिए एक प्रकार से मनुष्यों से पशुश्रों को

. - - -

श्रच्छा भी माना जा सकता है। पशुश्रों में वलात् स्त्री संभोग, समय से पहले गर्माधान चेष्टा श्रीर पहणों का पुरुषों के साथ श्रस्वाभाविक व्यभिचार श्रादि श्रनाचार नहीं देखे जाते। लेकिन मनुष्य जाति के पशु में यह सारी वार्ते मौजूद हैं। वात यह है कि मनुष्य श्रपनी जाति श्रीर व्यक्ति दोनों की खातिर जीता है श्रोर पशु केवल श्रपनी जाति स्थिर रखने के के लिए। श्रभी तक जो विचार हुशा, उससे मनुष्य की पशुश्रों से श्रेष्टता प्रतिपादित नहीं हो सकी।

यदि हम में दुराचार लंपटता, लालच, स्वार्थ परता, श्रत्याचार यदले का भाव श्रादि दुर्गु णों का समावेश नैसिर्गिक है तो हम में दया करने, खैरात देने, न्याय श्रोर प्रेम करने के भाव भी नैस-गिंक हैं। इससे तो हम किसी भी विशेषता या श्रेष्टता की श्रोर पैर नहीं रखते। यहाँ तक तो हमें पशु बुद्धि की श्रन्थ गति, दो पैर दो हाथ वाले पशु (मनुष्य) श्रोर चार पैर या चार हाथ वाले पशुश्रों में समान नजर श्राती है। लेकिन श्रन्तर तो जकर है। फिर वह क्या है।

इसका एक सरत सीघा दार्शनिक उत्तर यह है कि "मनुष्य तो ग्रपनी सामाजिक योग्ता समक्षता है। वह जानता रहता है कि मुक्त में सामाजिक योग्यता है, लेकिन जानवर इस गुण को रखते हुए भी यह नहीं समक्षते कि हम में यह बात है। हम ग्रपनी सामाजिक बुद्धि से किये हुये कामों की श्रलोचना, विचार एवं तक करते हैं, पर पशु ऐसा नहीं करते।"
यह बात हम पशु मनोविज्ञान के मनन करने से जान
सकते हैं।

कुछ श्रीर श्रागे वहें तो जान पड़ता है कि हमारे तर्क श्रीर विचार शक्ति के कारण यह सब है, जो हम में है श्रीर पशुश्री में नहीं है। इसी से हमें खयाल होता है कि कौनसा काम इमारे श्रीर दूसरों के लिए हानिकर है। बहुत से काम पहले हमारे लिए हानिकर होते हैं फिर दूसरों के लिए। बहुत से काम पहले द्सरों को हानि पहुँचाते हैं फिर हमें। इसी लिए हम उस सामाजिक बुद्धिंका जो हमें क्रम से चलाती है विरोध नहीं करते। इसीका नाम न्याय है। यह हमारी तर्क शक्ति है जो हमें वतलाती है कि स्वार्थी, डाकू श्रौर हत्यारा या यों कहें कि समाज-वंचक पापिष्ट है श्रीर जब मनुष्य जान वृक्ष कर दोप करता है तो वह प्रकृति का शत्रु और समाज के समस असम्य अपराधी है। वह दूसरों के लिए भी दानिकर है श्रीर श्रपने लिए भी। श्रस्तु, हमारे सामाजिक भाव-चाहे घह धर्मो के नाम पर हों, चाहे कानून श्रथवा नीतिमत्ता के नाम पर-श्रीर हमारी तर्क शक्ति हमें इस वात के लिए साव-धान करती है कि हम लोग अपने किए की जिम्मेटारी अपने ऊपर लें इसी सिद्धान्त पर वदला, पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त श्रीर दगडविधान वने हैं। इसी को दगड देनेवाना न्याय माना जाता है।

इस तरह पर हम श्रपने सहचरों के साथ के संबंधों पर तर्क-वितर्क करते हैं। हम श्रपने खाने, पीने, उठने, चैठने, श्रीर ज्याह-शादी की छोटी-छोटो वातों पर भी विचार करते हैं। ऐसी कोई भी वात नहीं, जहाँ हमारी तर्क-शीलता कतर-ज्योंत टाँग न श्रड़ाती हो। पर इस तर्क श्रीर विचार से वस्तु स्थित में कोई श्रन्तर नहीं श्राता। हमारे विचार करने से किसी वस्तु के परिचायक लक्षणों का न तो कपान्तर हो सकता है, श्रीर न प्रकृति श्रपना कोई नियम ही बदल सकती हैं। भले ही श्राप विचार करें कि सूर्य क्यों इतना बड़ा है, कैसे उगता है, पृथ्वी कैसी है, पानी वरसने के क्या कारण हैं; पर क्या श्राप के सोचने श्रीर विचारने का कोई प्रभाव प्रकृति के किसी नियम पर पड़ सकता हैं!

मनुष्य प्रकृति का श्रंग है, प्राकृत है। उसमें कोई बात पेसी नहीं हो सकती जो पशुश्रों की नैसिंगिक प्रकृति से सर्वथा भिन्न हो। यदि कुछ बातों में कुछ श्रन्तर देखा जाता है तो तारतम्य मात्र है, न कि जात्यन्तर भेद, जैसा कि कपर कहा गया है। हमारी नीति मत्ता भी मनुष्य श्रीर पशु में पेसा कोई भेद नहीं स्थापित कर सकती, जो हमारी उक्त प्रतिज्ञा को तोड़ सके।

सामाजिकता के भाव को कुछ उच्चतर श्रादर्श से देखने वाल कहते हैं—जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है—िक सामाजिकता का दूसरा दर्जा न्याय है । न्याय की परिभाषा एक प्राचीन लैटिन विद्वान ने यों की है :—

" justum aequale est, injustum inaequale" श्रथीत् समता न्याय है, विषमता श्रन्याय ।

इसी को प्राउढन दूसरे शब्दों में यों कहता है :-

"Recognition of equality between another's personality and our own, is justice."

इसने इस वात को सिद्ध किया है कि प्रकृति जनित जो गुण पशु में हैं, वे ही मनुष्य में भी, क्योंकि दोंनों ही पशु हैं। हाँ, पशु में वालकों की तरह केवल समभा ( Instinct ) होती है श्रीर मनुष्य में ज्ञान (Intelligence)। इसलिये यदि न्याय के भाव इमर्मे हैं तो पशुत्रों में भी हैं। स्रन्तर इतना है कि हम विचार वाँध सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं, श्रीर पशु नहीं। किन्तु इतने श्रन्तर के कारण प्रकृति नहीं वदल सकती। इममें श्रोर पशुश्रों में श्रोर भी जो समाज संवंधी वड़े श्रन्तर हैं, उन्हें श्रागे चलकर स्पष्ट करने की कोशिश की जायगी। यहाँ पहले हमें यह जान लेना होगा कि समाज, न्याय श्रीर समता समानार्थेक शब्द हैं। शाश्वत न्याय या प्राकृत न्याय श्रीर सामाजिक न्याय में श्रन्तर है। पहला श्रटल, मूल श्रीर मनुष्य जाति का पथ-प्रदर्शक है, दूसरा नकली श्रौर समाज पर श्राधार रखनेवाला । एक का श्राधार निसर्ग है, इसरे का समाज या सामाजिक कानून का वर्ताव।

यदि कोई श्रादमी पानी में वह गया हो, मरणासन हो श्रीर दूसरा श्रादमी जङ्गल में नदी के किनारे-किनारे जाते हुए उसे देखे, तो उसका यह कर्तव्य होगा कि किसी न किसी तरह वचावे। यदि वद डूवते हुए को वचा लेने का प्रयत नहीं करता, तो उसे समाज दोपी ठहरावेगा । लोग उसे निर्दय श्रीर इत्यारा तक कहेंगे । संभव है, कानून जान-वृक्त कर इस निर्दयता पूर्ण श्रसावधानी करने के कारण दएड का भी विधान करे। मान लीजिये कि उक्त यात्री की नीति मत्ता ने हवते हुए पुरुष के बचाने का ध्यान दिलाया श्रीर उसने उसे बचा लिया श्रीर थोडी देर में यह करने से यह ठीक भी हो गया। श्रव उसे खाने की ज़करत है तो क्या मुसाफिर के पास जो खाना है उसमें से भी उस उद्भृत पुरुप को हिस्सा मिलेगा र यदि पानी में डूबते हुए मनुष्य की जान बचाना कर्तव्य है तो भूके को भूक से मरने से बचाना अपने खाने में हिस्सेदार बनाना भी कर्तव्य है। संसार के सभी पदार्थों पर तो मनुष्य मात्र का समान अधि-कार है। जो समाज मनुष्य के जीते रहने के श्रधिकार की इस तरह पर रज्ञा करता है कि श्राग में जल कर पानी में इव कर मरने नहीं देता, वही समाज यदि भूख से मनुष्यों को मर जाने देता है, तो समाज के लक्त्णों में ज्याबात होता है। पर इस देखते हैं कि कोई सड़कों पर रात बिताने वालों को अपने घर का हिस्सेदार नहीं बनाता, विना श्रत्र-वस्त्र के दुख पाने वाले को अपने श्रन्न श्रौर वस्त्र में हिस्सा नहीं देता। क्यों ! समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य श्रवाधित, श्रप्रति-विन्धत श्रौर श्रसीमावद्ध होता है।

पर नहीं मनुष्य अपने भोग्य कदार्थ दूसरे को नहीं देना चाइता। उसे डर है कि कभी श्रापत्ति का समय श्रा जायगा, तो में क्या कहँगा दिसलिए अपने लिए वह अलग हो पदार्थों का संचय करता है। इसी कारण मनुष्य लूट-खसोट छल-फरेव चोरी डकैती करने लग जाते हैं। वह कभी कभी हत्या भी कर डालते हैं। पशुगण में कर्तव्य का खयालं नहीं होता, क्योंकि उनकी बुद्धि में पूर्वापर के विचार को जगह नहीं होती। उसकी समक्त मनुष्य के ज्ञान के समान नहीं। उन्हें श्रपने कामों से भले-बुरे नतोजे को जानने योग्य समक नहीं होती। श्राश्चर्य तो यह है कि ज्ञान भाएडार मनुष्य, पशुश्रों में सर्व श्रेष्ट, संग-प्रिय, समाज-प्रेमी जन्तु का ज्ञान भी उसे कानून **उल्लंघन करने का रास्ता वतलावे।** यदि मनुष्य का ज्ञान स्वार्थ परता ही के लिए है, तो श्रच्छा हो कि ऐसा छान, ऐसी बुद्ध मनुष्य में से सदा के लिए जाती रहे। ऐसी बुद्धि एवं ज्ञान वाले मनुष्यों से पशु बहुत अन्हे हैं, जो दृसरे का भला नहीं तो बुरा भी नहीं चाहते या सोचते।

पशुत्रों में यह भगड़ा नहीं के वरावर है कि यह सम्पत्ति मेरी है यह श्रन्न, यह वस्त्र मेरा है; हम श्रकेले इसे खायँगे, रख छोड़ेंगे श्रयवा नष्ट कर डालेंगे, इस पर दूसरे का श्रधिकार नहीं हो सकता। हाँ, मिलकर काम करने वाले साभीदार अपने श्रपने भाग के भागीदार होते हैं क्योंकि वह श्रपने सामीदारों के समाज के लिए काम करते हैं। लेकिन किसी श्रादमी को जिसे वेतन देकर रखते हैं, नफ़ा चुक़सान में हिस्सा नहीं देते क्योंकि उसे श्रपनी समाज में नहीं समभते । पर पश्रश्री से काम लेकर इस चाहे जितना माल पेहा कर उन्हें सूला चारा डाल देते हैं, हिस्सा करके उनका हिस्सा उन्हें नहीं देते। निसर्ग से हमारा सवका सामाजिक सम्बन्ध पक है। सच तो यह है कि संसार के मनुष्यों के साम्पत्तिक सम्बन्ध इतने मिले जुले हैं कि एक ही मनुष्य-समाज संसार में है। श्रलवत्त थोड़े से मालदार मालिक लोग, जो श्रम नहीं करते, श्रपने हक या लहु के बल से माल एकत्र करते हैं, समाज के बाहर के जोग हैं। न यह अपनी सम्पत्ति में किसी को भाग देते हैं, न दूसरा उन्हें देता है। विना पारस्परिक योग के मनुष्य समाज का सिवा धन पात्रों के जो मालिक वनकर जबरद्स्ती हिस्सा ले लेते हैं, काम ही नहीं चल सकता। इस तरह पर समता की समाज के लिए श्रनिवार्य्य श्रावश्यकता है। विना इसके न तो श्रीद्योगिक काम चल सकते हैं श्रीर न सेती वारी न वाणिज्य न्यापार । इसलिए समाज के विरुद्ध जाना न्याय के विरुद्ध जाना है श्रीर न्याय के विरुद्ध जाना समाज के विरुद्ध जाना है। क्योंकि समाज के हित के लिए समाज ने जो अपने नियम वनाए हैं, वही कांनून हैं श्रीर समाज में समता स्थापित करना ही न्याय है श्रीर विषमता श्रन्याय। इससे यह सिद्ध हुश्रा कि न्याय, समाज श्रीर समता समानार्थक हैं।

इस सिद्धान्त पर विचार पूर्वक ध्यान देने वालों को मालूम हो जायगा कि जो सामित्त्व का दावा करता है—कहता है कि यह धरती मेरी है, यह गाँव मेरा है, यह भागडागार मेरा है, इन पर रूसरों का कोई हक नहीं—वह समाज में विषमता फैलाता है; विषमता श्रन्याय है, इसिलिए वह श्रन्याय करता है, समाज में भेद पैदा करता है, इसिलिए वह समाज द्रोही है। पर जो सब मनुष्य के पास समान पदार्थ हो, तो श्रलवित कोई हर्ज नहीं क्योंकि समता स्थिर रहती है। हाँ, इस समता को कायम रखना चाहिए। जब मनुष्य वढ़ जायँ तो बढ़े हुए लोगों का भी शामिल करके समानाधिकार देते रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में श्रिधिक जानने की इच्छा रखनेवालों को लैनिनिज्म पढ़ना श्रीर मनन करना चाहिए। संसार सबके लिए एक समान वना है। श्रकृति का फल सबके लिए है। शाध्वत न्याय के विरुद्ध सामाजिक न्याय होना श्रमुचित है।

श्रव खतन्त्रता पर थोड़ा सा विचार करना चाहिए। खतन्त्रना छा श्रर्थ है वाहण हस्तावेपों से रहित मनुष्य (जिन्हमें ख्रियाँ श्रीर गरीव लोग भी शामिल हैं) श्रपने जीवन को बिना ख्रयम् श्रनावश्यक कष्टउठाए श्रीर दूसरों को कष्ट दिए इस संसार में विता सकें। यह तभी हो सकता है जब चोरी, डकैती, लूट-खसोट श्रीर मनुष्य-मनुष्य का भेद-भाव भिट जाय। सबको देश की धरती, श्राकाश, जल, वायु, खेतों, श्राकरों से एक समान लाभ उठाने का श्रवसर हो। उस देश को स्वतन्त्र नहीं कह सकते, जिसके एक मुट्ठी भर श्रादमी तो समस्त प्राकृत पदार्थों को श्रपनी जबरदस्ती से श्रात्मसात् किए वैठे हों, श्रीर दूसरे श्रधिकांश देशवासी श्रव्य-वस्त्र के लिये कष्ट पाते हों, लालायित रहते हों, बात, वात में श्रशकृत (गैर कुद्रती) कानून उनका गला घोंटता हो। केवल इसलिए कि हम को सताने वाले हमारे ही देश के हैं, हम स्वतन्त्र हैं, श्रीर यदि विदेशी हैं तो हम परतन्त्र हैं, यह भावना सदा श्रयोक्तिक श्रीर श्रसंगत है।

दलसे यह प्रत्यक्त होता है कि समता श्रीर स्वातन्त्रय का श्राधार न्याय ही है। जब न्याय समाज तथा समता समानार्थक शब्द हैं, तो सामाजिक स्वातन्त्रय भी इन्हीं के भाव का द्योतक है। जहाँ कहीं भी मनुष्य को पृथ्वी से पैदा किया हुश्रा पदार्थ खाने की स्वतन्त्रता नहीं, बहाँ न्याय कहाँ ? जब पहले-पहल मनुष्यों ने भू-माता की गोद में नेत्र खोले तब क्या घरती का बराबर बँटवारा था ? क्या लोग हिस्से बाँट का पट्टा लेकर श्राप थे ? यह सब भेद-भाव कलपित श्रीर निर्मूल हैं कि यह घरती हमारी है, हम श्रमीर हैं, तुम भूमि बिहीन निर्धन गरीब हो। यह हक कब, कैसे श्रीर कहाँ पैदा होता है

कि एक ग्रादमी मीलों घरती का श्रिधकारी वन जाय श्रीर इसरों के पास एक इश्च भी घरती न हो ? जिस देश में ऐसी ग्रिनेसिंग ग्रवस्था श्रीर व्यवस्था देखी जाती है, उस देश के निवासियों को स्वतन्त्र कहना स्वतन्त्रता का श्रिपमान करना है। इस सम्बन्ध में श्रिधिक विस्पष्ट श्रीर विश्लेपण पूर्वक विस्तृत रूप से कहने का यह स्थान नहीं है।

मैं समभता हूँ कि इस छोटे से लेख में इतना मसाला है, जो चतुर लोगों को इस बात के गम्भीर विचार में डाल देगा कि न्याय, गीति, समता श्रोर स्वातन्त्रय क्या हैं। एक बार जो व्यक्ति, जाति या समाज इस विचार में पड़ जायगा, वह निश्चय ही उचित सिद्धान्त पर पहुँचे विना न रहेगा।

यह लेख नवस्यर सन् १९२५ की माधुरी में निकला था।



## प्र इतिहास की कसोटी प्र इतिहास की कसोटी

अपि प्रिकार्ध की खोज मनुष्य का स्वाभाविक गुण है।

सत्या-सत्य के निर्णय को इच्छा इसको जनम

स्मित्रिक प्रदेश में ही मिली पाई जाती है। मनुष्य

जिल्दी से उसी वात की सत्य मान लेता है

जिसे वह प्रत्यत्त जान लेता है। देखने, सुनने, सूँघने, चखने

श्रीर छुकर जानने लायक वस्तु को वह देख, सुन, सूँघ, चख

श्रीर छुकर उसकी सत्यता का निर्विवाद निश्चय करता
है। यह प्रत्यत्त प्रमाण होता है, इसी को वह प्रत्यत्त सत्य
कहता है।

लेकिन जब वह देखता है कि संसार के अगिएत ज्ञातव्य पदार्थों को इस तरह पर प्रत्यदा अनुभव नहीं किया जा सकता तो वह बुद्धि और विचार से अनेक पदार्थों को जानने की इच्छा । करता है। बुद्धि के आधार पर जो जाना जाता है उस सबको प्रत्यद्म से मिलान खाता हुआ जान कर ही वह सन्तुष्ट होता है। इसी प्रत्यद्म के सहारे समता या सामान्यता देख कर उपमान के द्वारा न जानी हुई बात को वह जानता है, एक घटना को देख कर दूसरी मिलती जुलती घटना का श्रमुमान करता है। जब वह देखता है कि वहुत कँची पहाड़ी से नीचे खड़े हुए हाथी का श्राकार वहुत ही छोटा दिखाई देता है, तब उसके मन में श्रपनी श्राँखों देखी सब वातों को जैसो की तैसी मान लेने में संकोच होने लगता है श्रोर विचारता है कि चाँद, सूरज श्राँर तोर जो मुसे इतने छोटे दिखलाई देते हैं, श्रवश्य इतने छोटे नहीं हैं। ज़रूर जितने बड़े दीखते हैं उससे कहीं श्रधिक बड़े हैं। जब वह देखता है कि विना माता पिता के प्राणी नहीं पैदा होते तो हज़ारों वर्ष पहले के लोगों के भी माता पिता होने का श्रमुमान करता है। इस तरह मनुष्य को बुद्धि की सहयता से प्रत्यन्त किये हुए निर्णयों का भरोसा ही प्रत्यक्ष प्रमाण रह जाता है। क्योंकि उसे साधारण प्रत्यन्त वातों में भी सन्देह उठने लगता है।

फिर जब देखा जाता है कि हरेक श्रादमी संसार की सारी यातों को जिनका जानना ज़क्सी है या जिनके जानने की उसके मन में भवल इच्छा केवल जानकारों के लिए ही होती है, नहीं जान सकता, तो उसे पूर्व पुरुषों की श्रनुभूत वातों को सुनने व मानने के लिये तैयार होना पड़ता है। इस सृष्टि में हमारे पूर्व-जों ने श्रनेक वानों की सत्यता श्रपने श्रनुभव से हमसे पहले जानों य हमारे लिए श्रच्छा द्यान सिश्चत करके छोड़ा। वड़ी तत्परता के माथ श्राज उनकी वानों से हम लाम उठाने को तियार रहते हैं, उन्हें श्राहर से श्रपनाते हैं। इसी पुराने लोगों की कही हुई वात को शाब्द प्रमाण कहते हैं। इसी इतिहास सम्बन्धी शाब्द प्रमाण को हम ऐतिहासिक प्रमाण कहते हैं। यही इस निवन्ध का विषय है। इसीलिए हमने इस निवन्ध का नाम इतिहास की कसौटी रखा है।

श्रव हम पहले विशेषता के साथ किर इस वात पर विचार करेंगे कि प्रमाण क्या है ?

श्रनेक विषय केवल विचार करने ही के होते हैं, जैसे 'ईश्वर' जैसा संसार मानता है, कोई पदार्थ, है या नहीं ? समय श्रीर दिशाश्रों से परे कुछ है या नहीं १ है तो क्या है ? ऐसे विचारों में एक सीमा तक तर्क शास्त्र ही काम दे सकता है, विशुद्ध विवेक से ही निर्वाह होता है, कभी-कभी विशुद्ध विवेक से वाटर दोकर विद्वान् लोग श्रपनी उड़ान लगाते हैं श्रीर श्रपने सिद्धान्त स्थापित करते हैं। हमको यहाँ ऐसे विचारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन विचारों का प्रमाण तर्क, युक्ति श्रीर मनोवैज्ञानिक श्रनुभवों से श्रीर सहज श्रनुभव की प्रेरणा से मिलता है, उनसे भी हमारा विशेष सम्बन्ध न होगा। जितने प्रयोग में स्राने वाले वैज्ञानिक प्रश्न हैं, चाहे वह दूसरे के श्रनुभृत हों या नप ही हमारी समभ में श्राप हों. उनकी सत्यता प्रयोग शाला में प्रमाखित या अप्रमाखित की जा सकती है। ग्रानेक भौतिक विज्ञान की वैचारिक वातें जैसे ग्रहों की नाप, तोल ग्रौर दूरी ग्रादि, ऐसी ही ग्रौर ग्रनेक बातें हैं

जिनका गणित, तर्क, गतिस्थिति श्रादि शास्त्रों की सम्मिलत सहायता से होता है, किन्तु ऐतिहासिक वात के सत्यासत्य का निर्णय केवल शाब्द प्रमाण के ही श्राधार पर होता है।

संसार इतिहास मय है, हम विना इतिहास के एक तण भी गुज़र नहीं कर सकते। प्रतिदिन २४ घंटों में हम जितने काम करने हैं उनमें श्रधिकांश कानों के ही भरोसे पर होते हैं। कोई भी श्रादमी क्यों न हो, सारे कामों को श्रकेला नहीं कर सकता। उसे श्रवश्य दूसरों की वात का श्राश्रय लेना पड़ता है। जब हम भूत काल की किसी घटना को जानना चाहते हैं नव हमें वैद्यानिक सत्य की तरह निर्णय करने का कोई साधन ए। नहीं दोता और हारकर हमें पुराने समय के लोगों की वार्ती का सहारा लेना पड़ता है। पहले चाहे लोगों को इतिहास की परल रही हो या न रही हो, पर श्रव यह नहीं हो सकता कि इम इतिहास की श्रोर से शाँखें वन्द कर वैठें। इस श्राज के समुत्रत संसार में पढ़ना. लिखना, बहुत बढ़ गया है। बिरला ही श्रादमी पैसा होगा जो पिछले समय के इतिहास को जानने का श्रमिलापी न हो, इतिहास धर्मिक हो, सामाजिक हो, राज-नैतिक हो, गली चलता श्रादमो भी कुछ न कुछ सुनना श्रीर जाननो चाहता है।

लोगों की यह जानने की इच्छा होती है कि प्राचीन काल में हमारे याप-दादों में कीन सी रीति रिवार्जे प्रचलित थीं विवाद कैसे होते थे, मकान कैसे यनते थे, कपड़े किस प्रकार के पहने जाते थे इत्यादि, इसी प्रकार के पहन थोड़े से ज्ञान बढ़ जाने पर दूसरे देशों की यावन भी मन में जठते हैं। पुरानी शासन प्रणाली, राजनीतिक परिस्थित, न्यक्तियों श्रीर जातियों के राजनीतिक सम्बन्ध प्रभृति श्रनेक वार्तों को भी हममें से सब नहीं तो अनेक जानने को नालायित रहते हैं। बहुतेरे लोग प्राचीन कान के नैतिक भावों श्रीर विचारों को जानकर यह निश्चय करने की कामना करते हैं कि नैतिक भावों का उत्कर्ष कमशः कैसे हुश्रा इसी प्रकार लित कलाश्रों का, धामिक भावों का उद्देश समिश उन्नति करने का भी इतिहास हमारे कम मनारंजन के कारण नहीं हैं। हम श्रापे वाप दादाश्रों के उत्थान श्रीर पतन की कहानियों के सुनने को उत्सुक रहते हैं। श्रापने देश की महत्व पूर्ण घटनाश्रों के सुनने को उत्सुक रहते हैं। श्रापने देश की महत्व पूर्ण घटनाश्रों के सुनने को उत्सुक रहते हैं। श्रापने देश की महत्व पूर्ण घटनाश्रों के सुनने को उत्सुक रहते हैं। श्रापने देश की महत्व पूर्ण घटनाश्रों के सुनने को उत्सुक रहते हैं। श्रापने देश की महत्व पूर्ण घटनाश्रों के सुनने को तिए सदा वैचैन रहते हैं।

फिर ऐसा इतिहास जो हम उपर्युक्त श्रनेक वातों की ख़बर दे, कहाँ मिले, कैसे संकलित हो, कैसे वने जिससे हमारी कुण्णा मिटे। श्रधिकतर तो हमें किंवदन्तियों श्रीर दन्त कथाश्रों पर विश्वास करके रह जाना पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल की घटनाश्रों का यही हाल है, हम उनके सत्यासत्य का निर्णय ही नहीं कर सके। हमारे पास साधन ही नहीं है कि जिससे उन वातों की वावत जान सकें कि कीन सी वात सत्य है, कीन सी

श्रसत्य है। जहाँ जो बातें नैसिंगिक नियमों के विरुद्ध पाई जानी हैं उनको श्रलवत्त हम जोग मन में श्रसत्य समक्त लेते हैं।

जिस समय के लिखे हुए इतिहास मिलते भी हैं तो उनमें ऐमं भेद पाये जाते हैं कि विना छान वीन किये किसी एक को सच्चा श्रौर दूसरे की भूठा कहना न्याय संगत नहीं ही सकता। एक ही बान को जितने श्रादमी कहते हैं उतनी तरह सं कहते हैं। किसी घटना पर दो व्यक्तियों के वक्तव्य सुनिये तो मालूम होगा की बहुत सी बातों में दोनों में से एक की वात प्रवश्य ही विश्वास करने के योग्य नहीं है: क्योंकि परस्पर एक दूसरे का द्याघात होता है। कोई दो श्रादमी एक ही मन, विचार श्रौर स्मृत शक्ति वाले नहीं होते। एक किसी ह्याचार, विचार, ह्याँर भाव को महत्व देता है, दूसरा श्रीर किसी को। यह बात जानने के लायक है श्रीर सहज में जानी भी जा सकती है। जो लोग इतिहास के सच्चे प्रेमी हैं श्रीर चाहते हैं कि इस विद्या का संसार में विकास श्रीर प्रतार हो वे इसी श्रोर श्रधिक श्रम के साथ श्रपना दिमाग लड़ाने रहते हैं, इन्हें तो यह बात जान लेनी बहुत ज़रूरी हैं कि वास्तविक इतिहास-जान क्या है शक्त से छाता है श श्रीर मनुष्य के श्रन्य शान की दूसरी शाखाश्रों से इसका किनना प्रान्तर है।

बिना प्रामाणिकता के जो बात मान ली जाती है उसी का नाम श्रम्ध विश्वास श्रोर कोमल शब्दों में सरल विश्वास या मात्र विश्वास है। इतिहास का श्रिधिकतर श्रंश विश्वास ही पर टिका रहता है विना इसके काम ही नहीं चल सकता। जब तक इममें मुदों को बुलाकर पिन्लक में श्रन्वेषक प्रश्नों के सदित पृछुने का श्रवसर न मिले, सचाई का सीधा व वस्तुतः ,प्रमाण कैसे मिले ! श्रगर श्रवसर मिले, यह श्रसम्भव वात सम्मव भी हो जाय तो इस बात की ज़िम्मेदारी कोई नहीं ले सकता कि सब को याद एक सी होगी। श्रगर श्राज महाराणा प्रताप श्रीर सम्राट् श्रकवर को बुलाकर उनके पारस्परिक सम्बन्ध की घटनात्रों की वावत वहुत से प्रश्न किये जायँ तो श्रनेक वार्तों का उत्तर उनसे भी यही मिलेगा कि याद नहीं। फिर ऐसे लोगों की तो बात ही क्या है जिनका घटना के साथ कोई सम्बन्ध न हो। हमारा ऐतिहासिक कान जो कुछ भी प्रामाएय मानता है वह दूसरों के ही प्रमाण पत्र के श्राधार पर मानता है, चाहे यह हमारी पुरानी ।स्मृति-भागडार का फल हो, चाहे कोई नई वात हमारे सामने आई हों। दृसरों की वातों को सुनकर इस जिस निष्कर्ष पर पहुँचते . हैं वह विश्वास ही है, कोई वास्तविक ज्ञान नहीं है। हम तो श्रपने सामने जो सामान मौजूद होता है उसी से श्रपने वश भर सञ्जा नतीजा निकालते हैं। अगर में आँधी चलते, श्रोले पड़ते देख लूतो कहा जा सकता है कि मैं जानता हूँ कि

द्रांधी चली, ख्रोले पड़े, लेकिन किसी शैतान की तरह मशहूर जाधारण घटना की वावत भी, चाहे हमारा उस पर कितना ही पक्षा विश्वास क्यों न हो, यह नहीं कह सकते कि हम यथा-वत् उसे जानते हैं, श्रगर कहूँ तो शायद ही कभी हमारा यह फल्ना यावन तोले पाव रत्ती ठीक हो सकेगा। क्योंकि किसी घटना को श्राद्यापानत देखना श्रीर ज्यों का त्यां याद रखकर फदना बहुत कठिन है। इम कोई मेला देखने गये तो मेले की हर पक बात की फैसे देख कर जान सकते हैं। बरात निकलते देगकर इम कइ सकते हैं कि किसी का या श्रमुक व्यक्ति का विवाद है। किन्तु वरात में कितने हाथी, घोड़े, बाजे, ब्रातिश-पज़ी श्रोर वराती हैं, क्या क्या रहमें हुई', कव हुई', कैसे हुई', इन वातों के लिए तो दमें अवश्य ही दूसरों की जवानी पर विश्वास करना होगा। प्रायः ऐतिहासिक जानकारो जो श्रधि-फांश लोगों को होती है वह इससे भी कम होती है। यह लोग विचार श्रीर विवेक से काम लेकर किसी घटना का निर्णय नहीं करते, सिवा इमके कि वह समक्त लें कि जो इमने ट्सरों से सुना है सोलह श्राने सत्य है। इस प्रकार के विश्वास फी मात्रा लोगों में धार्मिक वानों के सम्बन्ध में इतनी पाई जाती हैं कि जिसका ठीक ठिकाना ही नहीं होता। कोई सुरज को निगल जाता है, कोई चाँद को तोड़ दंता है, कोई पहाड़ उठा लाता है, कोई हवा पर वैमहारे उड़ता है, कोई श्राकाश में घोड़े दी दाता है और सब सत्य और प्रामाणिक वार्त समको जाती हैं।

इतिहास का श्रभ्ययन ऐसे सरल विश्वासियों से नहीं हो सकता जो हर एफ वात को विना विचारे दुध की सी घुंट गले के नीचे उतार लें। साथ ही इतिहास का श्रध्ययन विना दूसरों नी बात को बहुधा श्रंगोकार किए भी नहीं हो सकता. यदि हम अपने नित्य प्रति के जीवन में ही किसी का विश्वास न करें, हरेक बात को स्वयं निर्णय करने श्रीर देखने को दौड़ते फिरें तो हमारी जीवन यात्रा दुस्तर हो जाय। इसलिए हमें श्रपने संवाद-दात। की वात को एक वार तो ऐसा ही मानना पड़ता है कि वह शुद्ध हृद्य से जिस वात को जैसी जानता है, वैसी कक्ष रहा है श्रोर निर्भान्त सत्य कह रहा है। चाहे हमारा संवाद-दाता अपने ज्ञानेन्द्रियों और वृद्धि से काम लेने में अयो-ग्य हो, चाहे संवाद-दाता के विचार पत्तपात पूर्ण हों, हम उसे भूठा नहीं समभा सकते जब तक उसकी सचाई के विरुद्ध कोई पुष्ट प्रमाण न मिल जाय । दूसरों की वार्तों को लोग क्यों सच मानने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रश्न का उत्तर है 'मनुष्य स्वभाव'। मनुष्य स्वभाव में जहाँ दूसरे की बात को ठीक मानना है वहाँ उसमें श्राविष्कार करने की प्रवृत्ति श्रीर जो सुने उसे जैसी याद रहे उसे वैसी कह देने की श्रादत भी है। कभी-कभी मनुष्य स्वार्थ वश सवाई को छिपाता है या उसमें हेर-फेर करता है, उस पर रंगामेज़ी करता है या हाशिए चढ़ाता है। इसलिये भुठाई से एक दम बचने का कोई उपाय नहीं। इस दशा में हमें यही उचित जान पड़ता है कि हम जो कुछ सुने या पहें उसे सम्मवतः सन्न समभें श्रीर फिर उसके विरुद्ध कारण पाने पर उस पर विचार करें विना इसके न दुनिया में हमारा काम चल सकता है न हम अपने ज्ञान की दुद्धि कर सकते हैं।

लंकिन इतिहास के अध्ययन और मनन में हमें कुछ अधिक सत्यासत्य का विचार रखना पड़ता है, आँख वन्द करके अर्थात् विचार हीन होकर पढ़ने से वास्तविक ऐतिहामिक जान हमें नहीं मिल सकता। सत्यासत्य के जाँच की कसोटी काम में न लाएँ, खरे-खोटे की परख न करें तो हम सच्चे अर्थीं में इतिहामकार नहीं हो सकते। इसलिए ऐतिहासिक प्रामा-णिकता की जाँच के सिद्धान्तों को इतिहासकारों के लिए अपने सामने रखना ज़रूरी है।

पेतिहानिक सत्य की खोज के लिए हमें दार्शनिक श्रीर वैग्रानिक वातों में जाना श्रानवार्य नहीं है। हमें तो अपने दिमाग से वाहर की श्राई हुई स्वनाश्रों श्रीर संवादों पर विचार परना होता है। हरेक स्वना श्रीर संवाद की जुदा-जुदा वहुत से लोग पढ़ते हैं, श्रीर हरेक उसका श्रयं श्रपने ढंग, श्रपनी श्रीमधीन श्रीर श्रपनी जुद्धि के श्रनुसार लगाता है, कोई उसी वात को श्रत्तग्दाः सत्य मान लेता है, कोई उसीमें सन्देह परने के पर्याम कारण देखता है, कोई उसीको नितान्त श्रसत्य समभना है। कागृज एक ही है, संवाद उर्यो का त्यां

वही है, पंर उसके प्रति भावनाएं श्रलग-श्रलग हैं। हरेक श्रवने निर्णय का काररा भी रखता है। लेकिन कोई इसके सिवा और क्या कहे कि मेरी समभा में यह वात सत्य है या असत्य है या सन्देहात्मक है। लेकिन इतिहासन इतना कहने से कि मेरी समभ में यह बात सत्य है या श्रसत्य, छुटकोरा नहीं पा सकता, उसे उन कारगों को वतलाना पडता है जिनके आधार पर वह किसी वात को सत्य या श्रसत्य मानता है, उसे तर्क श्रौर युक्ति से सिद्ध करना पडता है कि जिन कारणों से वह किसी बात को सत्य या असत्य मानता है वह उसके निर्णय को समर्थन करने के लिए पर्याप्त हैं। सम्भव है कि इन कारणीं को जानने पर इसरों को पूरा सन्तोष हो जाय, या कुछ लोग कारणों के सुनने पर इतिहासकार की वात विश्वास करके उसे सत्य मान लें। बहुत लोग ऐसे भी होंगे जो कारणों के जानने पर भी सन्तुष्ट न होंगे श्रीर इतिहासकार के निर्णय को न मार्नेगे, इस दशा में सिवा चुप रह जाने के इतिहासकार श्रीर क्या कर सकता है ? यह कोई वैद्यानिक प्रयोग तो है ही नहीं जिसे प्रयोग गाला में जाकर किसी को उसकी सत्यता प्रत्यत्त करा दें। एक ने कहा "अफ़ज़ल के मारने में शिवा जी की द्गावंज़ी थी," दूसरे ने कहा, नहीं अफ़ज़ल ने दगा करने के लिए शिवा को स्नामन्त्रित किया था, इसलिए शिवा ने प्रफ्ज़िल को श्रपनी रक्षा के लिए मारा तो उचित किया। दोनों ने श्रापने-श्रपने कारण भी सामने रख दिये। श्रव तीसरा

श्रादमो कहता है कि मैं पहले की वात से सहमत हूँ। उसके वतलाय हुय कारण समीचीन जान पड़ते हैं श्रीर दूसरे के कारण पुण्ड नहीं प्रतीत होते । श्रथवा यह तीसरा श्रादमी दूसरे की वात को समीचीन मान ले श्रीर शिवा को निशंप समसे। इस दशा में इतिहासकार के पास कोई ऐसा साधन नहीं होता कि वह किसी को पक वात का निश्चय करा ही दे। कोई नहीं कह सकता कि जितने प्रमाण मैंने दिये हैं इससे श्रधिक प्रमाण श्रीर हो ही नहीं सकते।

यहां तो विशुद्ध तर्क शास्त्र का भी श्रिधिकार नाम मात्र का ही होता है। तर्क शास्त्र तो सिद्धान्त स्थापित करता है चाहे वह सार्वभोम हो या एक देशीय, चाहे वह श्रभाव वाचक हो या भाव वाचक, किन्तु इतिहास पहले की किसी प्रघटित घटना पर विचार करता है। इसिलए ज्याप्ति, श्रव्याप्तियाद के नियम वहाँ काम नहीं दे सकते। ज्याप्तियाद तो मूलवाक्य श्रीर उपनय के श्राधार पर फल निकालता है। यदि किसी रूप के मूल वाक्य श्रीर उपनय करता। इतिहास के सत्यासत्य की जोज में इन नियमों की कहीं दाल नहीं गलती। यदि कहीं दितहासकार तर्क शास्त्र के नियमों में काम भी ले नो वह कोई वाचन तोले पाव गर्सा ठीक परिणाम पर पहुंचने का दावा नहीं कर मकता। निगमन नर्फ की भीति शागमन तर्क भी यहाँ सचाई की खोज में पक्षी कहायता नहीं

कर सकता। उसमें सामान्य से विशेष की श्रोर जाकर किसी बात की व्याप्ति को हूँढते हैं, इसमें विशेष से सामान्य की श्रोर जाकर किसी गुण की व्यापकता का पता लगाते हैं। इतिहास में दोनों रोतियाँ काम नहीं देतीं। यहाँ तो सामान्य कुछ है ही नहीं, सब घटनाएँ विशिष्ट ही विशिष्ट हैं। दो चार घटनाश्रों में कुछ समता मिलने से कोई सामान्य स्थापित नहीं हो सकता। यह तो नहीं होता कि घटनाएं एक सी होती रहें श्रौर एक सी घटना का फल भी एक सा ही होता रहे। जिस जगह से गिरकर एक श्रादमी मर जाता है दूसरा उसी जगह से गिरकर नहीं मरता।

जव इम किसी विवरण विशेष को 'प्रमाण' कहते हैं तो यह मानकर कहते हैं कि यह 'विवरण' सत्य है। इससे कुछ फल निकल सकता है। वह विवरण प्रमाण उस समय बनता है जब उसके आधार पर कोई परिणाम निकाला जाय। परि-णाम या नतीजा कई तरह का हो सकता है, जैसे सरल, असंदिग्ध अथवा असिबिहित और फेर का। साथ हो हो सकता है कि परिणाम प्रतीति जनक हो, मात्र अग्रुमान की ओर इशारा करता हो अथवा नितान्त वे सर पैर हो। परिणाम कीसा भी क्यों न हो, नतीजा चाहे जैसा निकले, इससे मतलव नहीं, जिस विवरण का आधार ऐसे नतीजे का कारण होता है, सुनने वाले के लिए वह प्रमाण है। किसी दुरुस्त होश

दवास वाले दूकानदार ने वाहर से श्राकर श्रपने पड़ोसियों से कहा कि 'सरल' शरावख़ाने में वैठा शराव पी रहा था। सुनने वालों के लिए यह एक प्रमाण हुआ, क्योंकि उन्होंने समका कि लचमुच यह श्रादमी शरावख़ाने में शराव पी रहा था, चाहे कहने वाले ने 'सरल' को पहचानने में भूल की हो, चाहे दुर्भाव से भृठा दोप लगाया हो श्रीर वात मिथ्या ही सिद हो। लेकिन सुनने वालों के लिए यह एक प्रमाण है। सम्भव र्दे कि किसी श्रोता के मन में इस वात को सुनकर यह सवाल पैदा हो कि 'सरल' तो महीनों से वाहर गया हुन्ना है, शायद लीट श्राया होगा। जो भी हो, दूकानदार की वात प्रामाएय समभी जायगी। संवादपत्रों की वातों का भी यही हाल है । एक घार श्रयध श्रख़वार ने छाप दिया कि शिमले मं वायसराय की मोटर टकरा गई। पढ़ने वालों ने इस संवाद को सन्त्र मान लिया, कई दूसरे संवाद पत्रों ने इसे उद्दधृत कर दिया, पर वात श्रम्त में श्रसत्य निकली। इस में श्रवध श्रस-बार का कोई श्रपराध न था, उसने स्वयम् धोका खाया, परन्तु उसं एक बार बात का विश्वास करना ही पड़ा। श्रमत्य जानते ही उसने वात के श्रासत्य होने की घोषणा की। कभी-कर्मा श्रनेक प्रमाणीं पर युगपत् विचार करना पड़ता है। एक ही वान को चार श्रादमी चार तरह पर कटते हैं। हमें चारों षो सनकर एक निष्कर्ष निकालना दोता है। यहाँ किसी के विद्याम आर अविद्यास का प्रश्न नहीं है, किन्तु कई परस्वर विरोधी या श्रनमेल वानों के श्राधर पर दम सन्ताई की खोज करते हैं, जहाँ तक भी दमारी बुद्धि काम दे।

हमारी गोनेन्द्रियों हारा प्रत्यद्ध वानों में भी यह वात होती है, देखना पड़ना है कि कहीं हमारी डिन्ह्रियों ने भून तो नहीं की। जब में स्कूल में पढ़ना था, एक बार चार वजे सबेरे चौदनी रात में टरलने जाने हुए जंगल में सड़क के किनारे ऐसा मान्द्रम हुआ कि कोई आदमी सफ़ेद कपड़े पहने खड़ा-है। में उर गया और आंख बन्द करके उस और बढ़ा और अपनी लकड़ी जोर से अर्द मुताकार फिराई। लकड़ी उस वैसाखी में लगी जो सफ़ाई करने वालों से अपने भोंपड़ों को हटाते समय हुट गई थी, क्यों कि कुछ पहले यहाँ मैला गाड़ा जाता था। खड़का होने से मैंने आंख बोल कर देखा तो छप्पर के साधने की वैसाखी थी, अनेक बार हमारी आंखों और कामों को घोषा होता है। यही बात छुने और पढ़े संवादों की बाबत भी हो सकती है।

सच है, दर एक व्यक्ति जो वर्तमान घटनाश्रों सं एक दम उदासीन दोकर नहीं रहता, नित्य इस तरह का श्रमुभव करता रहता है। श्रम्तर यदी है कि साधारण लोग धृत में लह मार देते हैं श्रोर समस्तदार लोग, इतिहासकार लोग समस बूस कर एक पड़ित के साथ काम करते हैं। रात दिन संवाद पत्रों में श्रांखें की देखी वालें जो रिपोर्टर भेजते हैं उनको इतिहासकार उसका प्रधान लद्य भगडा निबटाना होता है न कि सत्यासत्य का निर्णय करना। अगर सत्यासत्य का निर्णय वह करती है तो भगड़ा निवटाने के लिए न कि सत्य की खोज की लगन श्रीर प्रेम से। फिर भी वर्तमान समुन्नत काल की श्रदालती की जो प्रथाएँ या पद्धतियाँ सत्य के खोजने की हैं, वह व्यर्थ, निष्प्रया-जन श्रौर तिरस्करणीय नहीं कही जा सकतीं। उनका श्रानुकरण करने से हमें ऐतिहासिक खोज में वहुत सहायता मिलती है। निस्सन्देह, प्रत्यत्त का मृत्य परोत्त से श्रधिक होता है। देखी श्रीर सुनी में वड़ा श्रन्तर है। उद्गम स्थान की मीलिक वात मिल जाने से भूल का वहुत श्रंशं तक निराक़रण हो जाता है, सत्य की खोज के मार्ग में चलते हुए कम से कम एक गड़े में गिरने का भय तो कम हो ही जाता है। श्रदालत की परिस्थित भी अपूर्व होती है, अनेक वार्ते ऐसी हैं जिनसे वैद्यानिक या इति-हासकार को सत्य की खोज में जति नहीं पहुँच सकती किन्तु श्रदालत के काम में पहुँच सकती है। श्रदालत में स्वार्थपरता, पत्तपात श्रादि दुर्वासनाएँ सत्य पर पर्दा डालने को तैयार रहती हैं। इतिहासकार जो मौलिक लेख न देखे, नक़ल से काम ले तो घोखे का डर नहीं। घोखा हो भी तो भृत का आगे सुधार होना सम्भव है। इसी तरह वैज्ञानिक को अगर दूसरे के अन्वे-पण या त्राविष्कार की ज्यों की त्यों स्मृति न हो तो कोई श्रनर्थं नहीं हो सकता, पर न्यायालय में श्रनर्थं हो सकता है। जिस प्रमाण के श्राधार पर किसी को दगड़ हो गया या किसी

की सम्पत्ति हस्तान्तरित हो गई तो फिर किए का अनिकया करना असम्भव हो जाता है। इस लिए अदालत की वात विज्ञान और इतिहास की खोज से भिन्न है, दोनों में बहुत अन्तर है।

विद्यान श्रोर इतिहास की खोज में कोई विशेष ज्यावहारिक श्रभीष्ट लामने नहीं होता, उन्हें तो केवल सत्य के ही लिए सत्य की खोज करनी होतो है। वैज्ञानिक श्रीर इतिहासकार श्रपने निर्णय को चाहे जितने दिन तक डाल रखें, जब उन्हें सन्तोष हो जाय तब श्रपना मत प्रकट करें, कोई जलदी नहीं रहती। इतिहासकार या वैज्ञानिक श्रपने श्रधूरे निर्णय को भी श्रपूर्ण कह कर प्रकट कर सकता है। इन लोगों की खोज में नियमों का बन्धन लगाना, समय को परिमित करना श्रन्याय होगा। श्रदालतों की तरह इनके प्रमाणों के संग्रह श्रीर छानवीन में वाधा डालने का तो बहुधा यह श्रर्थ होगा कि प्राप्य प्रमाणों का निरादर, तिरस्कार श्रांर त्याग किया जाय। इसलिए श्रदालतों श्रीर इतिहासकारों की खाज में भारी भेद है। श्रव हम देखते हैं कि वैज्ञानिक श्रांर ऐतिहासिक खोज में क्या श्रन्तर है। इनकं प्रमाणों में क्या भेद है।

विज्ञान श्रीर इतिहास दोनों ही विना किसी कड़े वन्धन के सचाई की खोज करते हैं, श्रभीष्ट दोनों का एक है। दोनों ही प्रमाण की विश्वास पात्रता का निर्णय करना चाहते हैं, फिर भी दोनों के प्रमाण की खोज में कई वातों में श्रन्तर है। विषय

जो भो हो, सारे अनुसन्धानों को एक ही सिद्धान्त पर अपने साथियों की निर्दिष्ट उक्तियों की परख और उनके मूल्य का अनुमान करना पड़ता है। देखना पड़ता है कि कहने वाला आदमी सत्यनिष्ट है या नहीं; अपने पर्यावेक्स में सटीक, भाषा में निर्म्मान्त और परिसाम के निकालने में तर्क कुराल है या नहीं। नैतिक गुसों और प्रतिमा की सर्वत्र ज़रूरत, होती है, चाहे कोई भी कार्यक्तेत्र हो। किन्तु इतिहास में तो बहुत ही नीतिमत्ता और दूरदर्शिता की ज़रूरत होती है, क्लोंकि इस क्षेत्र में और बहुत से ऐसे कारस होते हैं जो साक्ति के वयान पर पर्दा डाल देते हैं। विशेष अन्तर विज्ञान और इतिहास के मामले में वई तरह का देखा जाता है जैसे—

१--जिन प्रमाणों से काम पड़ता है उनकी प्रकृति में।
२--प्रमाणों से काम लेने की पद्धति में।
• ३--उन फर्जों में जिन तक पहुंचने का उद्देश्य है।
ध--उस निश्चय के मोल तोल में जिसकी वह श्राशा

४—उस निश्चय के मोल तोल में जिसकी वह आशा करते हैं।

१—प्राकृतिक विज्ञान का विषय होता है, भौतिक प्रकृति का तथ्य। जो पुराने लोगों की वात को इस विषय पर मान लेते हैं श्रीर श्रागे बढ़ते हैं तो कोई हुई नहीं। हम जब चाहें उनकी सर्वाई की प्रत्यक्त जाँच कर सकते हैं। परीक्ता करके देखने पर सन्देह का कोई स्थल वाक़ी नहीं रह जाता। प्राकृ-तिक नियम श्रदल हैं, सर्व देशीय हैं, एक समान हैं। इतिहास में यह बात नहीं है। यह तो मनुष्यों के कामों से ही सरोकार रखता है। एक किया मनुष्य एक समय में करता है, उसकी किसी प्रयोग शाला में दुहरा कर सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। इतिहासकार तो इन श्रकेली स्वतन्त्र घटनाश्रों को एक दूसरे के साथ मिलान करके देख सकता है श्रीर किर श्रपनी राय कायम करता है कि इन सब पिछली घटनाश्रों के देखते परिणाम विशेष निकल सकता है या नहीं। इतिहास-कार, देश, काल, पात्र श्रीर घटनाश्रों का परस्पर सम्बन्ध .खूब सोच समक्षकर परिणाम पर पहुँचता है। विज्ञान का सा विषय इतिहास नहीं है।

२—वैद्यानिक खोज का मूल धर्म होता है। इण्ट व्यापार के कारणों का हूँढना। एक कल्पना स्थिर करके लगातार परिवीद्मण श्रीर परीक्षण द्वारा उसकी विश्वास-पात्रता की जाँच पड़ताल की जाती है। विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए परीक्षण में कुशल होना सब कुछ है।

वैद्यानिक के पास श्रपनं साध्य की सिद्धि श्रौर श्रसिद्धि के लिए श्रनेक साधन होते हैं। जब एक बात सिद्ध हो गई तो फिर कोई विवाद श्रेप नहीं रहता। इतिहासकार की परिस्थिति श्रौर श्रगति दूसरी ही है उसे विभिन्न प्रकार के ऐसे सामान से काम लेना पड़ता है जो निर्विवाद सत्य नहीं किन्तु विवरण मात्र होता है। वह तो जैसा ऊपर कहा गया, बातों का मिलान करके उनकी सचाई को तोलता श्रौर परखता है।

३—वैज्ञानिक खोजों में सार्वभीम प्रमेयों का स्थापित करना श्रभीष्ट होता है। यह वैज्ञानिक खोजें नाना प्रकार की होती हैं। बहुतेरी बहुत लोकोपकारी वार्ते होती हैं, जैसे देग-सार लोहे की ढली चीज़ अगर लोहे में परिखत कर दी जाय तो वह अधिक दृढ़ और टिकाऊ हो जाती है। अनेक वातें केवल हमारे ज्ञान की वृद्धि का ही हेतु होती हैं श्रीर उनसे भी वहुत लाभ होता है, उदाहरण के लिए आकर्षण शक्ति का ज्ञान, पदार्थों के योभ का ज्ञान, विद्युत के चाल की जानकारी इत्यादि । सार यह कि विज्ञान-सम्बन्धी वार्ते सर्व देशीय श्रीर व्यापक होती हैं। इनके प्रतिकृत्त इतिहास की वार्ते सभी एक देशी श्रीर श्रव्यापक होती हैं श्रीर प्राचीन काल से सम्बन्ध रखती हैं। घटनाश्रों को देखकर किन्हीं कारणों का अवश्यम्भावी फल राजनीतिज्ञ लोग व्यापक मान सकते हैं। परन्तु वैज्ञानिक च्यापकता वाली वात इससे कोसों दूर होती है। हम इतिहास से जानते हैं कि जाति भेद का परिणाम रोम में भगड़ा हुआ था। जिन जिन सरकारों ने जितने श्रिधिक श्रत्याचार किए उतनी ही जल्दी उनका सर्वनाश हुआ। लेकिन कितने समय में होता है, किस रीति से होता है, क्रमशः कौन कौन सी घटानाएँ होती हैं यह कोई दावे के साथ नहीं कह सकता। मनो-विज्ञान श्रीर ऐतिहासिक घटनाश्रों को देख कर इतना ही कह सकते हैं कि दमन नीति का फज दमनकारो को घातक सिद्ध होता है।

8—विज्ञान की खोज पूरी निर्विवाद सत्य होती है। इतिहास 'सम्भव' 'श्रतिसम्भव' के श्रागे नहीं वढ़ सकता। विज्ञान निश्चय करता है, इतिहास विचारता है. श्रीर ऐसा श्रतुमान करता है जिसकी सर्वथा सत्य होने की ज़िम्मेदारी नहीं हो सकती। दोनों के नतीजों के तोल मोल में प्रत्यन्त श्रन्तर है।

यहाँ तफ हमने प्रमाण के खक्षण का लक्ष्य कराया है, उसके मारपेच वतलाये हैं, ऐतिहासिक लेत्र की कठिनाइयाँ श्रीर उसके प्रमाणों की परिस्थित का ज़िक्र किया है। श्रव हम दूसरे लेख में यह वतलाने की कोशिश करेंगे कि हमें ऐति-हासिक जानकारी कहाँ कहाँ से होतो है।

## (२)

पेतिहासिक वातों का पता मिलने के बहुत मार्ग हैं। जिन वातों का पता लगता है उनका महत्व भी जुदा जुदा होता है। कंकिन सुभाते के लिए मोटे तौर पर हम इनको दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। इनमें एक प्रधान है, दूसरा गौए। प्रधान वे लेख हैं जो इसी लिए लिखे गये हों कि लोगों को उनसे किसी विषय की जानकारो हो, वे उन्हें पढ़ें और उन पर विश्वास करें। लेख चाहे जिसप्रकार केहों। सम्भवहै कि उनके लेखकों को स्वायम् पूरी वात का पता न लगा हो अथवा उन्होंने निर्णय करने में ही भूल की हो, पत्त-पात से काम लिया गया हो, सत्य की छिपाना अभीष्ट हो। इस तरह के लेख का मूल्य कुछ भी हो, पर वह लिखा इसी लिए गया हो कि लोग पढ़ें

श्रीर सत्य को स्वीकार करें। ऐसे लेखों को प्रधान प्रमाण मानकर उन पर विचार होगां। इस प्रकार के लेखिक प्रमाण में ऐतिहासिक श्राख्यान, सरकारी कागृज़-पत्र, घक चिट्ठी-पत्री जिनमें सार्वजनिक हित की वातें हों,शामिल हैं। इन्हीं के श्राधार पर इतिहास तैयार किया जाता है।

गीण प्रमाण इतिहास पर श्राकस्मिक प्रकाश डालते हैं। इनका मौलिक उद्देश इतिहास नहीं होता, न वे किसी को किसी वात का विश्वास कराना चाहते हैं। फिर भी ये वड़े काम के होते हैं। सन्देह होने पर इनके द्वारा प्रधान ऐतिहासिक प्रमाण की सचाई की जाँच होती है, विशेषतः उस दशा में जब जानी हुई वातों में परस्पर विरोध होता है। जैसे समय श्रौर स्थान के सम्बन्ध में सन्देह हो तो ग्राम्य गाथार्श्रो श्रीर पँवारा गाने-वालों के गीतों से वहुत मदद मिलती है। इन गौण प्रमाणों में <del>ब्रह्मेनिहासिक ब्रौर पौराणिक गाथायें भी शामिल हैं। इनमें</del> लैंबिक ऐतिहासिक प्रमाण के लक्षण नहीं होते, इनकी रचना किसी स्मृति को स्थायी वनाये रखने के लिए जिसे वनानेवाले सत्य और महत्त्वपूर्ण समभते थे, की जाती है। इनसं समय श्रीर स्थान के सिवा रीतिरिवाज, श्राचार व्यवहार, पहनाव श्रादि का बहुत कुछ श्राभास मिलता है। विना इन सब बातों की छानवीन किये, विना पौराणिक गाथास्रो स्रोर दन्तकथास्रो को श्रच्छो तरह हिला-हुलाकर देखे कोई इतिहासकार श्रपना काम जैसा चाहिए वैसा नहीं कर सकता। यह वात ज़रूर है

कि यह कठिन काम है और सिद्धहस्त इतिहासकार हो इन गीए प्रमाणों से अच्छा काम ले सकता है। इन गीए प्रमाणों को खोज के साथ जो इतिहास लिखाजाता है वह सर्वाङ्गपूर्ण होता है।

प्रधान लैखिक प्रमाणों के हस्तगत होने पर उनकी विश्वास-पात्रता की जाँच करनी पड़ती है। कोई विषय क्यों न हो, किसी श्रमिप्राय से क्यों न लिखा गया हो, इतिहासकार को ' लैखिक प्रमाण के खरे-खोटे की जाँच करने के लिए यह देखनां ज़करी, है कि लेखक के पास प्रस्तुत विषय के ठीक ठीक जानने के साधन क्या थे; उसकी पूरा तरह निरीक्षण करने और शुद्ध निर्णय करने की शक्ति कैसी थी और इम कहाँ तक उसकी बात को निष्णदा सत्य मान सकते हैं।

इस कसौटी पर कसने के वाद श्रगर वात विश्वास करने लायक मालूम हो तो ठीक है। जिस भाव से इम श्रदालत में प्रतिपत्ती से जिरह करके सत्यासत्य का निर्णय करते हैं, उसी भाव से इम लैकिक प्रमाणों को उसके समकालीन दूसरे लेखकों की रचनाश्रों श्रौर गाण प्रमाणों से तुलना करके उसकी विश्वासपात्रतां जान सकते हैं।

जो लिखित साझ्य या प्रमाख इतिहासकार के सामने आता है वह उसकी लेकर हर किसी कसौटी से उसके खरे-खोटे का निर्णय करता है। लिखित वर्णन भी कई प्रकार से रूपित हो सकते हैं। यदि स्वयम् प्रन्थकार के हाथ का लिखा हुआ विवरण न मिला और वह केवल दूसरे को लिखी उसकी प्रतिलिपि ही हुई तो प्रतिलिपि में भूल होना सम्भव है। ऐसी भूलें जान वृक्षकर न करने पर भी हो जाती हैं। यह वात हम नित्यप्रति देखते हैं। वहुधा प्रतिलिपि करनेवाले श्रपने वुद्धि-वाहुल्य के कारण और कभी-कभी अन्य कारणों से भी दूसरे की लिखी पुस्तकों में कहीं-कहीं हेर-फेर कर डालते हैं। एक ही घटना को श्रगर शिया लिखेगा तो एक तरह, यदि सुन्नी लिखेगातो दूसरी तरह। अगर एक की लिखी पुस्तक दूसरे के हाथ में प्रतिलिपि करने को त्रा जाय तो निश्चय ही उसमें हेर-फेर होगा। यही वात एक सीमा तक भारत के कट्टर जैनों श्रीर वैज्यावों में भी रही है, यद्यपि श्रव रथ वर्ष पहले की सी कट्टरता श्रौर विरोध नहीं है। फिर यदि लेख की भाषा कई शताब्दी पुरानी हुई तो उसके समक्षने में भी श्रन्तर पड़ सकता है, लिपि में भी भेद हो सकता है। इससे भी प्रतिलिपि का दुषित होना वहुत श्राश्चर्य की वात नहीं है। लेकिन ऐसा होता वहुत कम है।

ऐिनहासिक लेखों के श्राभ्यन्तरिक मन्तव्यों श्रोर मूल की भी श्रालोचना श्रोर समीदा की श्रावश्यकता पर ज़ोर दे सकते हैं। लेकिन मूल की समीदा करना विशेषक का काम है श्रोर प्रमाण की दृष्टि से इसकी श्रधिक महत्त्व नहीं दे सकते।

छापे की कला प्रचलित होने के पीछे के लेखों के सम्बन्ध में मूल के दोपों का प्रश्न नहीं उठता, उठता भी है तो बहुत

विरत । छापेखाने में जो ऐतिहासिक श्राख्यान या प्रवन्ध प्रकाशन के लिए जाते हैं वे लेखक के शब्दों में ज्यों के त्यों छापे जाते हैं। हाँ, राजकीय कागज-पत्र या बहुत सी घरेलू लिखा-पढ़ी सार्वजनिक लिखतों श्रौर ऐतिहासिक श्राख्यानों की श्रपेता श्रति-रञ्जित होती हैं। यदि कभी किसी ऐतिहासिक खोज करनेवाले को ऐसे कागुज-पत्रों पर विचार करने का श्रवसर पड़े तो ये तभी ठीक हो सकेंगे जब श्रसली कागृज़ या उनकी सुरित्तत श्रविकल प्रतिलिपियाँ मिलेंगी जो मूल के समान ही सची समभे जाने की हैसियत रखती होंगी। परन्तु इन छपे हुए कागुज़-पत्रों के भी मृत शब्दों की शुद्धि पर कोई सन्देह नहीं उठता, हाँ उनमें लिखी हुई वातों पर प्रश्न उठ सकता है। प्राचीन ग्रौर नवीन लेखकों की कृतियों ग्रौर शिला-लेखों में भेद किया जा सकता है। शिला-लेखों, धातु-पत्रों को पेतिहासिक मौलिक प्रमाग मानते हैं। इसी से पेसे श्रनेक लेख सावधानी के साथ नक़ल करके पुस्तकाकार श्रीर पशियाटिक सोसाइटी सदृश सरकारी था ग्रर्द सरकारी श्रौर श्रनेक ग़ैर सरकारी संस्थाओं की पत्रिकाओं में छापे गये हैं। बहुतों के छाया-चित्र देकर उनके नीचे लेखों के पाठ श्रौर श्रर्थ प्रचलित भाषा में छापे गये हैं। ऐसा ही, विक इससे श्रिधिक उत्साह श्रीर व्यय के साथ यह काम पाश्चात्य देशों में हुआ है। इसका श्रभिप्राय केवल यही है कि इनकी श्रन्तर्लिखित वार्तो की संसार को जानकारी हो। यह वात दूसरी है कि किसी शिला-

लेख के पढ़ने में कहीं कुछ भूल रह गई हो, किसी वाक्य के श्रध में या पाठ में मतभेद हो, वाक्य श्रधूरे हों, श्रभी तक पढ़े न जा सके हों, लेकिन उनके मौलिक प्रमाण होने में कोई भी सम्देह श्रौर विवाद का स्थान वाक़ी नहीं रहता। क्यों कि उनका सखा मौलिक लेख हमारी श्राँखों के सामने मौजूद है। ऐसे श्रटल ऐतिहासिक प्रमाण न जाने कितने श्रभी भूगर्भ में निवास करते होंगे।

ऐसी अनेक गाथाओं, पँचारों, दन्तकथाओं और पुस्तकों की वातों पर सन्देह के साथ इतिहास के भक्त विचार करते थे जिनकी सत्यता का प्रमाण भू-गर्भ से खोद कर निकाले हुए मकानों, वागों, नहरों, समाधियों श्रौर स्तूपों से उन्हें श्राज श्रीप्म के प्रचएड मार्तएड के समान प्रकाशित श्रीर इस्तामलक हो रहा है। इसी प्रकार श्रनेक प्राचीन काल को, ग्रन्थकार के ही हाथ की, लिखी हुई पुस्तकें मिली हैं श्रीर ये भी मौलिक लिखित प्रमाण हैं। इन पुस्तकों को विद्वानों ने वड़ी मेहनत के साथ सम्पादन करके प्रकाशित किया है श्रीर वे शिलालेखों की तरह इन्हें ढ़ूँढ़ ढूँढ़ कर नई प्राप्त पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करते रहते हैं। श्रनेक पुस्तकों की कई हस्तलिपियाँ मिलती हैं। ये सव ग्रन्थकारों के हाथ की लिखी नहीं होतीं। इन प्रति-लिपियों में पाठान्तर भी होते हैं। प्रायः इनके प्रकाशक श्रीर सम्पादक श्रगर सममदार हुए तो पाठान्तरों को भी दे दंते हैं। यहाँ हमारे कहने का श्रिभिश्राय यही है कि ऐसे पाठान्तरों से

येतिहासिक प्रमाण को चित नहीं पहुँचती। यदि कहीं किसी सन्-संवत् में या किसी नाम में श्रन्तर हुश्रा तो उसका पता लगाना सहज हो जाता है। पिछले दिनों में नागरी-प्रचारिणी सभा काशी श्रौर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वारा भी बहुत सी पुस्तकों की खोज हुई है। इनमें से कुछ सावधानी के साथ सम्पादन करके प्रकाशित भी की गई हैं। इनमें पाठान्तर होने के कारण हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखकों को कोई श्रडचन नहीं पड सकती। साहित्यिक समालोचक इन पाठान्तरों पर चाहें तो तर्क वितर्क कर सकते हैं। विहारी-सतसई श्रीर तुलसीकृत रामायण के समान प्रचार का सौभाग्य हिन्दी की श्रीर किसी पुस्तक को श्रभी तक नहीं मिला है। इन दोनों पुस्तकों की हाथ की लिखी हुई प्रतिलिपियाँ भी अगणित होंगी। जो इस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं उनके देखने से पता लगता है कि पाठान्तर कम नहीं हैं, लेकिन विद्वानी ने इन पुस्तकों को प्रधान लेखक के अभीए के श्रद्धसार सम्पादन करने छुपवाने में यथासाध्य कोई कसर नहीं छोड़ी । फिर भी श्रगर कहीं कोई थोड़ी भ्रमात्मक वात नज़र आवे तो उसे इतिहास की दृष्टि से कोई भारी सित नहीं कह सकते।

जहाँ हम छितियों के छल से छला जाना खीकार करना चुरा समक्षते हैं, नानी-दादो की कहानियों श्रीर धर्मपुस्तकों की कोरी गृष्पों को जानबूक्षकर निगलने से बचे रहते हैं, सूठे

गवाहों के वागाडम्बर से इटते हैं, जालसाज़ों, धोखेबाज़ों से पला वचाकर लचते हैं. वहाँ हम एक-दम अम से वच भी नहीं सकते। यह दोत्र बहुत कठिन है। मनुष्य यदि एक-दम सन्देह का ही पुतला वन जाय तो इतिहास के वीज का ही नाश हो जाय। दिन दिन नये प्रमाण मिलते हैं श्रीर पुराने भ्रमों का संशोधन होता रहता है। पहले ब्लैक होल की घटना की ऐतिहासिकता का विश्वास किया जाता था. पर श्रव उसकी ऐतिहासिकता पर सन्देह किया जाता है। किसी एक श्रॅंगरेज विद्वान ने इतिहास की पाठ-विधि के सम्बन्ध में लिखा है कि दूर क्यों जाइए, सन् १८७० की जर्मनी श्रीर फ़ांस की लड़ाई का मूल-कारण आज तक अन्धकार में है, पहले जिन वार्तों को हम सत्य माने वैठे थे वे श्रसत्य सिद्ध हो गई हैं। श्रव नये प्रमाणों की श्राशा की जा रही है। इस-लिए इतिहासकार को थोड़े-बहुत सन्देह को ज्यों का त्यों छोड़ देने का स्वभाव डालना ही पडता है। श्रागे श्रानेवाले इतिहासकार नये प्रमाणों के पाने पर इन शंकाओं और सन्देहीं की निवृत्ति करेंगे।

जिनको हम प्रमाण मान सकते हैं उनके व्यवहार में हमें श्रपनी भूलों से सावधान रहना चाहिए। हमें जो ऐतिहासिक लिखत मिजतो हैं उन्हें हम तभी समक्त सकेंगे जब हम उनकी भाषा श्रीर लिपि का ज्ञान रखते होंगे। श्रपरिपक्ष्य ज्ञान से काम लेंगे तो हम स्वयं भूल के कारणं होंगे। यह वात भी हमें मालूम होनी चाहिए कि भाषा में समय पाकर अन्तर पड़ना रहता है, लिखने और बोलने की भाषा में, बाज़ारू और शिष्ट भाषा में, आग्य और नगर की भाषा में भी बहुत अन्तर होता है। बहुधा इतिहासकार को लिखने के समय जो शब्द याद आता है लिख देते हैं। सम्भव है कोई शब्द उपयुक्त न हो, घटना को तथावत् न व्यक्त करता हो। इसलिए देश-काल-पात्र का भी ध्यान हमें भाषा और लिपि के ज्ञान के साथ रखना ज़करी है, नहीं तो हम किसी लैखिक ऐतिहा-सिक प्रमाण को पढ़ने व समभने का दावा नहीं कर सकेंगे।

वहुधा वैदिक साहित्य में जो शब्द एक श्रर्थ-विशेष में श्राये हैं, वही सूत्र-काल के प्रन्थों में, उनके वाद पुराणों में श्रीर दूतरे श्रीर भी नये ग्रंथों में दूसरे दूसरे श्रथों में प्रयुक्त पाये जाते हैं। जैन श्रीर वौद्ध श्रन्थों की श्रानेक परिभाषायें केवल कोश के देख लेने या धातु-पाठ, गण-पाठ श्रादि साधनों के इस्तगत होने सं ही नहीं समभी जा सकतीं जब तक उन्हीं के श्रीर श्रन्थों को क्रम से हम न पहें।

जब हम कोई हाथ की जिखी पुस्तक मिले तब हमें देखना होगा कि यह मौलिक प्रति है या प्रतिलिपि है। श्रद्धरों के मोड़-लोड़ श्रीर रंग-ढंग से देश श्रीर काल का समीपवर्ती पता चतुर इतिहासकार लगा सकते हैं। श्राज जो नागराद्धर हममें प्रचलित हैं इनका श्रव तक बहुत स्वरूपान्तर हुआ है। फिर

हमें इस वात का भी ख़यात होना चाहिए कि अगर विक्रम की पहली शताब्दी की लिखी पुस्तक की प्रतिलिपि सातर्ची शताब्दी में होगी तो उसमें भूलों के होने की जितनी सम्भावना होगी उतनी उस पुस्तक में न होगी जो दूसरी शताब्दी की प्रतिलिप होगो। जितने अधिक समय के बाद की प्रतिलिप की हुई पुस्तक होगी, उतनी ही अधिक भूलों की सम्भावना भ्यान में रख कर उसकी सचाई की खोज इतिहासकार को करनी पड़ती है। पहले छापेख़ाने न थे, इसलिए पुस्तकें बहुत ंधीरे-धीरे नक्ल होती होती श्रपने प्रेमियों के हाथों में पहुँचती -थीं श्रीर नक़ल दर नक़ल होने से उनमें भूलों की सम्भावना भी उसी तारतस्य से वढती जाती थी। लेकिन श्रगर ईमानदारी के साथ पुस्तक नक़ल की गई हो तो ऐसी भूलों से विशेष · चिति : नहीं होती। हाँ श्रगर ऐसा मालूम हो कि नक़ल को म्प्रसल बनाकर चलाने का प्रयत्न लेखक ने किया है तब उस पर श्रिधिक सन्देह होना स्वाभाविक है। प्राचीन समय में लेखक अपने प्रन्थों पर अपना नाम नहीं लिखते थे, न कवि म्त्रपनी कृतियों में अपना नाम देते थे। इसलिए अन्थों के सम्बन्ध में कर्ताओं का नाम-निर्णय करना भी इतिहासकार का पक काम है। पुस्तकों के नक़ल करनेवाले कभी-कभी अपना नाम श्रीर तिथि देते हैं, लेकिन श्रधिकतर ये लोग भी अपना नाम श्रीर नकत करने का समय नहीं देते। ऐसी दशा में असली ग्रन्थकार का ग्रीर ग्रन्थ की नक़ल करनेवाले का पता न्त्रमना बहुधा श्रसम्मव हो जाता है। ग्रंथ ग्रन्थकार के दाथ का लिखा हुआ है अथवा मूल अन्य की प्रतीक है, कहना ग्रसाध्य होता है। बहुधा प्राचीन काल के प्रसिद्ध पुरुषों के नाम ः सं लोग नये प्रनथ लिखकर संसार को घोले में डालते हैं। पुराग्रों के कर्ता महर्षि व्यास बतलाये जाते हैं, लेकिन उनके पढ़ने से भाषा की शैलां और श्रीर श्रनेक दूसरी वार्तों के न्त्राधार पर यह सिद्ध होता है कि उनके कर्ता जुदा जुदा कई ्लोग हैं। ज्यासकृत महाभारत में बहुत बड़ा श्रंश दूसरे लोगों

का मिलाया हुआ है। इसी प्रकार ऐतिहासिक पुस्तकों में भो लोगों की अनुचित कार्रवाई हो सकती है।

इन तमाम वातों को सामने रखते हुए इतिहासकार को मुख्य मुख्य वातों का पता लगाने के लिये मूल प्रंथकार का नाम, प्राम, समय, उसकी योग्यता, सामाजिक परिस्थिति इत्यादि ग्रानेक वातों का ग्राधार हूँढ़ना पड़ता है।

भाषा की शैली और भाव से बहुधा इतिहासकार ग्रंथकार श्रौर उसके समय का पता लगा लेते हैं, परन्तु काम वड़ी चतुराई, जानकारी श्रौर श्रगाध पागिडत्य का है। श्राज तक विद्वानों में इस वात पर मतभेद है कि 'चरक-संहिता', महर्षि पतञ्जलिकृत है या नहीं, यद्यपि उनका योगदर्शन श्रौर महा-भाष्य संसार के सामने है श्रौर सब मानते हैं कि ये दोनों ग्रंथ उनके ही रचे हुए हैं।

शिलालेख श्रादि को छोड़कर श्रीर वहुत लिखित प्रमाण राजदरवार-सम्बन्धों कागृज़ों के मिलते हैं। उनमें भी कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि जिनकी गवाही वतलाई जाती है उनमें से किसी का लेख के प्राटुर्भाव के पहले मर जाना सिद्ध होता है श्रथवा उसके वाद जन्म लेना पाया जाता है। ऐसे लेखों पर विश्वास करने में वहुत शंका होती है, श्रतः श्रीर श्रिधिक छान-वीन की ज़रूरत होती है। श्रसली प्रति मिलने से फिर भी वहुत वातों का पता लगाने में सुगमता होती है।

यदि कहीं नकल हुई तो मामला बहुत कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में मुख्य वात पर पुनर्विचार श्रौर नई खोज करने की जरूरत होती है। जहाँ ऐसा सन्देह उत्पन्न हो श्रीर कोई सिद्धान्त स्थिर न हो सके, वहाँ इतिहासकार को चाहिए कि परिस्थित को पाठकों के सामने, मूल में, टिप्पणी में, किंवा परिशिष्ट में जैसा उचित हो. रख दे श्रौर श्रपना निर्णय या सन्देह का कारण भी दिखला दे। इसरे लोगों को उसी समय के जब दूसरे लेख प्राप्त होंगे तव वे विचार करेंगे कि वास्त-विक वात क्या है। ऐसी बातें बहुधा तर्क-शास्त्र के साधारण नियमों श्रौर पढ़े-लिखे समभदार श्राइमी की साधारण बुद्धि श्रीर जानकारी से सहज में ही निश्चय हो सकती हैं। जब एक ऐतिहासिक वात पर एक श्रादमी किसी प्रस्तुत मसाले के **ब्राधार पर ब्रपना एक मत प्रकट करता है, तभो एक द्**सरा विद्वान उसी मसाले के श्राधार पर श्रपनी सुक्त से नये कारण वतलाते हुए उसी वात पर दूसरी राय दे सकता है या पहले सजान के मत को श्रौर भी पुष्ट कर सकता है। इसलिए ऐति-द्दातिक बात के निर्णय में जितने श्रधिक मत इतिहासकार को मिले' उतने ही अच्छे हैं। उनको पढ़कर अपना एक अचल मत स्थिर करने में उसे सुविधा होगी।

पुराने इतिहासकारों का तर्क हमें विचार पूर्वक देखना चाहिए। यदि उनके तर्कों के श्राधार पर हम मनोनियोग के साथ विचार करेंगे तो हमें सत्यासत्य के निर्णय करने में सहायता मिलेगी। अगर हमें विचार करने के लिए नये आधार मिलें या पूर्व-लेखक के तकीं के जाँचने का अवसर प्राप्त हो तो और भी अच्छी वात है। लेकिन इतिहासकार को विना पूरी तरह पूर्वापर के विचार के कोई मत देना उचित नहीं है।

वहुधा ऐसा होता है कि राज के द्रांड के भय से साम
यिक इतिहासकार सची वात नहीं लिख सकते। अनेक राजाओं

श्रार रानियों की अप्टता और अत्याचार के हाल लोग इति
हास के रूप में नहीं लिख पाते। ऐसी अनेक घटनायें किवता

या कहानी में, उपन्यास और नाटक में अन्योक्ति के रूप में

लिखते हैं। यहुत दिन तक दन्तकथाओं में ऐसी घटनाओं का

वर्णन होता रहता है। इसलिये इतिहासकार को अन्योक्तियों

श्रीर दन्तकथाओं से वहुत वातों को अनुमान करना सुगम हो

जाता है।

कोई प्रमाण या साक्ष्य क्यों न हो, उसकी साधारण रीति से तीन गितयाँ होती हैं। सत्य कहता हो या जानवूसकर असत्य बोलता हो अथवा सच वोलना चाहता हो, परन्तु भूल या अम से उलटा चलता हो। अदालत में ये तीन भेद हो सकते हैं। परन्तु इतिहास में दूसरे और तीसरे भेद का एक ही फल होता है, इसलिए दोनों वार्ते एक मानी जाती हैं। प्रायः लोग मिथ्या नहीं लिखना चाहते, लेकिन पत्तपात, अन्धविश्वास, अविवेक से अथवा दूसरे के विश्वास पर बात को विना सोचे समभे ही कुछ का कुछ लिख डालते हैं श्रीर श्रकारण किसी के सिर दोपारोप कर बैठते हैं। इस तरह विरोधियों को गाली देने-वालों, उनके विरुद्ध मिथ्या-प्रचार करनेवालों श्रीर भूठे दोषा-रोप करनेवालों का नितान्त श्रभाव न प्राचीन काल में मिलता है, न श्रविचीन में।

नेपोलियन श्रीर पदच्युत कैसर के सम्बन्ध में श्रीर होना के युद्धों की श्रनेक घटनाश्रों के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने जान-बुक्तकर संसार को धोखा देने के लिए उनके ग्रब्हे गुणों पर धूल फेंकने के लिए इतना कुठ पुस्तकों में, संवाद-पत्रों में लिखा है कि उसको पढ़कर घृणा होती है। 'प्रोपेगैएडा टिकनीक इन दि वर्ल्डवार' नाम की पुस्तक पढ़ने से हमें पता चलता है कि विरोधियों को दानि पहुँचाने के लिए लेखनी से क्या-क्या किया जा सकता है। यह सब लेखनी के निकले हुए मिथ्याबाद लैखिक प्रमाण हैं, जिनको इतिहासकारों को वडी सावधानी से काम में लाना चाहिए। प्राच्यों में ऐसी जातियाँ हैं जिनके इतिहासकारों ने गाली और मिथ्या त्रावेपों से अपने अन्धों को कलङ्कित किया है। सरकारी कागृज़ भी इसी प्रकार गन्दे किये जाते हैं श्रीर कुछ समय वाद वही कागज़ ऐतिहासिक प्रमाण का स्थान पाते हैं। इतिहासकारों को इन बातों का भ्यान रखकर विशेष जातियों श्रीर समयों के लेखों का विश्वास करना चाहिए।

जो वात एक ब्रादमी के ही कहने पर सत्य मानकर लिखी जाती है, दूसरा साद्ती नहीं मिलता, उसकी तो वात ही अलग है, लेकिन ऐसा बहुत ही कम देखा जाता है । नेपोलियन का णरिवारिक जीवन उसके नौकर डी काँस्टाँ ने लिखा है। उसमें श्रनेक वार्ते ऐसी हैं जिनकी सत्यता प्रमाणित करने में हम सर्वथा श्रसमर्थ हैं, उसी की वात को सत्य मानना पड़ता है। वह व्यक्ति वड़ा भद्र प्रतीत होता है श्रीर उलका विषय भी ऐसा नहीं जिसमें जातीय या राष्ट्रीय ईर्प्या-द्वेष का श्रधिक पैर फैलता हो। परन्तु जहाँ किसी घटना के एक से श्रधिक गवाह मिलते हैं, वहाँ मतभेद हो सकता है। यह मतभेद चाहे मुल घटना के सत्य होने के सम्बन्ध में हो, चाहे उसके किसी श्रंश के। कभी-कभी मूल घटना को तो सब सात्ती एक संमान सत्य वतलाते हैं, लेकिन उसके ट्योरे में यक कुछ कहता है श्रीर दूसरा कुछ। यदि घटना के होने न होने का मतभेद नहीं है तो इतिहासकार को ब्राधार मिल जायगा और वह समसेगा कि व्यारे की भृत के क्या कारण हो सकते हैं श्रीर उन कारणों से फैसी भूल हो सकती है, श्रीर सबकी जाँच करने के बाद वह न्योरे के ग्रन्दर पड़ेगा श्रीर उसकी जाँच करेगा।

वर्तमान क़ानून श्रीर शासन-पद्धति की वदौलत श्रदालतीं में कभी कभी देखा जाता है कि कई गवाह घर से सीख करू श्रात हैं कि श्रदालत में क्या वयान देना है श्रीर सव मिलज़र पक हा वयान देतें हैं जो नितान्त मिथ्या होता है। पेतिहा-सिक प्रमाण में भी ऐसा अवसर भी कहीं आता है. यह वात कम जँचती है। फिर भी हो सकता है कि एक ही आदमी के ज़वान की सुनी हुई वातों के श्रधार पर कई लेखकों ने घटना का वर्णन किया हो, क्योंकि उस घटना को देखनेवाले पक ही दो हों श्रीर उन्हीं से वात का सर्वत्र प्रसार हुशा हो। पेतिहासिक लेखक खयम तो सारी घटना के देखनेवाले नहीं होते. शायद उसके किसी श्रंश को जानते हाँ श्रधवा उनको निज की जानकारी कुछ भी न हो। इस तरह एक ही विवरण जो कई लेखकों तक पहुँचे श्रीर सब उसे श्रपने श्रपने लेखीं में स्थान दें तो वही दशा हो सकती है जो ऊपर भूठे गवाहों के उदाहरण में दिखाई गई है। उदाहरण के लिए गोसाई'जी की निज की लिखी रामायण के विरुद्ध जो पाठ एक रामायण में मिलता है वही श्रीर कई पुस्तकों में मिलता है। इसका मतलव यही है कि ये सब एक ही पुस्तक की नक्तं हैं। जब दो सावियों में नितान्त मतभेद होता है तब उसकी नियमानुसार छानवीन होती है। छानवीन में किसी लेख का विश्वास करने न करने का कारण देखा जाता है छार गीए प्रमाणों की सहायता ली जाती है। खोज करनेवाले को जहाँ तक विश्वास का जो आधार मिलता है वहाँ तक मह उसे कास में लाता है। जहाँ एक से श्रधिक विवरण मिलने पर श्रगर श्रसली वात ठीक है श्रीर ज्योरे में श्रन्तर

है तो इसमें साकियों की नेक्नीयती में तो संदेह नहीं रह जाता। देखना यह होता है कि शुद्धता किसके विवरण में है। यों तो एक से श्रिधिक साक्षियों के होने में कुछ न कुछ श्रन्तर हो ही जाता है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

यह लेख सरस्वती भाग ३३ संख्या ५ में छवा था।

